श्रीहरिः।

दानमयूखः ।

विद्वह रश्रीनीलकण्ठमहविरचितः।

पं० रखगोपाल मद्देन संशोधितः।

चौलम्भासंस्कृतपुस्तकालया ः अ-हरिदासात्मकल्पिकणा हर, योग **दर्जाये** ियाँ बेटार्थ **य**न

संभाइतः :

DÂNAMAYÛKHA

SRI NILAKANTHA BHATTA.

Edited by

Pandita Ratna Gopala Bhatta. PRINTED AT THE VIDYA VILLE P

BY HALLER TYLE I VE CHIEFA

DE . . Car.

1909.

8.788Mil-Bha

अथ दानमयुखस्य सृचीपत्रम्।

| | पृष्ठम | | वृष्ठम |
|---------------------------|----------|---------------------------------|--------|
| भङ्गलाचरणम् | গ্ | अथ परिभाषा | 23 |
| दानस्वरूपम् | ٩ | पूजाङ्गहोमः | १५ |
| दानप्रशंसा | ş | स्वयुद्योक्तं कर्त्तव्यमिति | 94 |
| दानत्रैविध्यम् | ₹ | अविरोधिपार व यग्रहणं | १५ |
| दानसामान्येतिकर्त्तव्यता | ş | अन्यथाकरणे | १५ |
| पूर्त्तधर्माः | ૪ | अयातयामानि | १५ |
| अथ पात्रम् | 8 | वर्ज्यदर्भाः | १५ |
| अथ देयम् | લ્ | यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ | १५ |
| शुल्कादिस्वरूपम् | ે | अनादेशे | १६ |
| वित्तात्कियतिदानं कर्त्तव | षम् ५ | मुलगन्त्रलक्षणम् | १६ |
| कु पणाशक्ताविषये | હ્ | छन्दर्षिदेवता ज्ञातव्येति | १६ |
| अदेयानि | ٩ | पञ्च रत्नानि | १६ |
| अग्राह्याणि | ફ | पञ्चगन्यम् | १९ |
| वय कालाः 👙 🥱 🖔 | ૃીફ | त्रिमधु | १६ |
| पुण्यदेशाः | ૭ | पञ्चपछ्चाः | १६ |
| मतिग्रहे देशनिषेधः | e | चतुःसमम् | १६ |
| दातृकुसम् | 6 | सर्वगन्धम् | १७ |
| देयपात्राऽसम्निधाने | ٩ | यसकर्द्मः | ? ৩ |
| मतिगृहीतृकु सप् | १० | सर्वोषध्यः | 7,9 |
| अमत्याख्येयम् | १० | सीभाग्याष्ट्रकम् | 1.9 |
| द्रव्यदेवताः | 99 | महारत्नानि | २७ |

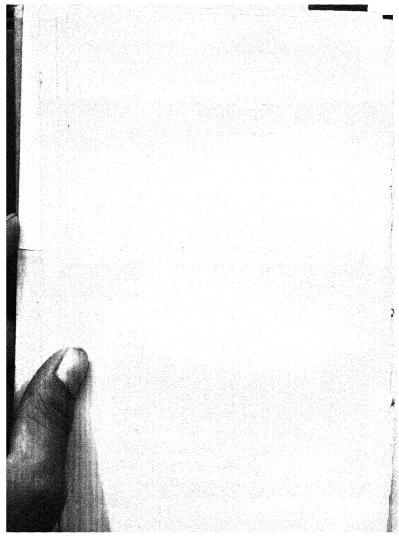
C

| | , , | | |
|-----------------------------|------------|---------------------|---------|
| | वृष्ठम | | पृष्ठम् |
| अधिदेवतानाम | 96 | गोसहस्रप | 3,56 |
| मस्रि देवतानां | ξ 3 | प्रयोगः | १२१ |
| लेकपालानाम | 6,3 | हिरण्यकामधेनुः | १२३ |
| वस्वाद्येकादशानाम | 6,9 | हिर्ण्याश्वदानम् | १२६ |
| एषां पूजा | ६८ | हिरण्याश्वरथदानम् | १२८ |
| कलशस्थापनपुजने | ६८ | हेमहस्तिरथदानम् | १३० |
| वितानबन्धनम् | इ९ | पञ्चलाङ्गलदानम् | १३३ |
| जपस्कानि | ૭५ | धरादानम् | १३५ |
| बिछिदानम् | 68 | विश्वचक्रदानम् | 9,36 |
| यूर्णाहुतिः | 68 | महाकल्पलतादानम् | १४२ |
| आभिषेकः | 64 | सप्तसागरदानम् | १४४ |
| अथ दानानि | 6 | रत्नधेनुदानम् | १४६ |
| तत्रादौ तुलापुरुषदानम् | ୯७ | महाभृतघटदानम् | १४९ |
| तुलापुरुषदान मयोगः | 66 | अथ दशमहादानानि | १५१ |
| रजनादितुलाविधिः | ९६ | तत्रादौ काश्चनदानम् | ૧૯૧ |
| नानारोगघ्नादितुछा- | | शतमानदानम् | १५२ |
| पुरुषदानम् | ९७ | रजतदानम् | १५२ |
| पृता दितुलाविधिः | ९७ | अञ्बदानम् | १५२ |
| रू प्यादितुलादानम् | ९८ | श्वेताक्वदानम् | १५३ |
| हिरण्यगर्भदानम् | 808 | तिलदानम् | १५४ |
| अथैतत्त्रयोगः | १०७ | महातिलपात्रम् । | १५५ |
| ब्रह्माण्डदानम् | 350 | तिलकुम्भदानम् | १५७ |
| अथ प्रयोगः | 448 | तिछकरकदानम् | १५७ |
| कल्पतरुदानम् | ११५ | गजदानम् | 146 |
| मयोगः | ११७ | दासीदानम | १५९ |
| 경우를 살아내는 그는 경기가 있는 것을 가득했다. | | | |

(8)

| , | पृष्ठम | | पृष्ठम् |
|---------------------------|--------|-------------------------|---------|
| रथदानम् | १५९ | उभयतोमुखीदानम् | १८६ |
| महीदानम् | 850 | कण्डमवलकम्बलम् | 966 |
| ग्रहदानम् | १६१ | वैतरणीदानम् | 966 |
| गृहवास्तुक्षा न्तिमयोगः | १६३ | महिषीदानम् | 156 |
| मतिश्रयदानम् | 9,00 | मेषीदानम् | १९० |
| कन्यादानम् | १७० | अजादानम् | १९२ |
| कपिलादानम् | 808 | मेषदानम् | १९३ |
| दश्रधेनुदानानि | १७२ | पर्वतदानानि | १९४ |
| तत्रादौ गुडधेनुः | १७२ | तत्रादौ धान्यपर्वतदानम् | 808 |
| तिलघेनुः | 808 | छवणाच ळदानम् | २०२ |
| घृतघेतुः | १७५ | गुडपर्वतदानम् | २०३ |
| जलघेनुदानम् | 3e8 | मुवर्णाचलदानम् | २०३ |
| क्षीरधेतुः । | 9.99 | तिलाचलदानम् | २०४ |
| द्धिषेतुः | 306 | अद्धोदये तिळाचलदानम | २०६ |
| मधुषेतुः | 200 | कार्पासाचलदानम् | २०६ |
| रसधेनुः | 900 | घृताचलदानम् | 209 |
| शर्कराधेतुः | 9.60 | रत्नाचलदानम् | 206 |
| कार्पासधेनुः | 9.69 | रौप्याचलदानम् | 206 |
| छवणधे नुः | 868 | शर्कराचलः | २०९ |
| सुवर्णघेतुः | १८२ | शिखरदानम् | 29,0 |
| बन्ध्यात्वहरं सुवर्णधेनु- | | भद्रनिधिदानम् | २१३ |
| दानम् | 963 | आनन्दनिधिदानम् | २१६ |
| स्वरूपतो गोदानम् | 9.68 | अथ देवतादानानि | २१८ |
| हेमश्रुङ्गीदानम् | १८६ | तत्रादौ दशावतारदानम | |
| देवार्थधेनुदानम् | १८६ | ब्रह्मावेष्णुरुद्रदानम् | 299 |

| | पृष्ठम | | वृष्ठम् |
|------------------------|-------------|------------------------|---------|
| द्वादशादित्यदानम् | २२० | पुस्तकदानम् | २४४ |
| चन्द्रादित्यदानम् | २२१ | छत्रोपान हदानम् | २४४ |
| लोकपालाष्ट्रकदानम् | २२२ | अन्नदानम् | २४४ |
| नवग्रहदानम् | २ २३ | वर्षाशनदानम् | २४४ |
| वारदानानि | २२५ | ताम्बुलदानम | २४४ |
| शुलदानम् | २२५ | गन्धद्रव्यदानम् | २४४ |
| आत्मपातिकातिदानम् | २२६ | रत्नदानम् | २४५ |
| धनदमृत्तिदानम् | २२७ | गलन्तिकादानम् | २४५ |
| बाल्यामदानम् | २२८ | प्र पादानम् | २४५ |
| काळपुरुषदानम् | २२८ | उदकदानम् | २४६ |
| कालचक्रदानम् | 230 | धर्मघटदानम् । | २४७ |
| यमदानम् | 239 | यद्गोपवीतदानम् | २४७ |
| आयुष्करदानम् | २३२ | यष्टिदानम् | २४८ |
| सम्पत्करदानम् | २३२ | दण्डदानम् | 286 |
| कृष्णाजिनदान म् | २३४ | इन्धनदानम् | २४८ |
| शय्यादानम् | e\$9 | अग्नीष्टिकादानम् | २४८ |
| बस्रदानम् | २३९ | दीपदानम् | २४९ |
| अासनदानम् | २४० | अभयदानम् | २५० |
| पात्रदानम् | २४० | मासेषु दानानि | २५० |
| स्थालीदानम् | २४१ | अक्वत्थसेचनम् | २५१ |
| पाकदानम् | २४१ | पान्धोपचाराः | २५१ |
| विद्यादानानि | २४१ | गोपरिचर्या | २५२ |
| पुराणदानम् <u> </u> | २४२ | सहस्रादिविषयोजनवि | धः२५३ |
| वेददानम् | 283 | नानाद्रव्यदानमन्त्राः | २५३ |



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ श्रीभगवन्तभास्करस्य

दानमयूखः।

विद्वदरभद्दश्रीनीलकएठविरचितः॥

यो छीलया सन्तनुतेऽत्र विश्वं तद पालपत्यात्मिन विश्वक्षे ॥ लयं नयत्याशु च पूर्णक्षः शिवं तनोत्वाशु रिवर्ममासौ ॥ १ ॥ श्रुतीः स्मृतीवीक्ष्य पुराणजातं तत्तिवन्धानि सिश्वन्धान् ॥ श्रीशङ्करस्यात्मज एष दाने श्रीनीलकण्डो विष्टणोति कृत्यम् ॥ २ ॥

परस्वत्वोत्पत्यन्तो द्रन्यस्यागो दानम् । न्यसयिनिमयाद्यः स्त्वेतन्त्राप्या एव । दानपदमयोगादिति केचित् । परे प्रयोगस्य भाक्तत्वाक्तिक्रत्तेनापि विशेषणीयिमस्यादुः । दामोदरठक्करस्तु क्रयादि वार्गयतुष्टप्रार्थतेन विशेषणीयम् । प्रीत्यादिदाने दानपदं गोणमित्युचे । तन्न । सोमक्रयातिन्याष्ट्यवारणात् । गौण्यां मानाभावाच । द्रस्यविष्ठाचुदेशेन सक्तस्यापहर्त्ता तु पत्यवैत्येव । ताद्यापद्दारे शिष्टविगानेन निषेषकल्पनात् । परस्वं नाददीतेस्वन्माकारकः प्रसक्षसत्तु निषेषो न प्रवर्त्तते । अपहारदशायां कस्याप्टारे सिक्ष्यभावात् । दातुः पुनहत्पत्तौ तु मानाभावः । रक्षणे तुं परकीयस्यापि प्रीत्यादिनोपपद्यते एव । अग्न्युदेशसक्तपुरोदाक्षादां ।

विव । अन्यथा तत्राऽपि पुनरुत्पत्तिप्रयोजकस्त्रिष्टकुदादिविध्य-भावेऽपि पुनरुत्पत्तिप्रसङ्गः । स्विष्टकृदादिविधिसन्त्र एव पुन-रुत्पत्तिनीन्यथा । त्यक्तोपादाने विगानादिति निर्णायितं तन्त्र-रब्रादौ । न त्यागकाले स्वत्वापगमः, किं तु विशकर्त्तृकस्वीकार-काल इति त कस्यचिद्धाहतः मलाप उपेक्षणीय एव । यदि केनचित कश्चिद्राह्मणमुद्दिश्य किश्चिद् द्रव्यं मुनर्णरजतादि, मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् * दाता तत्फलमास्रोति म-तिग्राही न दोपभागित्यादिवचनप्रतिपादितेन विधिनोत्स्डच देशा-Sन्तरस्थाय तस्मै तदुदुव्यं पहितम् । तच्च यदि मध्येमार्ग नष्टं चौरै-र्वापहृतं तदा दातुर्न कोऽपि मत्यवायः । ममाणाभावात । दान-फलं तु नैव जायते । ब्राह्मणस्वत्वापश्यवसानकस्योत्सर्गस्याजा-तत्वात् । नचानेन वचसा दानानुकल्पेन पात्रोदेश्यकः सङ्कल्प एव विधीयते, न तु पात्रस्वत्वोत्पत्तिपर्यन्तताऽपि । उद्देशमात्रश्रवणाद् इति वाच्यम् । प्रजापतिव्रतान्तर्गतोद्यदादित्यानीक्षणसङ्खल्पवदु अत्रापि फलपर्यन्तताया आवश्यकत्वात् । अन्यथा तत्रापि सङ्कल्प-मात्रादेव फलं स्यात्। अस्त्वितिचेन्मैवम् । तस्य व्रतमिति भाव-रूपत्रतोपक्रमेणाभावरूपाऽऽदित्यानीक्षणाद्यक्तिविरुद्धोपक्रमानुरो-धाव प्रतिपालनीयस्वार्थाऽन्यभिचारिणीं भावक्रपां संकल्पक्रियां रुक्षपति । तत्र च परिपालितेऽनीक्षणादौ व्यभिचारात् सङ्कल्-छक्षणैव दुर्घटा स्यातः। अतो न सङ्करपमात्रातः तत्र फलम् । किञ्चात्र वैधदेशकालावच्छेदेन पात्रहस्तपक्षेपासम्भवे तत्स्थाने मानसपात्रोदेव्यको जलाधिकरणको जलपक्षेपो विधीयते । न त पात्रस्वत्वापित्तपर्यन्तताऽपि वाध्यते।यद् दातृप्रतिगृहीतृपदैस्याग-मतिग्रहयोः मतीतेः । अतो न मतिगृहीतृत्यापारं विनोदेशविशिष्ट-जलपक्षेपपात्रात फलमिति दिक् ॥

यत्तु देवलः । अर्थानामुद्ति पात्रे श्रद्धया मतिपादनम् । दानमिस्राभिनिर्दिष्टं च्याख्यानं तस्य कथ्यत इति ॥ तद् वस्यमाण-साक्त्रिकदानोक्त्यर्थं, न दानसामान्यपरम् । इति दानस्वकृपम् ।।

प्तत्मकांसा सामवेदोपनिषदि। दानेन सर्वाद कामानवामी-ति चिरञ्जीवत्विमिति ॥ ज्यासः । यददासि विविष्टेभ्यो यद्क्ना-सि दिने दिने। तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्पापि रक्षसि । ब्रासा-दर्द्धमिप ब्रासमिथिभ्यः कि न दीयते । इच्छानुक्षो विभवः कदा कस्य भविष्यतीसादि ॥

तच्च दानं त्रेघोक्तं भगवद्गीताम् । दातव्यमिति यदानं दीयतेऽज्ञुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं साच्यिकं स्मृतम ॥ यचु पत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्षिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असंस्कृतमवद्गातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ विष्णुपर्मोत्तरे । तामसानां फलं मुङ्के तिर्पक्ते मानवः सदा । वर्णसङ्करभावेन वार्द्धके
यदि वा पुनः ॥ वाल्ये वा दासभावे वा नात्र कार्या विचारणा ।
अतोऽन्यया तु मानुष्ये राजसानां फलं भवेत ॥ साच्चिकानां
फलं मुङ्के देवत्वे नाऽत्र संशयः ॥ मास्त्ये । येषां पूर्वकृतं कर्म
साच्चिकं मनुजोत्तम।पौरुषेण विना तेषां केषाश्चिद्दद्वयते फलम् ॥
कर्मणा पाष्यते लोकान् राजसस्य तथा फलम् । छच्छ्रेण कर्मणा
विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥ हारीतः । मुमुर्युस्तामसं यचाप्रकृतो ददातीति॥ अपकृतोऽसावधानः। गास्हे, अईते यद मुवर्णादिदानं तद कायिकं मतप । आर्चानाममयं दद्यादेतद्धि वाचिकं
स्मृतम् ॥ विद्यामादाय यज्जप्यैस्तद्दानं मानसं द्विजा इति ॥

अथ दानसामान्येतिकर्त्तव्यता ॥ तत्र दानाऽधिकारस्तु चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीणां च । वर्णानामाश्रमाणां च चातुर्वर्ष्ये युधिष्टिर । दानधर्म प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् इति व्यासोक्तेः॥ स च निषादस्थपितवद् वैदिकमन्त्रवरस्विप समन्त्रक एव स्त्रीग्रह्मयोरविरुद्धः । मदनरत्ने जःत्कुण्यः । अधिकारी भवेच्छ्द्रः पूर्त्तधर्मं न वैदिके।पूर्त्तधर्मास्त्रत्ने स्मृत्यन्तरे । बहिर्वेदि च यदानं तत्पीर्तिकसुदाहृतम् ॥ तत्रैव व्यासोऽपि । अन्तर्वेद्यां च यदानिमिष्टं तद्भिधीयते इति ॥

अथ पात्रम् । याज्ञवल्कयः । न विद्यमा केवलया तपसा वाऽपि पात्रता । यत्र हत्तमिमे चोमे तद्धि पात्रं मचक्षत इति ॥ व्यासः । प्रथमं तु गुरोद्दीनं दत्वा ज्येष्टमनुक्रमात् । ततोऽन्येषां त विमाणां दद्यात पात्रानुरूपतः ॥ भविष्यपुराणे । सन्निधानस्थि-तान् वित्रान् दौहित्रं विद्पार्तितथा।भागिनेयं विशेषेण तथा वन्धृन् ग्रहागतान ॥ नातिकामेन्नरस्त्वेतान सुमृर्खानिप दीयते । अति-क्रम्य महारौद्रं रौरतं नरकं ब्रजेत ॥ विद्पतिर्जामाता । विष्णु:। मातृष्त्रसा स्वसा चैव तथैव च पितृष्त्रसा । मातामही भागिनेथी भागिनेयस्तथैत च ॥ दौहित्रथैत जामाता तेषु दत्तिमहाक्षयम् । श्रीस्रष्टेषु तथा दत्तं तदस्यक्षय्यमुच्यते ॥ मातापित्रोर्गुरी मित्रे विनीते चोपकारिणि । दीनानाथिविद्याष्ट्रेभ्यो दातव्यं भृति-मिच्छता ॥ विष्णुः । पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरेव च । अनन्तं दृष्टितुर्दानं सोदर्धे दचनक्षयम् ॥ एतत् पर्शसामात्रम् । दक्षः । सममनाह्मणे दानं द्विगुणं न्नाह्मणत्रुत्रे । सहस्रगुणमाचार्ये त्वनन्तं वेदपारगे ॥ व्यासः । ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारव-र्जितः । जातिमात्रोपजीवी च भवेदब्राह्मणः स तु ॥ गर्भाधाना-दिभिर्युक्तस्तथोपनयनेन च । न कर्मविल्लचाधीते स भवेहाह्मण-ब्रवः ॥ तथा । देवार्चनपरो नित्यं वित्तार्थी वत्सरत्रयम् । असौ देवलको नाम इन्यकन्येषु गाईतः ॥ यत्तु बृहस्पतिना, शुह्ने सुप्र-

गुणं दानं वैश्येत द्विगुणं स्मृतम् । क्षत्रिये विगुणं पोक्तं ब्राह्मणे षर्गुणं स्मृतमिति स्ट्रादीनामित पात्रतोक्ता, साऽत्राच्छादनपरा। अन्नाच्छादनदानेषु पात्रं नैत्र विचारयेत्र । अन्नम्य स्वुधितं पात्रं विवस्तो वसनस्य चेति विष्णुधर्मोक्तेः॥अपात्रायाऽमन्त्रकं दानम्। मन्त्रपूर्वं तु स्दानमपात्राय प्रदीयते । दातुर्निकृत्य दृश्गं तु श्रोतुर्निक्तां निकृत्ततीति शातातपोक्तेः॥ तथा । यस्य वेदश्च वेदी च विच्छियेते त्रिपूरुपम् । स व दुर्झाह्मणो नाम यश्च व दृशकीन्पतिरिति ॥ अपात्रिमित्यर्थः॥

अथ देवम् । यथाविधेन द्रव्येण यत्किश्चित् कुरुते नरः । तथाविधमवाप्रोति स फलं मेत्य चेह च ॥ तथाविधं शुक्केन शुद्धं शबलेन दुःखसंमिश्रं कुष्णेनासुखोदयम्। शुक्रादिखद्भं तु स्मृतौ। श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यान्वयागतम् । धनं सप्तविषं शक्र-मुदयोऽप्यस्य तद्विषः ॥ कुत्तीदकृषिवाणिज्यशिष्यशुक्कानुद्वत्तितः। कृतोपकारादाप्तं च शबळं समुदाहतम् ॥ पार्श्वकद्युतचौर्यात्तिप-तिक्वकसाहसैः । व्याजेनोपाजितं यत्तत्त्वेषां कृष्णमुच्यते इति॥ पार्श्वकं सर्वदा समीपस्थित्या सेवा। मतिक्ष्पकं वेशान्तरग्रहणप । शिवधर्भे । तस्मास्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् । भागद्वयं त धर्मार्थमानित्यं जीवितं यतः ॥ सर्ववित्तस्य भागपश्चकं कृत्वा भागत्रयं जीवनार्थ, भागद्वयं धर्मार्थमिति हेमाद्रिः । भागत्रयं सर्व-वित्तस्य। तत्रैको भागो जीवनाय, भागद्वयं धर्मायेसन्ये। क्रुपणा-ऽशक्तविषये तु भारते। एकां गां दशगुर्दचादश दद्याच गोशती। शतं सहस्रगर्दद्यात् सर्वे समफलाः स्मृता इति ॥ गोपदं वित्त-मात्रोपलक्षणार्थम् । अन्यथा पञ्चगवादेः सहस्राधिकगवादेश्च गोदानेऽनधिकारः स्यादिति हेमाद्रिः । यगः । सुर्वर्णे रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति । न तत्फलमवामोति तत्रैन परिवर्त्तते ॥ यतये काश्चनं दत्वा दाताऽपि नरकं व्रजेत ॥ अपिशब्दात प्रतिग्रहीताऽपि ॥ अङ्गिराः । देवतानां गुरूणां च मातापित्रोस्तथेव च । पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं कचित ॥ तथा । पापदः पापमाप्रोति नरो छक्षगुणं सदा । पुण्यदः पुण्यमाप्रोति
शतशोऽथ सहस्रशः ॥ स्कान्दे । आपत्स्विप न देयानि नव वस्त्विन
सर्वदा । अन्वये सित सर्वस्वं दाराश्च शरणागताः ॥ न्यासाधी
कुळ्टार्त्ते च निक्षेपः स्त्रीधनं सुतः। यो ददाति स मुद्दात्मा पायश्चित्तींवयुद्ध्यति ॥ अङ्गिराः । बहुभ्यो न प्रदेयानि गोगृहं शयनं
स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा ह्यता द्वातारं तार्यन्ति हि ॥ विभक्तदत्तानि पृथ्यदत्तानि । गारेकस्यैव दातन्या न बहुभ्यः कथश्चन ।
सा हि विक्रयमापन्ना दहसासम् कुळांमिति ॥

अग्राह्यं स्कान्दे ॥ अजिनं मृतग्रय्यां च मेथीं चोभयतोमुखीम । कुरुक्षेते च ग्रह्णांने न भूयः पुरुषो भनेत ॥ अग्राह्यं
भक्तस्त तत्रैन । हरस्यवर्ययानानि मृतग्रय्यासनाद्यः । अग्राह्या
इत्यर्थः । आसनं मृतस्येन । पद्मपुराणे, ब्रह्माण्डं भूमिदानं च ग्राह्यं
नैकेन तद्भवेत । अव्यं च मणिमातङ्गतिलल्लोहानि वर्जयेदिति ॥
विसष्टः । शस्त्रं विषं सुरा वाऽप्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ॥ हेमाद्रो
पाग्ने । अतिदुष्टा मेतग्रय्या न ग्राह्या द्विज्ञसत्तमेः । ग्रहीतायां च
तस्यां तु पुनः संस्कारमहीते । लोहं तिलाश्च महिषी तैलं लवणमेव च । तिल्लेचुर्मणिश्चैन घोराः सप्त पतिग्रहा इति ॥ मनुः ।
हिर्ण्यं भूमिमन्वं गामचं वासित्तिलान् घृतम् । अविद्वान् प्रतिगृह्यानो
भस्मीभवति काष्ट्रवत् ॥ पतिग्रह्मसर्थोऽपि पसङ्गं तत्र वर्जयेत ।
प्रतिग्रहेण विपाणां बाह्यं तेजो विनक्यिति ॥ इति देयदृव्यम् ।

अथ काळाः।वाराहे,दर्शे शतगुणं दानं तच्चतुर्श्ने दिनक्षये। शतशंतच संक्रान्तौ शतशं विषुवे ततः ॥ युगादौ तळतगुण-

मयने तच्छताहतम् । सोमग्रहे तच्छतहर्न तच्छतहर्न रवेर्ग्रहे ॥ तच्छतघ्नं च्यतीपाते दानं वेदविदो विदः ॥ विष्णुधर्मीत्तरे । वैशासी कार्तिकी माबी पूर्णिमा तु महाफ्छा ॥ पौर्णमासीषु सर्वा-सु मासर्भसहितासु च ॥ दत्तानामिह दानानां फलं शतगुणं भने-त् ॥ यस्यां पूर्णेन्द्ना योगं याति जीवो महाचछः । पौर्णमासी तु विज्ञेया महापूर्वा द्विजोत्तम ॥ स्नानं दानं तथा जप्यमक्षय्यं वै तदा स्मृतम् ॥ शङ्काः । अमात्रास्या तु सोमेन सप्तमी भानना सह । चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्ट्रमी ॥ चतस्रस्तिथयस्त्रे-तास्तल्याः स्यर्ग्रहणादिभिः । सर्वमक्षयमत्रोक्तं स्नानदानजपादि-कम् ॥ अमावास्या व्यतीपातो ग्रहणं चन्द्रसूर्यपोः । मन्वादयो युगादिश्व संक्रान्तिर्वेधृतिस्तथेसादि ॥ भारते । रात्रौ दानं न शंसन्ति विना त्वभंयदक्षिणाम् । विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठ दीपमञ्च मातेश्रयम् ॥ विनेतिपदं विद्यादिभिरपि सम्बद्धाते । तथा । महानिशा त विद्येया मध्यस्यं प्रहरद्रयम् । स्नानं तत्र न कुर्वीत काम्यं नैभित्तिकाहते ॥ नेच्छन्सेके स्नानदानं रात्रौ मध्यमयाम-योः । नैमित्तिकं तदा कुर्यानियं तु न मनागिप। उभयतो मुख्या-Ssतुरदानाभयदानान्नदानादिकं तु सर्वदा भवतीति तत्र स्पष्टम । अर्द्धप्रसुतां गां दद्यात् कालादि न विचारपेदिति ॥

अथ पुण्यदेशाः । मतुः । हपद्वतीसरस्वसोर्देवनद्योर्थदन्तरप्।
तदेवनिर्भितं देशं ब्रह्मावर्त्तं शचक्षते ॥ कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चान्छाः ग्रुर्सनेकाः । एप ब्रह्मािष्ट्देशो व ब्रह्मावर्त्तदनन्तरः ॥
मत्स्यो विराटदेशः । पञ्चालाः कान्यकुन्नाहिच्छत्रादिदेशः ।
श्रुर्सनिको मथुरादिदेशः । हिमवदिन्ध्ययोर्भध्यं यद प्राग्विनशनाद्वि । प्रत्योत्र प्रयागाच्च मध्यदेशश्च कीर्तितः । विनशनमन्तर्द्वानम् । भविष्यपुराणे, वाराणसीकुरुक्षेत्रमयागपुष्करक्षेत्रनङ्कान

समुद्रतीरनैिमपाऽमरकण्टकश्रीपर्वतमहाकालगोकणंदेवपर्वताऽऽदीनि पुण्यानीति ॥ पाझे, लिङ्गं वा मातेमा वाऽपि दृहयते यत्र कुत्रचित ॥ तत्र सर्वे पुण्यतां याति दानेषु च महाफलम् ॥ भविष्योत्तरे, क्रोशमात्रं भवेत् क्षेतं शिवस्य परमात्मनः । प्राणिनां
तत्र पञ्चत्वं शिवसायुज्यकारकम् ॥ फलं दत्तहुतानां च अनन्तं
परिकीर्त्तितम् । मनुजैः स्थापिते लिङ्गे क्षेत्रमात्रमिदं स्मृतम् ॥
स्वयम्भुवि सहस्त्रं स्यादार्षे चैव तदर्बकम् ॥ तथा, गृहे दशगुणं
दानं गोष्ठे चैव शताधिकम् । पुण्यतीर्थेषु साहस्त्रमनन्तं शिवसिन्धधौ ॥ मात्स्ये । शालग्रामसमुद्भूतः शैलचकाङ्कमण्डितः । तिष्ठते
यत्र वसुधे तत्क्षेत्रं योजनत्रयम् ॥ द्वारवसाः शिला देवि मुद्रिता
मम मुद्रया । यत्रापि नीयते तत् स्यात् क्षेत्रं द्वादशयोजनिमसादि ॥ काशीखण्डे, अन्यत्र यत् छतं कर्म त्रतं दानं तपो जपः ।
गङ्गातदेषु तत् सर्वं छतं कोटिगुणं भवेत् ॥ मात्स्ये । अधिहोत्रगृहे चैव यदल्पमपि दीयते । तदनन्तफलं सर्वं भवतीति विनिधचः । इति देशाः ॥

मितग्रहे देशनिषेवः पाश्चे, न तीर्थे मितग्रह्णीयाद माणैः कण्डगतैरिप ॥ त्रह्मपुराणे, मनाहमनिष् कृत्ना यानद्धस्तचतुष्टयम् । तत्र न मितग्रह्णीयाद माणैः कण्डगतैरिप ॥ दानवर्मे । भाद्रशुक्तः चतुर्दश्यां यानदाक्रमते जलम् । तानद्गर्मे विज्ञानीयात्तदृश्चे तीरमुच्यते ॥ मात्त्येऽपि । सार्द्धह्मकातं यानद्गर्भतिस्तिरमुच्यते । स्कान्दे । तीराद्भव्यतिमानं तु परितः क्षेत्रमुच्यते इति ॥ इदं च गङ्गायाम् । गर्भमतिग्रहनिषेधः मिसद्धनदीषु । मिसद्धतर्गण्डक्यान्दिषु तु तीरेऽपि । गङ्गायां तु क्षेत्रेऽपीति सर्वशिष्टाचारः ॥

अथ दातृक्कत्यम् । मनुः । प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते । न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलपः ॥ कात्यायनः। कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना । देयं प्रतिग्रहीतव्यपन्यथा विफलं भवेत ॥ स्मृत्यन्तरे।दद्यात पूर्वमुखो दानं मृहीयाद् तरा-मुखः । आयुर्विवर्द्धते दातुर्प्रहीतुः क्षीयते न तद ॥ हेमाद्रौ । नामगोत्रे समुचार्य सम्प्रदानस्य चात्मनः । सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंख्रयम् ॥ शास्त्रामप्युच्चारयन्ति शिष्टाः । वस्ता-SSदिना विपवरणं च कुर्वन्ति मध्यदेशे। तथा, नामगीत्रे समुचार्य सम्यक्श्रद्धान्त्रितो ददेव । सङ्क्षीत्र्यं देशकालादि तुभ्यं सम्प्रददे इति ॥ न ममेसाप कीर्चयन्ति शिष्टाः । वाराहे । सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकित्रयः । कामक्रोधविहीनश्च पालण्डस्पर्शवर्जितः । दद्यादितिशेषः । गौतमः । अन्तर्जानुकरं कुत्रा सकुरं सतिलोदकम् । फलान्यपि च सन्धाय पदद्या-च्क्रद्धयार्शन्वतः। तथा, नामगोत्रे समुचार्य पाङ्मुखो देयकीर्त्तनाः त् । उदङ्गुखाय विमाय द्त्वा तं स्वस्ति की चेयेत् ॥ सदेवताक-देयकीर्त्तनाऽनन्तरं दत्वेसर्थः । देवलः, प्रदाय शाकसृष्टिं वा यस्तु श्रद्धासमन्त्रितः । महते पात्रभृताय सर्वाभ्युद्यमाष्तुया-त् ॥ पात्राऽसित्रधाने नारदीये । मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूगौ विनिक्षिपेत । विद्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते । पात्राऽसिक्षधानेऽन्यविभकरे दानं देयमिति धौम्यस्मृतौ । पात्रा-उसन्नियाने । अप्यु देयं विनिक्षिपेदिति पर्त्रिशन्मते । देयपात्रासं-न्नियाने तत्रैव विशेष उक्तः । द्रव्यपात्रविकर्षश्चेत् परीक्षं दातु-सुद्यतः । तं ध्यायाद्वेभतं पात्रं द्रव्यमाद्विसदैवतम् । तथा । परोक्षे करिपतं दानं पात्राभात्रे कथं भवेत । गोत्रजेभ्यस्तदा दद्यात्तद-भावेऽस्य बन्धुषु ॥ गोत्रजाः पात्रस्य । स्कान्दे । तस्मात् प्रणव-मुचार्य कारयेत प्रतिग्रहम् ॥ याज्ञवल्क्यः । प्रतिग्रहे स्नृतिचाक्र-ध्वजिवेश्यानराधियाः। दृष्टा दशगुणं पूर्वात पूर्वादेते यथाक्रमस्॥ राजा शास्त्रातिक्रमत्रती । न राज्ञः पतिग्रुक्कीयाल्लुब्यस्योच्छास्त्रव-र्गिन इति स्मृतेः । तद्दपत्रादः, अयाचिताहृतं ग्राह्मभि दुष्कृत-कर्मणः । अन्यत्र कुल्ठदाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः । तथा, चा-ण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छ्रद्रभिक्षितात् । यज्ञार्थे लब्बमद्दद् भासः काकोऽपि वा भवेत् ॥ यज्ञादेशेन न याचेतेत्यर्थः । प्रका-रान्तरेण लब्बेन यज्ञे कृते न दोषः । अत एव ज्ञायते, वैश्यादे-र्यज्ञोदेशेनाऽपि याचनीयमिति ॥

अथ मतिग्रहीतुकृत्यम्।ॐकारमुचरन् माज्ञो द्विणं सकुशो-दक्म । गृहीयाइक्षिणे इस्ते तदन्ते स्वस्ति की र्चयेत् ॥ पुराणा-न्तरे । प्रतिग्रहीता सावित्रं सर्वत्रैवानुकीर्त्तयेत । ततस्तु कीर्त्तयेत सार्खे द्रव्येण द्रव्यदेवताम् ॥ समापयेत्ततः पश्चातः कामस्तुसा म-तिग्रहम् । तदन्ते कीर्चयेव स्वस्तिमतिग्रहविधिस्त्वयम् ॥ सावित्रो देवस्य त्वेत्यादिः । आदित्यपुराणे, मतिग्रहं पठेदुचैः मतिगृह द्विजोत्तमात् । मन्द्रं पठेत् राजन्याद्पांशु च तथा विशि ॥ मनसा तु तथा शुद्रे स्वस्ति वाचनमेव च । सोङ्कारं ब्राह्मणे कुर्यानिसी-द्धारं महीपती ॥ उपांख च तथा वैश्ये मनसा शुद्रजे तथेति ॥ प्र-... तिग्रहश्च दक्षिणहस्तमध्ये कर्त्तन्यः। हस्तमध्ये ब्रह्मतीर्थं दक्षिणा-ग्रहणे च तदिति स्मरणात ॥ तथा, मतिग्रहस्य यो धम्यं न जाना-ति द्विजो विधिम् । द्रव्यस्तैन्यसमायुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ विधि तु धर्म्य विज्ञाय ब्राह्मणस्तु शतिग्रहे । दात्रा सह तर्त्येव महा-दुर्गाण्यसौ धुत्रमिति ॥ याज्ञवल्क्यः । प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः पतिग्रहम् । ये छोका दानशीछानां स तानामोति पुष्कछानि-ति ॥ अपत्यारूयेयमाह स एव । कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दिध क्षितिः । मांसं शब्यासना धानाः मत्यास्येयं न वारि च॥तथा, एथोदकं मूलफलं जलमभ्युदृष्टतं च यद् । सर्वतः



प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाऽभयदाक्षणामिति ॥ तथा, आमपांसं मध्य घतं धानाः क्षीरमथोदितम् । गुडं तक्रं च सङ्घाहां निष्टत्तेनापि शुद्र-तः ॥ खलक्षेत्रगतं धान्यं वापीक्रपगतं जलम्। अमाघोरपि तदाहां यच गोष्ट्रगतं पयः ॥ इश्वः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्याणि सर्व-तः ॥ बृहस्पतिः, विवाहोत्सवयक्षेषु त्वन्तरा मृतसूतके । पूर्वे संक-ल्पितं ग्राह्यं न दोषः परिकीर्त्तित इति॥ अत्र विवाहोत्सवयक्नेष्टिनित यजातेषु येयजामहं करोति नानुयाजेष्त्रितिबदुदेश्यविशेषणमापे विवक्षितम्।अन्यथा विवाहोत्सवयक्षेष्वितिपरिगणनं व्यर्थे स्यात । अतोऽन्यत्र पूर्वसंकल्पितस्य सूतकादौ दोष एवेति । द्रव्यदेवतास्तै-चिरीयासोमाय वासः।रुद्रायगाम्।वरुणायाऽश्वम्।वजापतयेपुरुषम्। मनवे तल्पम्।त्वष्टे Sजाम्।पूष्णे ऽविम्। निर्ऋत्या अववतरगईभौ। हिमव-ते हस्तिनम् । गन्धर्वाप्तरोभ्यः स्नगलंकरणे । विक्वेभ्यो देवेभ्यो धान्यम् ।वाचेऽत्रम् । ब्रह्मणे ओदनम् । समुद्रायापः। उत्तानार्या-Sक्कीरसायनः । वैक्वानराय स्थमिति॥ विष्णुवर्मोत्तरे। अभयं सर्व-दैवसं भूमिर्वे विष्णुदेवता । कन्या दासस्तथा दासी माजापत्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतमामहिषाश्वा-स्तथा याम्या उष्ट्रो वा नैर्ऋतो भवेत ॥ रौद्री धेतुर्विनिर्दिष्टा छाग-माग्नेयमादिशेत्।मेषं तु वारुणं विद्याद्वराहं वैष्णवं तथा॥आरण्याः पदावः सर्वे कथिता वायुदेवताः । जलपात्रांस्तु सर्वास्तु वारि-धानीं कमण्डलुप् ॥ कुम्भं च करकं चैव वारुणानि निवोधत । समुद्रजानि सर्वाणि वारुणानि द्विजोत्तमाः । आग्नेयदैवतं मोक्तं सर्वछोहानि चाष्यथापाजापत्यानि सस्यानि पकान्तमपि वै द्विज ॥ क्रेपास्त सर्वगन्धा वै गान्धर्वाश्च विचक्षणैः। बाईस्पसं स्मृतं वासः सौम्या क्षेया रसास्तथा ॥ पक्षिणश्च तथा सर्वे वायव्याः परि-कीर्त्तिताः ॥ विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च । सार-

स्वतानि देयानि पुस्तकादीनि पण्डितैः ॥ सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां विक्वकर्मा तु दैवतम् ॥ द्रमाणामय पुष्पाणां शाकेईरिनकैः सह। फलानामपि सर्वेषां तथा जेयो वनस्पतिः ॥ मत्स्यमांसे विनिर्दिष्टे प्राजापत्ये तथैव च ॥ छत्रं कृष्णाजिनं शय्यां स्थमासनमेव च I उपानही च यानं च यचान्यत प्राणिवर्जितम् ॥ तत्तु चाङ्गिरस-त्वेन प्रतिगृह्णीत मानवः ॥ शुरोपयोगि यतः सर्वे शस्त्रवर्मध्वजाः दिकम् । रणोपकरणं सर्व विज्ञेयं सर्वदैवतम् ॥ यहं त सर्वदैवसं यदनक्तं द्विजोत्तम । विज्ञेयं विष्णुदैवसं सर्वे वा द्विजसत्तमाः ॥ हेमाद्रौ यजुःपाठानन्तरं, राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणे अमुकस्म अमुकान्तेनाऽमृतत्वमञ्यां मयो दात्रे मयो महामस्तु म-तिग्रहीत्रे ॥ ततः कामस्तुनिः । ॐस्वस्तीति विशेषः । विष्यु-धर्मोत्तरे, भूषेः प्रतिग्रहं कुर्याद् भूपिं कुर्वन पदक्षिणम् । करे गृहीत्वा कन्यां च दासदास्योर्द्विजोत्तमाः ॥ करं त हृदि विन्यस्य धर्म्यों क्षेयः प्रतिग्रहः ॥ आरुख तु गजस्योक्तः कर्णे वाऽक्वस्य कीर्तितः । तथाचैकशफानां त सर्वेषां च विशेषतः ॥ तथा कर्णः, मतियुद्धीत तान् शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ॥ तान् एकश्रफा-न् । अत्र श्रृङ्गिणामेकशफानां श्रृङ्गे इतरेषां कर्णे इति तु व्यव-स्था । कर्णेजः पश्चनः सर्वे प्राह्याः पुच्छे विचल्लणेः अ गृह्णीया-न्माहिषं श्टङ्गे खरं वै पृष्ठदेशतः॥ पतिग्रहमथोष्ट्रस्य यानानां चा-धिरोहणात् । बीजानां मुष्टिमादाय रत्नान्यादाय सर्वतः ॥ वस्त्रं दशान्तादादद्यात परिधायाऽथवा पुनः। आरुह्योपानहौ पञ्च आ-रुह्येव त पादके ॥ वर्षध्वजी तु संस्पृत्रय प्रवित्रय च तथा गृहप् । अवतीर्य च सर्वाणि जलस्थानानि वै द्विजाः ॥ ईषायां त रथो ब्राह्मञ्छत्रं दण्डे तथैन च । दुर्माश्च प्रतिगृहीयानमूलन्यस्तकरो द्विजः ॥ आसुधानि समादाय तथाऽऽमुच्य विभूषणम् ॥ परिशिष्टे तः

त्रिम्हित गां पुच्छे कर्णे वा हिस्तनं करे। मूध्ति दासीमजं चैत्र पृष्ठे दक्तरस्तर्भो ॥ अवनं कर्णे सटे वाऽपि अस्मुहित्र धारयेत् ॥ शत्यामनं यहं सेत्रं संस्कृत्यादाय काश्चतम् । उद्दं च ककुदे स्पृष्ट्वा मृगांश्च महिवादिकात् ॥ गोधामव्यविधानेन पुच्छे संस्कृत्य पांसणः । दंष्ट्रियो दंशिनश्चेत्र तथा स्वृद्धमृगाश्च ये ॥ ओजास्त्रनां च सर्वेवामेष एव विधिः स्मृतः ॥ छत्रं च चामरं मूळे फळं संया गौरवाद । ममुबोपानहो मन्त्रं वाचयेत् प्रतिमृत्य वे ॥ बासस्त्यथ समादाय कन्यां शिष्क्षी करे । रतिभायां परपूर्वा पांतमुक्षीत चाक्षताम् ॥ पुत्रमुक्तम् नातमुक्तित दक्तव्य । स्थे स्थमुके स्पृष्टा प्रतिमृत्वति कृत्वरे ॥ कृत्वरो युगाधारङ्काष्ठम् । युग्यकाश्चनवस्त्राणामङ्गयुक्ते प्रतिमृहः ॥ इति सामान्येतिकर्त्तव्यतानिक्ष्वणम् ॥

अथ परिभाषा । वामनपुराणे, सर्वमङ्गल्यं वरेण्यं वरदं सुभम । नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्षाणि कारयेत ॥ भविष्ये, सङ्कृत्येन विना वित्र यत्किञ्चित् कुरुते नरः । फलं वाऽल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धस्यो भनेत ॥ वित्रष्टः, जपहोमोपवासेषु धौत-वस्त्रथरो भनेत । अलङ्कृतः श्रीचर्मोनी श्रद्धावान् विजितेन्द्रियः ॥ याज्ञत्रक्त्यः, यदि वाग्वपल्लोषः स्याज्जप्यादिषु कथञ्चन । व्याहरे-द्वेष्णां मन्त्रं स्मरेत् वा विष्णुमञ्ययम् ॥ स एत, रौद्रांखन्तासुरा-त मत्रांस्त्या चैनाभिचारिकान् । व्याहत्यालभ्य चात्मानमपः स्पृष्ट्वान्यदाचरेत् ॥ कात्यायनः, पिञ्यमन्त्रानुद्रवणे आत्मालम्भे-ऽन्त्रभाषणे ॥ मार्जारमृषक-स्पर्ते आकृष्टे क्रोधसम्भवे । निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वश्व-पः स्पृश्वेत ॥ आत्मालम्भो हृद्यस्पर्शः । स च कर्मणि विहित इति केचित् । स्मृत्वर्थसारे, कर्न्द्रनामनुक्तौ तु दक्षिणा-

Sक्नं भनेत् तथा ॥ छन्दोगपरिशिष्टे, यत्र दिक्नियमो नास्ति जपादिषु कथञ्चन । तिस्नस्तत्र दिशः मोक्ता ऐन्द्री सौम्याऽपरा-जिता ॥ तत्रैव, आसीन ऊर्घ्वः पहो वा नियमो यत्र नेह्याः । तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रहेन न तिष्ठतेति ॥ तथा, पञ्चाशद्धिर्भवे-द् ब्रह्मा तदर्खेन तु विष्टरः । दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामावर्त्तसतु विष्टरः ॥ तथा, अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेत च । मादेश-मात्रं विक्रेयं पवित्रं यत्रकुत्रचित् ॥ तथा, सदोपनीतिना भाव्यं सदा बद्धशिषेन च । विशिषो व्युपवीतश्च यद करोति न तद कृतम् ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, पन्त्रेणोङ्कारपूर्वेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने जुहुपाद्यायन् वै मन्त्रदेवताम्॥ ब्राह्मे, शमीपलाश-न्यग्रोधप्लक्षत्रैकङ्कतोद्भवाः । अध्वत्यौद्मवरौ विल्वश्चन्दनः सरछ-स्तथा ॥ नालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः ॥ कर्ममदीपे, नाङ्गुलाद्धिका कार्या समित स्यूलतया कचित्। न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥ मादेशात्राधिका नोना न तथा स्याद विशाखिका। न सपर्णा समित्र कार्या होमकर्मस्र जानता ॥ तथा, पागग्राः समिधो ग्राह्या अखर्वा नेःष्ट्रपाटिताः । काम्येषु वश्यकर्मादौ विपरीता जिघांसतः ॥ विशीर्णा विदछा हस्ता बक्रा बहुशिराः कृशाः । दीर्घाः स्यूला धुणैर्जुष्टाः कर्म-सिद्धिवनाशकाः ॥ वायुपुराणे, कण्डनं पेषणं चैत्र तथैवोक्केखनं तथा। सक्कदेव पितृणां स्यादेवानां तत् त्रिरुच्यते॥ भविष्यत्पुराणे, भूमौ स्थितेन पात्रेण विष्टब्धेन च पाणिना । वामेन पद्शार्द्छ नान्तरिक्षे तु हुयते ॥ धनायुद्दीररेखासु सोमतीर्थं तु मध्यमप्। लाजादिहवनं तेन कर्त्तव्यं वपनं तथा ॥ वपनं निर्वापः। कासायनः, पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका रसादिना चेत स्नुचि पर्व-पूरिका * दैत्रेन तीर्थेन तु हयते हतिः स्वङ्गारिणि स्वर्चिष

तच्च पावके ॥ योऽनांचिष जुहोसग्नौ च्यङ्गारिण च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चेव जायते ॥ तस्माद सिमद्वे होतव्यं
नासिमद्धे कथश्चन । आरोग्यमिच्छताऽऽयुश्च श्रियमासन्तिर्कां
तथा ॥ जुहुयुश्च हुते चैव पाणिशूर्पस्त्वादिभिः। न कुर्यादिश्विधनं
कुर्याद तु व्यजनादिना ॥ सुलेनैव धमेदिशिं मुलाद्धेयेषोऽध्यजायत । नाशि मुलेनेति तु यङ्घोकिके योजयन्ति तद ॥ बहृद्यपरिक्षिष्ठे, अथाबुधः सधूमे तु जुहुयाद्यो हुतादाने । यजमानो
भवेदन्धः सपुत्र इति चं श्रुतिः ॥ इति परिमाषात्रकरणम् ॥

मास्स्ये, होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत । अष्टाविश-तिरही वा यथाशक्ति विधीयते ॥ मृह्यपरिशिष्टे, बह्वल्पं वा स्व-गृह्योक्तं यस्य कर्म प्रकीचितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्व कृतं भवेत ॥ परत्तपन्यथा कुर्याद्यदि होमात् कथञ्चन । यतस्त-दन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥ अन्यथाभूतं विपर्यस्तप् । छन्दोगपरिविष्टे, यन्नाऽऽम्नातं स्वकारतायां पारक्यमविरोधि यद् । विद्वाद्धित्तद्तुष्टेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥ समाप्ते यदि जानीया-न्मयैतद्यथाकृतम् । ताबदेव पुनः कुर्यान्नाद्यत्तिः सर्वकर्मणः ॥ मधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायां तु नाष्टत्तिनं च तिःकया ॥ तथा, दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा बाह्मणा इविरम्रयः । अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः ॥ छत्रु-हारीतः, चितौ दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।स्तरणासन-पिण्डेषु पद् कुशान परिवर्जयेदिति ॥ ब्राह्मे, यथोक्तवस्त्वस-म्पत्ती ब्राह्मं तदनुकारि यत् । यवानामित्र गोधूमा बीहीणामित्र शालयः ॥ आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः॥ अनादेशे अविधाने।पाजा-पसमन्त्रः समस्तव्याहृतयइतिमद्नः । स्मृत्यन्तरेऽपि, न व्याहृत्या

समं इत इति ॥ गारुडे, मणवादि नमोऽन्तं च चतुर्ध्यन्तं च सत्तम । देवतायाः स्वकं नाम मुलमन्त्रः प्रकीत्तितः ॥ विष्णु-धर्मीत्तरे, दध्यलामे पयः कार्यं मध्यलामे तथा गुडः । धृतप्रति-निधि कुर्यात पयो वा दिध वा नृप ॥ सर्वाभावे यवः प्रतिनिधि-रिति पैठीनसिनोक्तम । बौधायनः, पछाशाञ्वत्यखदिररीहितकौ-दुम्बरीणामिध्मास्तद्लाभे सर्ववनस्पतीनाम् ॥ बौधायनः, आज्य-होमेषु सर्वेषु गन्यमेव भवेद् घृतम् । तदलाभे महिष्यास्तु आज-मानिकमेन च ॥ तदलाभे तु तैलं स्याचदलाभे तु जातिलय । तद्भावे तु कौसुम्भं तद्भावे तु सार्षपम् ॥ याज्ञवल्क्यः, आर्थ-इछन्दश्च दैवत्यं विनियोगं तथैव च।वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणं च विशेषतः । अविदित्त्रा तु यः कुर्याद्याजनाध्ययनं जपम्।होममन्त-र्जलादीनि तस्य वाडल्पं फल्लं भवेत् ॥ आदिसपुराणे, सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्त्तं भवालकम्।रत्नपञ्चकमाख्यातं शेषं वस्तु व्रवीम्यहम्॥ स्मृयन्तरेतु, कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्।एतानि पञ्च रत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुरिति॥तत्रैन, अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, गायण्याऽऽदाय गोमुत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं, दिध क्रान्णेति वै दिध ॥ तेजोऽसि शुक्रमियाज्यं देतस्य त्वा कुत्रोदकम् । एभिस्तु पञ्चभि-र्युक्तं पञ्चगव्यामिति स्मृतम् ॥ मदनस्त्रे कासायनः, आज्यं क्षीरं मधु तथा मधुरत्रयमुच्यत इति ॥ ब्राह्म, अक्वत्थोद्म्बरप्रक्ष-चुनन्यग्रोधपछ्वाः । पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्गसु श्रोमनाः ॥ पश्चमङ्गाः पश्चपछ्नवाः। चतुःसमं गारुडे, कस्तुरिकाया द्वी मागौ चत्त्रारश्चन्दस्य च । कुङ्कुमस्य त्रयश्चेत्र राशिनश्च चतुःसमम् ॥ शशी कर्पूरः । कर्पूरं चन्दनं दर्प कुङ्कमं च समांशकमः । सर्वगन्यभिति मोक्तं सगस्तसुरबद्धभप् ॥ दर्पः कस्तुरी ॥ तथा, कर्पूरमगुरुश्चेव

कस्त्री चन्दनं तथा । कङ्कोलं च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः ॥ छन्दोगपरिशिष्टे, कुष्टं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम् । वचा चम्पकमुस्तं च सर्वोषध्यो दश स्मृताः ॥ पाग्ने, इक्षवस्तृणराजं च निष्पावाजाजिपान्यकम् । विकारवच गोक्षीरं कुमुम्भं कुङ्कमं तथा ॥ छत्रणं चाष्ट्रमं तत्र सौभाग्याष्ट्रकसुच्यते ॥ तृणराजसाछ-स्तत्पात्रम् । अजाजी जीरकम् । विष्णुपर्भोत्तरे, मुक्ताफ्छं हरि-तकं वैडूटर्य पद्मरागकम् । पुष्परागं च गोमेदं नीछं गारुत्मतं तथा ॥ प्रवालमुक्तायुक्तानि महारत्नानि वै नव ॥ स्कान्दे, द्धि शीरमधाज्यं च माक्षिकं छवणं गुडः।तथैनेश्चरसश्चेति रसाः मोक्ता मनीषिभिः ॥ भविष्यत्पुराणे, आपः श्लीरं कुशाग्राणि दध्यक्षत-तिलास्तथा । यवाः सिद्धार्थकाश्चेति हार्चोऽष्टाङ्गः प्रकीर्त्तितः ॥ त्रजेव, सुवर्ण रजतं ताम्रमारकूटं तथैव च । छोहं त्रपु तथा सीसं धातवः सप्त कीर्त्तिताः ॥ पश्चरात्रे, रंजांसि पश्चवर्णानि मण्डला-Sर्थ हि कारयेत् । शालितण्डलचूर्णेन शक्तं वा यवसम्भवम् ॥ रक्तं कुसुम्भसिन्द्रगैरिकादिसमुद्भवम्। हरितालोद्भवं पीतं रजनी-सम्भवं तथा।। कृष्णं दग्धयवैः, हरितं पीतकृष्णविमिश्रितम्। रजनी हरिद्रा । भविष्यस्पुराणे, दुर्वा यनाङ्कुरश्चेत्र नालकं चृतपहन्ताः । इरिद्राद्वयसिद्धार्थिशिखिपत्रोरगत्त्रचः॥कङ्कुणौषप्रयश्चेताः कौतुका-SSख्या नव स्मृताः ॥ इति नव कौतुकानि ॥

दशाङ्गधूपो मदनरते, पङ्भागकुष्टं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पञ्च नस्वस्य भागाः * हरीतकी सर्जरसः समांसीमागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् । घनस्य चलारि पुरस्य चैको घृपो दशाङ्गः कथितो भुनीन्द्रैः । शिलाजं शैलेयम् । घनो सुका । पुरो गुग्गुलः ॥

भविष्यत्पुराणे विशेषः, अनुक्तद्रव्यतसङ्ख्या देवतामतिमा वृष । सौवर्णी राजती ताम्री दक्षजा मार्चिकी तथा ॥ चित्रजा

विष्टुलेपीत्था निजवित्तानुरूपतः । आमापात् पलपर्यन्ता कर्त्तन्या शाळ्यवर्जितैः॥ अङ्गप्रपर्वनभृतिवितस्त्यवधिका स्मृतेति॥ तत्तद्दाना-ऽङ्गदेवताप्रतिमालक्षणानि तत्र वश्यन्ते । तुलाऽधिष्ठितदेवता-प्रतिपानान्त्रलक्षणानि-त्रिनेत्रो दृषभस्थस्त्रिशुल्धक् । पाश्रपाणि-श्चन्द्रार्द्धभूषण ईवाः । क्वेताश्वरथगः सोमो गदापाणिर्वरप्रदः * घावद्धारेणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः॥रक्तवर्णास्त्रिनयना द्विभुजा-श्चन्द्रमौलयः । जाटेलाश्च मकत्त्रेच्या रुट्टा बाणधनुर्द्धराः । शुभ-इमश्रः सिन्द्रारुणसप्रभः । पद्मासनः पद्मकरो भृषिताङ्गो रसना-थरः । इमश्रुळो रसनाधरः संदर्शपाणिद्विशुजस्तेजोमूर्तिधरो महान् विक्तकर्मा । पीताम्बरः पीतत्रपुः किरीटी चतुर्भुजो देवगुरुः मशान्तो दण्डकमण्डल्वक्षसूत्रधृग् गुरुः । कमण्डलुं स्रुवं चैव शक्ति दर्भ-मपि क्रमात * कलयसङ्किरो नाम्नः कराग्राणि समन्ततः॥पाणय-श्चाग्निनाम्नोऽपि कलयन्ति जपस्रजम् । शक्तिं च पुस्तकं चैव क्रमादेवं कमण्डलुप् ॥ यज्ञोपत्रीती हंसस्य एकवस्त्रश्चतुर्भुजः। अक्षं स्रजं स्रवं धत्ते कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥ विक्वेदेवास्तु सर्वेऽपि दक्षिणे वाणपाणयः । कर्त्तव्या वामपाणौ तु सशरासनपाणयः ॥ कतर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धुरिलोचनौ । पुरुरवार्द्रवश्चेति विक्वेदेवा द्वा स्मृताः ॥ जगाद्विधातृरूपं मजापतितुल्यम् । चतु-भुंखत्वमात्रमस्याऽऽधिक्यं ज्ञेयम् । पर्जन्यनामा विज्ञेयो गजवक्राः-त्रपान्त्रितः अस्यो पत्ते सर्वजीवात्मा वरं जीवं च शोषकम् ॥ कुठारं च पयोजं च चिन्तारत्नं महाशुचिम् । पाशं चक्रं किशलपं कुण्डीं च दक्षभिः करैः ॥ शम्भुरीशतुल्यः । कुशविष्टरपद्मस्याः पितरः पिण्डपात्रिणः 🗱 ॥ पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो दण्डधरश्च हारी * चर्गासिधृक् सोमसुतः सदानः सिंहाऽधिक्द्री बरदो बुधश्र ॥ चतुर्वऋश्रतुर्वादुः सितमाल्यः सिताम्बरः । सर्वा- 55भरणवात क्वेतो धर्मः कार्यो महावपुः ॥ चतुर्दन्तगजारुढो वज्रपाणिः पुरन्दरः । शचीपतिः प्रकर्त्तच्यो नानाभरणभृषितः ॥ द्विभुजो देवभिपजो कर्त्तच्यावश्ववाहनौ ।तयोरोपपपः कार्या दिव्या दिश्वजो देवभिपजो कर्त्तच्यावश्ववाहनौ ।तयोरोपपपः कार्या दिव्या दिश्वजो देवभिपजो कर्याचश्वा ॥ वामयोः पुरतको कार्यो दर्शनीयो तथा द्विज । वरुणः पाश्चम् सौम्यः प्रतीच्यां मकराश्रयः। मित्रः कमल्रपाणिश्च कमल्रासनसंस्थितः ॥ द्विभुजः क्वेतमृत्तिश्च सर्वभृतिहेते रतः ॥ वरुणस्तु पूर्ववत् ॥ देवा एकोनपञ्चाशदेवेन्द्रसमतेनसः । श्वातरः पुरुहृतस्य मरुतः सूर्यवर्चसः ॥ किरीटहारकेयुरकटकादिविभूषिन्ताः । खह्मचर्भपरा निसं शक्रस्यानुचराः सदा ॥ इस्वमापिङ्गनेत्रं च गदिनं पीतिवग्रहम् । पुष्पकस्यं घनाध्यसं ध्यायेष्ट्यसस्यं सदा ॥ वरदो भक्तलोकानां किरीटी कुण्डली गदी । कार्यः सुरुष्पो गन्धर्वे वीणावाद्यरतस्तथा ॥ जल्याः पूर्ववत । मदिलपं दक्षिणाधःकरादारस्य निसशः । विष्णुः कौमोदकीपद्यशङ्खचकैन रलंकृत इति विष्णुलक्षणम् ॥

ब्रह्मत्रेवर्ते, दानकालेषु देवस्वं मतिमानां मकीर्त्तितम्॥ धेनू-नामपि घेनुस्वं श्रुस्युक्तं दानयोगतः । दातुर्वे दानकाले तु घेनवः परिकीर्त्तिताः ॥विमस्य न्ययकालेतु द्रन्यं तदिति निश्चय इति॥

विष्णुयमीं तरे, हैमरानतताम्राश्च मृण्पपा लक्षणान्विताः । यात्रोद्वाहमतिष्ठादौ कुम्भाम्युरिभपेचने ॥ पश्चाशाङ्गुलवेषुल्या लक्ष्मेषे पोहपाङ्गुलाः । द्वादशाङ्गुलमूलाः स्युर्भुखमृष्टाङ्गुलं भवेत् ॥ पश्च च आशाश्च पश्चाशाः । पश्चाधिकशतमङ्गुलानि वैपुल्यमिखर्थः।तथा, कलशस्य मुखे ब्रह्मा श्रीवायां च महेत्रवरः । मुले तु संस्थितो विष्णुर्भध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥ शेषास्तु देवताः सर्वा वेष्टपन्ति चतुर्दिशम्। पृथिन्यां यानि तीर्थानि कलशे निवसन्ति हि॥ ग्रहाः शान्तिश्च पृष्टिश्च भीतिश्च मतिरेव च। ऋग्वेदश्च पञ्चोद्दाः

सामवेदस्तथैन च ॥ अथर्ववेदसहिताः सर्वे कळशसंस्थिता इति ॥ षद्त्रिशन्मते, यवगोधुमधान्यानि तिळाः कङ्गुस्तथैत च ॥ इयामाकं चीनकं चैव सप्तधान्यमुदाहृतस्।।मार्कण्डयपुराणे, बीह्यश्च यवाश्चेत गोधूमाः कङ्ककास्तिलाः । प्रियङ्गतः कोविदाराः कोरदृषाः सतीनकाः॥ माषा मुद्रा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः।आडक्य-श्रणकाश्चैव सणः सप्तद्भाः स्मृतः ॥ कोरदृषाः कोद्रवाः । सती-नकाः सक्छापाः। स्कान्दे, यवगोधूमधान्यानि तिछाः कङ्गुकुछ-त्थकाः । माषा मुद्रा मसूराश्च निष्पाचाः वयामसर्पपाः ॥ गवेधका-श्च नीवारा आदक्योऽथ सतीनकाः । चणकाश्चीनकाश्चेव धान्या-न्यष्टादशैव तु ॥ इयामाः इयामाकाः । न्यासः, सुवर्ण परमं दानं सुवर्ण दक्षिणा परा। सर्वेषामेव दानानां सुवर्ण दक्षिणेष्यते॥ परेत्युक्तेः पुरुषाहारौपयिकं तण्डुलादिकमपि दक्षिणेति हेमाद्रिः। यत्तु, अन्येषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्पृता । सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेष्यत इति ॥ तन्मूळं मृग्यम् । सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुला धान्यमेव वा * नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेत-ददक्षिणामिति व्यासेन केवलसुवर्णदाने दक्षिणापर्युदासाच । अयं च पर्युदासः केनलसुनर्णदान एत्र, न तु सुनर्णब्रह्माण्डादिदान इति मदनादयः । देयद्रव्यत्त्रीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत् ॥ अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं वाऽपि शक्तितः ॥ तुलापुरुषदानादी-न्यडिषकृत्य लिङ्गपुराणे, दक्षिणां च शतं सार्द्धं तदर्धं वा प्रदापये-त् । ऋत्त्रजां चैव सर्वेषां दशनिष्काँश्च दापयेत् ॥ भविष्योत्तरे, क्षेयं निष्कशतं पार्थं दानेषु विधिरत्तमः । मध्यमस्तु तद्र्धेन तद-र्षेनाऽधमः स्मृतः ॥ मेष्यां च कालपुरुषे तथान्येषु महत्सु च । एवं वक्षे रथेऽण्डे च धेनोः कृष्णाजिनस्य च॥अशक्तस्यापि क्लुसोऽयं पञ्चसावर्णिको विधिः ॥ हक्षे कल्पपादपे । स्थे हिरण्याऽज्ञवन

रये । हेमहरितरथे च । अण्डे ब्रह्माण्डे । घेनोः सुत्रर्णकामधेनोः । अतोऽप्यल्पेन यो दद्यान्महादानं नराधमः । मतिग्रह्णाति वा त स्प दुःखशोकावहं भवेद ॥ अन्येषु महत्वु तिलगर्भादिषु जपा-भिषेकमभिधाय लिङ्गपुराणे, अष्टवष्टिपलोम्मानं दद्याद्वै दक्षिणां ग्रुरोः । होतूणां चैत्र सर्वेषां विकारपल्युदाहृतम् । अथ्येतूणां तद्द्र्वेन द्वारपानां तद्द्र्वः ॥ अयं च गुटैत्विग्जापकद्वारपालानां अर्द्धार्द्विशाविभागोऽनुक्तविभागविशेषेषु दानान्तरेष्विप दृष्ट-व्यः।गृह्वापरिशिष्टे दक्षिणालाभे,मृलानां फलानां मक्ष्याणां दक्षिणां दद्वातीति ॥

अथ द्रव्यपानम् । याज्ञवल्वयः, जालसूर्यमरीचिस्थं वसरेणू रजः स्मृतः। तेऽष्टो लिक्षास्तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते॥ गौर-स्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यश्च ते त्रयः। छुष्णलः पञ्च ते पाष-स्त सुवर्णस्तु पोढशः। पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वाऽपि प्रकीर्ति-तम्। द्वे छुष्णले रूप्यमापो घरणं पोढशेव ते॥ शतमानं तु दशिभ-धरणोः पलमव तु । निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः इति ॥ घरणपुराणौ पर्यायौ । तथा शतमानपले, पूर्वोक्ताश्चत्वारः सुवर्णा राजतो निष्क इति। कार्षिकस्ताश्चिकः पण इति तास्रस्योन्मानम् । पल-चतुर्थाशेन कर्षेणोन्मितः कार्षिकस्तास्रसम्बन्धी पणो भवति । कार्षापणसंज्ञश्च स्मृत्यन्तरेऽपि, पोढशपणः पुराणः पणो भवेत् काकिणी चतुष्केण अपञ्चाहतेश्चतुभिवराटकैः काकिणी चैकेति ॥ तथाच देशादिभेदेन पणादिच्यवहारो क्षेयः॥

अय धान्यादिमानम् ॥ भविष्यत्पुराणे, पल्द्वयं तु प्रस्तं द्विगुणं कुडवं मतम् । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आद-कः ॥ आदकैसीश्चर्तुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुपैः । कुम्भो द्रोण-द्वयं शूर्षः खारी द्रोणास्तु षोडश ॥ द्रोणद्वयस्येव शूर्ष इति संक्षा। गोपये । पश्चकुष्णलको मायस्तैश्चतुःपष्टिभिः पल्छ । पल्टेद्रीतिसाद्धः पस्यो मागधेषु मकीर्त्तितः ॥ आहक्तेस्त्रेश्चतुर्भिश्च द्रोणः
स्याचतुराहकः । विष्णुधर्मोत्तरे । पल्लं च कुडवः प्रस्य आहको
द्रोण एव च । घान्यमानेषु बोद्धच्याः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ॥
द्रोणैः पोडसभिः खारी विश्वासा कुम्भ उच्यते । कुम्भेसतु दशभिर्वाहो घान्यसंख्या पकीर्तिता ॥ विश्वसेसत्र द्रोणैरिति सम्बद्धाते । तथाच, कुम्भो द्रोणद्वयमिति पक्षाद्विशतिद्रोणिमतः कुम्भ
इति पक्षान्तरम् । पलसहस्रमितः कुम्भ इसपि पक्षान्तरं क्षेयम् ।
वाराहे । पल्द्वयं तु प्रस्ततं मुष्टिरकपलं स्मृतम् । अष्टमुष्टि भवेत्र
किश्चित्त किश्चिद्दष्टो तु पुष्कलम्॥पुष्कलानि च चत्वारि आहकः
परिकीर्तितः । चतुराहको भवेद् द्रोण इस्नेतन्मानलक्षणम् ॥ एतस्यक्षाणां शक्तिदेशकाल्याधेक्षया च्यवस्था ॥

उक्का श्रीनीलकण्डाख्यः परिभाषादिकं पुरा । दानाद्यौपयिकं कुण्डं मण्डपादिवदस्यथ ॥

तत्र भूगानम् । आदिसपुराणे । जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृदयते रजः । प्रथमं तत् प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ व्रसरेणु-स्तु विक्षेयो अष्टौ ये परमाणवः । त्रसरेणवस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणु-स्तु त्रस्ताः ॥ रथरेणवस्तु तेऽष्टौ च वालाग्रं तत् स्मृतं बुषैः । बालाग्राष्ट्रकं लिक्षा तु यूका लिक्षाष्ट्रकं तथा ॥ अष्टौ यूका यवं प्राहुरुक्षुलं तथा ॥ अष्टौ यूका यवं प्राहुरुक्षुलं तु यवाष्ट्रकम् ॥ अन्यज्ञापि । यूकाष्ट्रकं यवं प्राहुर्यवानामुदरेस्तथा । अष्टिभक्षाऽङ्गुलं तिर्येग् यवानामुत्तमं मतम् ॥ सप्तिभर्मध्यमं भोकुं षड्भिः स्यादधमाङ्गुलमिति। द्राद्वाङ्गुलन्मात्रो वै वितस्तिः परिकीत्तिः ॥ अङ्गुष्टस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश ज्य्यते । तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥ किनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वाद्वाङ्गुलम्वर्गन

णि विज्ञयस्त्वेकाविंशतिः ॥ चत्वारि विंशातिश्चेव हस्तः स्यादsङ्गुलानि तु । किष्कुः स्मृतो द्विरात्निस्तु द्विचलारिंशदङ्गुलः ॥ पण्णतसङ्गुलिश्चेत धनुर्दण्डः प्रकार्तितः । धनुर्दण्डयुगं नालि-र्जेया होते यवाङ्गुलैः ॥ धनुषां त्रिशतं नल्वमादुः संख्याविदो जनाः । धनुःसहस्रे द्वे चाऽपि गन्यृतिरपदिश्यते॥ अष्टौ धनुःसह-स्नाणि योजनं परिकीर्त्तितम् ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, यदुत्वन्नमथाक्नाति मरः संवत्सरं द्विजः । एकगोचर्ममात्रं तु भुवः पोक्तं विचक्षणैः ॥ बृहस्पतिः, दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशदण्डानि वर्तनम् । दश तान्येव वर्त्तानि ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥ इति भूमानम् । मार्जनखनना-धन्यतमनकारेण यथोचितं भूमितं भूमिः संज्ञोध्या । तत्र मण्डप-स्थलम् । सिद्धान्तशेखरे, स्थलादकीङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमी-रितमिति ॥ मण्डपं प्रक्रस कापिलपञ्चरात्रे, उच्छायो इस्तमानं स्याव सुसमे च सुशोभनमिति ॥ ततो दण्डत्रयं निर्मितदीर्घात्र-कोणाकारयन्त्रे दण्डाग्राभ्यां भुत्रिन्यस्ते यन्त्रमूलात्तिर्यदण्डोपरि-लम्बितमधोभारवद् भूमिम अपाप्तं सूत्रं यथा तिर्पेग्दण्डमध्याचिह्ने पतेत्तथा निम्ना भुः पूर्वोक्ता वा माननीयेखादिशिल्पशास्त्ररीत्यातां समीकृत्य च मण्डपाद्युपयुक्तां प्राचीं साधयेद । एवं समायां भुवि द्वादशाङ्गुलन्यासार्द्धमेकं तन्मध्ये चापरं नवाङ्गुलं न्यासार्द्धामिति रतद्यं कृत्वा तन्मध्ये द्वादशाङ्गुलं पृथङ्मूलंसूक्ष्माग्रमृजुं शङ्कुं निधाय नवाङ्गुलहत्तरेखायां चतस्रो दिशः मकल्प्य तास्र चतस्र ऋज्ज्यः पञ्चद्त्राङ्गुलाः शलाकाः शङ्कग्रस्पृष्टाऽग्राः स्थाप्याः शङ्कुसमतार्थम् । तादशशङ्कग्रन्छाया च महद्वत्तरंखां पूर्शिक्षे यत्र स्ट्रशति सा प्रत्यक् । यत्रापराह्ने सा प्राक् । सक्ष्मपाचीज्ञानार्थे तु परदिनेऽपि तस्मिन्नेव हत्ते शङ्कुच्छायानिर्गममवेशयोश्चिह्नं कुःवा पूर्वापरादिनच्छायाप्रदेशनिर्गमनचिह्नयोरन्तरालिमिष्टैश्विचतुराद्यैर्भाः

गैर्विभड्य पूर्विदन्छायाप्रवेशिनर्गमान्तराख्यदीः पादच्छायापदी-धन्त्रादिना ज्ञात्वा ताभिर्घिटकाभिः कल्पितान भागान गुणयेत । षष्टिभिश्च हरेत । ततो छन्धांशेन पाच्यामेन पूर्वदिनकृतापमम-चिद्वादुत्तरायण उत्तरिमन दक्षिणायने दक्षिणिस्मनञ्जूभेत । त-दुपरि पूर्वच्छायाप्रवेशिचिद्वोपिर च छते सूक्ष्मा प्राची भवति । दिग्ज्ञानोपायान्तरं च छल्वे । कृत्तिका श्रवणः पुष्पश्चित्रा-स्वात्योर्थदन्तरम । प्तत्याच्या दिशो रूपं सुगमात्रोदिते सतीति॥

अत्रायं गुरूपदेशः । ऋज्वीं सूक्ष्मरन्त्रां निलकों काष्ट्रादौ बद्ध्वा तद्रन्त्रेण युगमात्रसुपरिगतं कृत्तिकादिनक्षत्रं दृष्ट्वा निलकों ताभ्यां माक्ष्मसम्देशयोः सूक्ष्मं पाषाणद्रयमत्रलम्बद्धयं वा भूमौ मिक्षप्य तिच्चह्नयोः माचीसूत्रं देयमिति । एवमेव ध्रुवं दृष्ट्वोदीची साध्या । चित्रास्तात्यन्तरालज्ञानार्थं तु निलकाद्वयेनैकेन च दण्डान्तरेण स्व्यकारयन्त्रं कृत्वा दण्डं च मध्येऽङ्क्रयेत् । निलका-द्वयान्तो तु तष्टालक्षणादिना परस्परं योजनीयौ।यथैकनैव प्रयत्नेत युगपदत्र द्वयमि दृश्यते । एवं दृष्ट्वा मिलितान्नलिकान्ताइण्ड-मध्याङ्काच पाषाणावलम्बौ प्रक्षेस्रन्याविति ॥

अय मण्डपादिलक्षणम् । तत्र पञ्चरात्रे, कनीयान् दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोग्नितः । तथा षोडशाभिईस्तैभण्डपः स्यान्मध्यमो द्वादशोग्नितः । तथा षोडशाभिईस्तैभण्डपः स्यान्मध्यमो द्वादशोग्नितः । तथा षोडशाभिईस्तैभण्डपः स्यान्मध्यमः ॥ मतिष्ठामारसङ्ग्रहे । मण्डपः कलाहस्तो वा सर्वलक्षणसंयुतः । दशद्वादशहस्तो वा द्विद्विट्ट्या ततः क्रमातः ॥ लिङ्गपुराणे तु पुरुषदानमकरणे।विशादस्त्रममाणेन मण्डपं कूटभेव वा ।
अथाष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनिरितः, विशातिहस्तोऽप्युक्तः ।
मध्यस्तम्भवलिकोपरिगतैश्चतुर्भिरष्ठभिर्वा मृदङ्गाऽऽकारकलश्चाते।
काष्टिभैध्ये शिखराकारयुतः कूटः । कूटोऽस्त्री शिक्तरं श्वङ्गामियुऽभिधानानुमाराद । मध्यसम्भोपरि समतयाच्छादितो मण्डप इति

हेमाद्रिः।सम्भति कूट एवादरो लोकानाम्। तत्रैव च मण्डपभ्रमः। दशहस्तमण्डपस्तु एकमेखलकुण्डपक्षे एकाग्निविधानपक्षे चोप-युक्तो भवतीति मदनरत्ने पञ्चरात्रे। कुर्याद् वैष्णत्रयागेषु चतुर्द्वाराँ-श्च मण्डपानः । सारदारुमयानः स्तम्भानः दढानः कुर्योदज्नः समानः ॥ मण्डपाद्धों च्छितान् वेदसंख्याँ बच्चासमन्वितान् । विलकामुर्ध्वत-स्तेषां स्तम्भद्वादशकं पुनः ॥ बाह्यपीठममाणेन तत्र सुत्रविधान-सः । कल्पयेद् द्विकरं द्वारं चतुरङ्गळदृद्धितः ॥ मध्यमोत्तमयोर्वेदी-मण्डपस्य त्रिभागतः । चतुर्थीशोच्छितस्तस्यास्त्रिसप्तपञ्चतोऽपि वा॥ नवैकादशहीनं वा इष्टिकाभिः प्रकल्पयेदिति॥ चूडा शिखा। वालिकामिति । तेषां चतुःस्तम्भानां शिलाभिः भोतन्छिद्रा-ण्युभयतिश्छद्रयोपेतानि विलकाख्यानि तिर्यकाष्ट्रानि विथेयानी-सर्थः । बाह्य इत्यादि । आदौ मध्यस्तम्भचतुष्ट्यं विन्यस्य तद्वाह्यपरिधौ मण्डपक्षेत्रविस्तारपर्यायपीठपरिमितस्त्रत्रतृतीयांशेन तुल्याऽन्तरद्वादशचिह्नकरणपूर्वकं पश्चहस्तप्रमाणा द्वादशस्तम्भा निखेया इत्यर्थः । तदेवं पोडशस्तम्भता सम्पद्यते । तेषु चत्वारो मण्डपा यामार्द्धामतोच्छाया अष्टहस्ता नवहस्ता वा भ-वन्ति । अधममध्यमोत्तमस्रपेष्त्रष्टहस्ता एते चत्त्रारः।शारदातिलके **उक्त**त्वादिति । तत्रापि मध्यमस्तम्भेषु चूडास्त्रेव तिर्यकाष्टानिवेशनम्। बाबेषु तु चूडामु स्तम्भकर्णेषु वेसनियमः । सर्वे च, पञ्चमांऽशं न्यसेद्भुगौ सर्वसाधारणो विधिरित्युक्तत्वात । सूत्रपञ्चमांशेन नि-स्रोपाः । सर्वेऽपि दशाङ्खळसूत्रवेष्टनयोग्यस्थील्या विधेयाः ।

कल्पयेदित्यादि । किनष्ठमण्डपे द्वारचतुष्टयं द्विहस्तविस्तारम् । तथा मध्यमे चतुरङ्कलाधिकद्विहस्तविस्तारम् । एवसुत्तमेऽष्टाङ्कला-ऽधिकद्विहस्तविस्तारम् । मध्यमोत्तमयोर्वेदीत्यादि । मण्डपमध्य-त्रिभागमाना वेदिः । स्वायामदृतीयचतुर्थपञ्चमसप्तमनवमैकादका- Sम्यतमेनोचा। तुलापुरुषे तु मास्ये, सप्तहस्ता भनेदेदी मध्ये पञ्च-कराऽथनेति ॥

सिद्धान्तरोखरे — चतुरस्रा चतुरक्षोणा वेदी सर्वफलपदा ।
तडागादिमतिष्ठायां पश्चिनीपद्मसिन्नमा ॥ राज्ञां स्पाद सर्वतोभद्रा वेदी राज्याभिषेचने । वित्राहे श्रीधरी वेदी विद्याद्धरतसमन्वितेति ॥ द्वारदेहल्या विर्हहर्तमात्रे द्वारशाखा निखेया इति
निवन्धान्तरे । व्रतखण्डे तु, हस्तद्वयं विहस्त्यक्ता तोरणानि निवेक्षायेदित्युक्तम् । मारस्ये, द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्नार्यिष
क्षीरवनस्पतीनामिति #॥ अयमर्थः । पूर्वद्वारे अञ्बत्यशाखे, दक्षिणे
खद्म्बरशाखे, पश्चिमे प्रक्षशाखे, उत्तरतो वटशाखे ॥

बासाश्च अधममध्यमोत्तममण्डपेषु क्रमात पञ्चपद्सप्तहस्तोचाः ।
तासासुपरिकृतच्डासु तिर्वक् फलकसुभयतः सिच्छदं च्डान्यस्तिच्छदं
निदध्यात तिद्वहरतमधममण्डपे।अङ्गलष्टकाधिकं द्विहस्तं मध्योसाद्धं
हस्तद्वयपुत्तमे । तिर्वक् फलकोपि मध्ये मण्डपेषु क्रमाचतुरङ्कलाः
पार्द्वचतुरङ्कलाः पञ्चाङ्कलाश्च कीला निवेश्याः । तिर्यक् फलकं
कीलाश्च तत्तरकाष्ट्रजा एव । यद् वास्तुशास्त्र । मस्तके द्वादशांक्षेत शङ्कचक्रमदाम्बुलम् । प्रागादिकमपोगेन न्यसेत्तेषां स्वदाहजन्मा । द्वाह्यकार्यान्यस्वकर्ताः

शैवपागे तु ते कीलास्त्रिश्लाः स्युः। त्रिशुलाकारस्वं चैवं—
पध्यकीलोनवाङ्गलो हत्तः सपादद्यञ्जलिवस्तारः । तसुभयतोऽन्यौ
किश्चिद्रको । दैर्ध्यमध्ये शुलस्य मुलाङ्गलद्वयं विले प्राविशति इसऽधममण्डपे। मध्यमे स्वेकादशाङ्गुल उच्छायः । पादोनध्यङ्गुलविस्तारः । ध्यङ्गुलो विल्पवेशः। उत्तमे त्रयोदशाङ्गुलपुष्ट्यायः
स्पादभ्यङ्गुलो विस्तारश्चतुरङ्गुलो विल्पवेशः ॥

इदं च पिङ्गलमते ।शुलेन चिहिताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके । शुलैनवाङ्गलैदेंघ्यं तुरीयांश्चेन विस्तृतिः॥ऋजुर्वे मध्यशृङ्गः स्यात् किश्चिद्वकं च पक्षयोः । मथमं तद समाख्यातं ह्यङ्गळं रोपयेद तथेत्यादिनोक्तम्॥एषामलाभे एकदक्षजानि तोरणानि । तस्याप्य-भावे शामीद्रमजानि । एतिभवेशनपन्त्राश्चाप्रिमीळे, इषे त्वा. अग्न आयाहि, शन्नो देवीरिसनुसन्धेयाः । मध्यस्तम्भचतुष्ट्योपरि च सुरजाऽऽकृतिकाष्ठे दिग्विदिग्गतरन्ध्राष्ट्रकपोताग्रकाष्ट्राऽष्ट्रके नोन्नतता कार्या। कटैः सद्धिस्तु संछाद्याविजयाद्यास्तु मण्डपाः# इत्यक्तत्वातः । द्वारवर्जं सर्वतोगण्डप आच्छाद्यः । जयविजयभद्र-विक्वक्षपस्वक्षपञ्चवचनद्यचकस्तुत्रसन्नाः। एते ऽष्ट्रहस्तादयो द्विहस्त-द्यदितो ज्ञातव्याः ॥ यदा मण्डपद्वयं क्रियते, तदा तत्र मथम-मण्डपपरिमितमन्तर्मुत्स्डच द्वितीयो मण्डपः कर्त्तव्य इति वास्त-भास्त्र । एवं यदा धामाग्रे मण्डपः क्रियते तदा तद्धामपरिमाण-भन्तरमृत्सुज्य परतो मण्डपो विषेय इति । मात्स्ये, मण्डपे पताका उक्ताः । छोकेशवर्णा परितः पताका मध्ये ध्वजः कि द्धिणिका-युतः स्याद् * इति । सङ्कदेऽपि, सप्तहस्ताः पताकाः स्युः सप्तमां-बोन विस्तृताः । छोकपाळानुवर्णेन नवमी तुहिनप्रभा ॥ पीत-रक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्ता ध्वजाः स्मृताः । द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैश्च वंदाजैः संयुतास्तथेति॥ छोकपाछवर्णाः। इन्द्रंः पीतो यमः इयामो वरुणः स्फटिकपभः । कुवेरस्तु सुवर्णामो श्राप्तिश्चापि सुवर्णभः॥ तथैव निर्ऋतिः क्यामो वायुर्धमः प्रशस्यते। ईशानस्तु भनेद् रक्त एवं ध्यायेक्कमादिमानिति ॥ गारुडे तु पताकानां प्रकारान्तरमुक्तं, पञ्चहस्ता ध्वजाः कार्या वैपुल्येन द्विहस्तकाः। सप्तहस्ताः पताकाः स्युविवात्यङ्गुलविस्तृताः ॥ दशहस्ताः पताकानां दण्डाः पञ्चांश-वेशिताः। सिन्द्राः कर्त्रुरा घूम्रा घृसरा मेघसिन्नभाः॥ हरिताः पाण्डवर्णाश्च श्रद्धाः पूर्वादितः क्रमातः । एवंवर्णाः श्रभाः कार्याः पताकाः पाकशासनेति ॥ अत्र समचतुरस्त्रमण्डपसाधनम्। मण्डपादिच्यासम्माणां रज्जुं द्विगुणीकृत्य तामेवोभयतः पाशाभ्यां सह अष्ट्या विभाज्य पञ्चमांशान्ते कर्पणाय पष्टांशान्ते शङ्कर्थ च चिह्नद्वयं कुत्वा मण्डपादेः प्राचीस्त्रपान्तद्वये शङ्कद्वयं निखाय रज्जनतपाद्यो तयोः शङ्कोः राज्यकर्पणचिहं दक्षिणत आकृष्य शङ्काचिह्ने शङ्कं निखाय ततः कर्पणचिह्नमुत्तरत आकृष्य शङ्क-चिहे शङ्कं निखाय व्यत्यासं कृत्वा शङ्कोः पाशान्तावासज्ज्य पूर्ववदक्षिणोत्तरयोः क्रमेण कर्पणचिद्वमाकुष्य शङ्कद्वयं निद्दन्यात । तत ईशानामेयादिशङ्कपु पादक्षिण्येन रज्जुवेष्टनान्मण्डपादि चतुरस्यं क्षेत्रं सिद्धं भवति ॥ मध्यवेदीसाधनम् । मण्डपसूत्रं पागायतं दक्षिणोत्तरायते च त्रेधा विभाज्य तेन नवभागो मण्डपः सम्पद्यते। मध्यमे नवमें Sशे तन्माना वेदिका यजमानहस्तोच्छाया च विषे-या । मात्स्ये, द्वारेषु कुम्भद्भयमत्र कार्यं स्वरगन्धधूपाम्बरस्त्रयुक्त-मिति * मदनरत्रे, गन्धपुष्पाक्षतोपेतान् कुम्भाँस्तेषु नित्रेशयेत् । भुनं घरं वाक्पतिं च विश्लेशं तेषु पूज्येत ॥ मण्डपस्य तु कोणेषु कलशेषु क्रमादमी । अमृतो दुर्नयश्चेत्र सिद्धार्थो मङ्गलस्तथा।पूज्या द्वारस्य कुम्भेषु शकाद्यास्तु मनुत्तमैः॥इति मण्डपनिरूपणम् ॥

अथ कुण्डानि । तत्र भविष्यपुराणे, वेदी पादान्तरं सक्त्वा कुण्डानि नव पश्च वा । वेदास्त्रीण्येव तानि स्पूर्वर्षुलान्यथवा कन् चित्र।।आझायरहस्ये, कुण्डानि चतुरस्त्राणि टत्तनानाकृतीनि वा। नव पश्चाय वैकं वाकर्त्तव्यं लक्षणान्वितम् ॥ नवकुण्डविधाने तु दिख्नु कुण्डाष्टके स्थिते । नवमं कारयेत कुण्डं पूर्वेशानादिगन्तरे ॥ विधाने पश्चकुण्डानामीशाने पश्चमं भवेत । अत्र चतुःकुण्डीपके स्वातं नास्तीत्युक्तं हेमाद्रौ । नारदीये, यत्रोपदित्थते कुण्डं चतुष्कं तत्र कर्मणि । वेदास्तमर्द्धचन्द्रं च टक्तं पद्मनिभं तथा । पीठ-वद् वर्द्धयेत् कुण्डं सुममाणेष्वगर्त्तकम् । कुर्पात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः । कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसंपतम् । विद्याङ्क्कलं पकर्त्तव्यमन्तरं कुण्डपीठयोः ॥ स्मृखन्तरे, वेदिभित्तिं परिसज्य वयोद्शमिरङ्कलैः । हस्तमात्राणि कुण्डानि चतुरस्माणि सर्वत इति ॥ सर्वतोऽष्टदिक्षु ।

काम्ये तु, पेन्द्रयां स्तम्भे चतुष्कोणमयेभांगे भगाकृतिम् । चन्द्रार्द्धे मारणे याम्ये त्रिकोणं द्वेषनैकृते ॥वारुण्यां शान्तिकं वृत्तं वहरूयु-चाटनेऽनिले।उदीच्यां पौष्टिके पद्यं रौद्यामष्टासिमुक्तिदम्॥कारदानिलेलके, विमाणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलिमिष्यते । वैश्यानामर्द्धे-चन्द्राभं ग्रुद्धाणां त्र्यसमीरितम्॥ चतुरस्रं च सर्वेषां केचिदिच्लिति तान्त्रिकाः। चतुरस्रसाथनं तु मण्डपसाधनावसर उक्तम्।तत्रैकस्मित्र इस्ते चतुर्विश्वत्यञ्जलानि व्यासः । द्वयोक्त्यसिद्धुल्लानि, सस्य यवाः।चतस्रो युकाः,द्वे लिल्ले । त्रिच्वेकचत्वारिशदङ्कुलानि, सस्य यवाः, चतस्रो युकाः, चतस्रो लिक्षाः।चतुर्ष्वष्टाच्वारिशदङ्कुलानि, पञ्च यवाः,द्वे युके, पञ्च लिक्षाः। सप्तम्य विवश्वज्ञलानि, यवत्रयं, सस्य युकाः, सस्त लिक्षाः। समस्य त्रिष्ट्यङ्कुलानि, यवत्रयं, सस् युकाः, सस् लिक्षाः । अष्टमुक्तिपञ्चल्लानि, यत्रत्रयं, सिह्म युकाः, सम्र लिक्षाः। नवस्र द्वासप्तरक्कुलानि, दश्च पञ्चसम्रसङ्खलानि, वह् यवाः, युकाश्चतस्रः, लिक्षाः समस्य पञ्चसम्भरसङ्कलानि, वह् यवाः, युकाश्चतस्रः, लिक्षाः समस्य पञ्चसम्भरसङ्कलानि, वह यवाः, युकाश्चतस्रः, लिक्षाः अतसः। एवं पोडशहरते वण्णवत्यङ्कुलानि॥

अथ योनिकुण्डम् । इष्टचतुरस्रं व्यासं चतुर्विशतिधा विभन्धः सपादैः पञ्चिभभागेर्भध्यस्त्रं प्राच्यां विवध्यं चतुरस्रमध्ये प्राग्-इदक्सूत्रपातनारुपचतुरस्रयोःकोणसूत्रद्रयपातज्ञातमध्यादेतस्कोण-सुत्रार्द्धमानेन इष्टचतुरस्रोदक्सुत्रदक्षिणान्तातः पाक्सुत्रपश्चिमान्तः यावद् भागयेद् हत्तार्द्धम् । एत्रमेवीत्तराल्पचतुस्रेऽपि इष्टचतुरस्रोद-गन्तातः पानस्त्रपश्चिमान्तं परिश्वाम्य वत्तार्द्धस्यदक्षिणोदकोटितो बर्दितपाक्स्वान्तं यावतः सुत्रद्वयं पातयेदिति योनिकुण्डम् । अत्रोत्पत्तिः । पाग्दिगतत्र्यस्रलम्बः सप्तद्शाङ्कलानि १७। एको यवः १। एका युका १ लिक्षा।पञ्चमूस्तु इष्टचतुरस्रमध्योदक्सूत्रं चतुर्विशन्यङ्करमुपरितनाल्पन्यस्तेऽपिभृःसैन । आलम्बस्तु द्वादशां-Sङ्गुलानि । वत्तार्द्वव्यासार्द्वयोस्त्वङ्गलानि अष्टौ ८, यवा-अत्वारः ४ इति । योनिमध्यस्त्रत्रदृश्च्छानि । एकहस्ते पञ्चा-Sङ्कुलानि । एको यतः । एका युका । पञ्च लिक्षाः । द्विहस्ते सप्ताङ्कलानि । द्वौ यवौ । द्वे युके । एका लिक्षा । विद्दत्ते-Sष्टाङ्गुलानिट, सप्त यवाः । तिस्रो युकाः । चतुईस्ते दशाङ्गुलाने। चत्वारो यवाः।तिस्रो युकाः। द्वे छिन्ने। पश्चहस्ते एकादशाङ्गुळा-नि, यवचतुष्ट्यम्, एका यूका। पड्हस्ते द्वादशाङ्कलानि। चत्वारी यवाः । सप्त युकाः । तिस्रो छिञ्जाः । सप्तइस्ते त्रयोदशाङ्गलानि । पञ्च यवाः । अष्टहस्ते चतुईशाङ्गलानि । यवचतुष्ट्यम् । युकाश्च-तस्रः । द्वे छिन्ने । नवहस्ते पश्चदशाङ्करानि । यवत्रयम् । युका-चतुष्टयम्। सप्त लिक्षाः । दशहस्ते पोडशाङ्क्कलानिन्द्रौ यवौ। तिस्रो युकास्तिस्रो लिक्षाः । एवं षोडशहस्ते विवात्यङ्गलानि, यवचत्रष्ट्रयं, षद् युकाः । चतस्रो लिक्षाः ॥

रामस्तु— इष्टचतुरस्रक्षेत्रमध्यरेखाया द्विनवत्यधिकं शतम् अंशान् कृत्वाष्ट्रित्रग्नदेशान् मध्यस्त्रपाच्यामेकोनार्वशदंत्रैश्चोभयतः श्लोणि संबद्ध्यं सद्यद्विश्लोणिचतुर्थाशककर्कटेन स्त्रेण वा पश्चिम-भागे दत्तार्द्धद्वयं पाङ्मुखं श्लोणिस्त्रत्रत्यनं विद्यित्वय दत्तार्द्धय-बाह्यपान्तयोविद्धितपाक्स्त्रे चिहं यावत स्त्रद्वयान्तं योन्याकारं कार्यमिसाह । तत्फलसंवादेऽपि विरूपत्वादयुक्तम् ॥ इदं चोदगम्रं कार्यम् । तच मध्यरेखापश्चमात्रद्धदाबुदीच्याः इतायां भवति । इदमुदाहृतं मदनरत्ने, योन्याख्यमुच्यते कुण्ड-मान्नय्यामुत्तरामुखमिति ॥

अथार्द्धचन्द्राभम् । कामिके, चतुरस्रे ग्रहैंभक्ते त्यक्काऽऽद्यन्तौ तदंशको । मध्ये सप्तांशमानेन कुण्डं खण्डेन्दुवद् भ्रमाद् ॥ अय-मर्थः । इष्ट्रमाणचतुरस्रमध्यरेखां नवधा विभन्न्याद्यन्तिमौ भागौ परिमृज्य तत्र चिह्नद्रयं कृत्वोपरिचिह्ने तिर्थग्दक्षिणोत्तरं सूत्रं द-त्वोपरिचिह्नापश्चिहं यावद् वत्तेन सुत्रेण कर्कटेन वा भ्रमाद् वत्तार्द्ध ण्यासूत्राजातकोटिकमर्द्धचन्द्रं कुण्डं कुर्यादिति । अर्द्धेन्दौ व्यासा-द्धिलानि । एकस्मिनेकोनर्विश्वसङ्खलानि । एको यवः । एका पूका। पञ्च लिक्षाः । द्वयोः सप्तर्विकासङ्ग्रलानि । पञ्च युकाः । द्वे लिसे । त्रिषु त्रयस्त्रिशदङ्खलानि । एको यवः । द्वे यूके । षट् छिक्षाः । चतुर्षु अष्टत्रिशदङ्गुलानि । द्वौ यवौ । तिस्रो यूकाः । द्वे छित्रे । पश्चमु द्विचत्वारिंशदङ्गुलानि।सप्त यनाः । युकाश्चतसः। तिस्रो छिक्षाः । षद्मु षद्चत्वारिशदङ्ख्ळानि । सप्त यवाः । द्वे यूके। सप्तमु पञ्चाकादङ्गुलानि । पञ्च यवाः। द्वे यूके । चतस्त्री लिक्षाः । अष्टसु पञ्चपञ्चारादङ्गलानि एको यवः । द्वे यूके तिस्रो स्रिक्षाः । नवसु सप्तपञ्चावादङ्कुलानि । चत्वारो यवाः । एवं षोड-शसु पद्सप्तत्यङ्गुलानि । पञ्च यवाः ॥ अत्र रामेण- चतुरशी-स्यधिकत्रिकासा विभक्तस्यष्टक्षेत्रच्यासस्यकोद्योऽधिकस्त्याज्यः, भेनफलसंवादार्थमित्युक्तम् । स चैकांश इष्टक्षेत्रव्यासश्चतुर्विशांशस्य षोडशांशो भवति । एकहस्तचतुरस्त्रे तु सार्द्धयविमतः । एवं द्वि-इस्तादिष्वप्यूह्मम् । इदं चोदगग्रं कार्यम् । तदुक्तं मदनरत्ने । उ-द्दगग्रत्वं चोदङ्गध्ये रेखाया नवधा विभागेन सम्पादनीयमिति॥ यत्तु शारदातिल्लके, चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशया विभनेद् बुधः। एकमेकं सजेदंशमध ऊर्ध्वं च तन्त्रवित् ॥ ज्यासूत्रं पातथेदमे तन्मानाद् भ्रमयेत्ततः । अर्द्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेदि-ति ॥ तत्र भृयान् क्षेत्रफळविसंवादः । कामिकोक्ते त्वर्यः ॥

अथ त्रिकोणम् । इष्टचतुरस्रमध्यस्त्रस्य चतुर्विशतिरंशाः । तत्र सत्रं पाच्यामप्रमांशोनैकांशसहितात सार्द्धसप्तांशात श्रोणि च पार्श्वयोः । प्रसेकं सपादान षडंशान संवर्धितश्रोण्यन्तयोर्व-द्धितमाक्सुत्रान्तं यावत् सुत्रद्वये दत्तं समभुजं व्यसं भवति । यथोक्तं शारदातिलके । चतुर्द्धामोदिते क्षेत्रे न्यसेद्रभयपार्श्वयोः । एकैकमंश्रतन्मानाद्यतो लाज्छयेत्ततः ॥ सुब्रह्मं बुधः कुर्याद व्यस्नं कुण्डमुदाहृतिमिति ॥ इदं तु किञ्चित फलन्यभिचारि । अतो-Sस्माभिर्धिका दृद्धिरुक्ता । राममते त मध्यसूत्रं दश्भिरंशैः सं-वर्द्ध्य तत्रैकोंऽबाः स्वाष्ट्रमांबोनः श्रोणिसूत्रस्योभयतः पञ्चपञ्चा-बाद्यद्विरिति । तत्तु विषयभुजत्वादुपेक्ष्यम् । इदं च निर्ऋतौ मागग्रं पश्चिमयोनि व्यस्तभुजाः । एकस्मिन् षट्टत्रिशदङ्खळानि चत्वारो यवाः । द्वयोरेकपञ्चाबदङ्गलानि पञ्च यवाः। तिषु त्रिपष्ट्यङ्गला-नि । एको यवः । चतुर्षु त्रिसप्तसङ्ग्रहानि पञ्च यवाः । पर्स् एकोननवसङ्गलानि । त्रयो यवाः । सप्तसु चतुर्नवसङ्गलानि च-स्वारो यवाः । अष्टम् न्यूत्तरक्षताङ्गलानि । एको यवः । नवस् नवाधिकशताङ्गलानि यवत्रयम् । दशसु पञ्चदशाधिकशताङ्गला-नि । यवद्रयम् ॥

अथ दत्तम् । इष्ट्रचतुरस्त्रव्यासपोडशांबााऽधिकव्यासाद्धीम-तेन कर्कटेन सुत्रेण वा कृतं मण्डलं दत्तकुण्डमागग्रं पश्चिमयोनि प्रतीच्यां दत्तव्यासार्द्धाङ्गुलानि । एकस्मिन् त्रयोदशाङ्गुलानि। यवचतुष्ट्यम् । द्वयोरेकोनविशसङ्गुलानि । एको यवः । ब्रिष्ठ त्रयोविशसङ्गुलानि । यवचतुष्ट्यम् । चतुर्षु सप्तविशसङ्गुलानि। एको यवः । पञ्चमु त्रिंशदङ्गुळानि । द्वौ यवौ । पट्रैसु त्रयास्त्रिशः दङ्खुळानि । एको यवः । सप्तसु पञ्चत्रिशदङ्खुळानि । सप्त यवाः । अष्टस्वष्टत्रिशदङ्खुळानि । द्वौ । यवौ । नवसु चस्वारिशदङ्खुळानि । पञ्च यवाः । दशसु द्विचस्वारिशदङ्खुळानि । सप्त यवाः ॥

अथ पडस्रम्। इष्टचतुरस्रमध्यस्त्रस्य चतुर्विशतिरंशान् कृत्वां तत्सुत्रं त्रिभिरंशैः पाच्यां वर्द्धयेतः । तत्रैकोंऽशः स्वाष्टमांशोनः । तावच मतीच्यां संबद्ध तद्देंन दृत्तं कृत्वा तावतेव कर्कटेन उर्दीचीमारभ्य पट्सु स्थानेषु अङ्कपेदिति । अत्रैकहस्ते तावदेवं फलम् । मध्ये दीर्घवतुरस्रम् । तद्दीर्घभुजः । पञ्चविज्ञसङ्गुलानि । षद् यवाश्च । एवमन्योऽपि । अल्पभुजस्तु, चतुर्दशाङ्कुलानि । सप्त यवाः । सप्त युकाश्च । तत्र फलं, पञ्चाशीसिधकानि शतत्रय-मङ्गुलानि चतुरस्रदीर्घभुजसंलग्ने व्यस्ने तु भुजं एव मृः । लम्ब-स्तु हत्तचतुर्थीनाः सप्ताऽङ्कुलानि । त्रयो यनाः । पञ्च यूकाश्चे-ति । तत्फलं, पञ्चनवत्यङ्गुलः नि । चत्वारो यवाश्च । अपरत्र्यक्षे डप्येतम् । फलत्रययोगे पञ्चशतषट्नप्तातिश्च ॥ यत्तु विष्णुमृत्रप्रभृ-तिभिनेदुभिः फलसंत्राद्यपि व्यसद्भययोगेन बहिनिर्गतास्निकं षडस्न-मुक्तम् । तदयुक्तम् । अन्तरवाह्यास्रयोगेन द्वादशास्रताद्वादश-भुजतापत्तेः । बाहिस्तना एव स्नानान्तर्गता इति चेत । तथापि वक्रभुनतार्यां मानाभावः । चतुरस्रत्र्यस्रादावपि फलसंवादेन कदाचित्तथापतेश्च। एतेन रामाद्युक्तमष्टास्रमपि प्रत्युक्तम् । पडस्नि-भुजाङ्कुलानि । एकहस्तादिक्रमेण दश्चहस्तपर्यन्तम् । चतुर्दशा-ऽङ्गलानि । सप्त यवाः । एकविशसङ्गलानि । पञ्चविशस्यङ्गलानि । षड् यवाः। एकोनत्रिकादङ्गुलानि । पर् यवाः। त्रयिक्षिकादङ्गुला-नि । द्वी यवी । षट्त्रिंशदऽङ्कुलानि । यवचतुष्कम् । एकोन-म्त्वारिंग्नदङ्गलानि । यवत्रयम् । द्विचत्वारिंशदङ्गलानि । एको यवः । चतुश्रस्वारिशदङ्कुलानि पञ्च यवाः । सप्तचस्वारिश्वदङ्कुलान नि । एको यवः ॥

अथ पद्मम् । इष्ट्वतुरस्रमध्यस्त्रस्य चतुर्विशतिरंशः । तत्र द्वादशिभरंशेरेकं टत्तं कृत्वा सार्खान् त्रीनंशान् सम्बद्धीपरं कुत्वा तत्र दिश्च तदन्तरालेषु च सूत्राण्यास्फालवेत् । ततोऽन्तर्हत्त-रेखापाक्सुत्रमत्स्यात् तदेकान्तरितमत्स्याच सुत्रद्वयं त्रिकोणा-55कारेणास्फालयेव । तद्नतरालमत्स्यसमसुत्रवहिर्दत्तरेखागतमत्स्यं यावत् । तचैकसूत्रं समांश्वतया मध्येऽङ्कृथित्वा सुत्रार्द्धिमतकर्कट-कोटिमेकां मध्याङ्के परां च सूत्रारम्भकमत्स्ये संस्थाप्य त्रिकोणमध्ये भ्रमणादेकमत्स्यं, बहिर्टचरेखागतत्रिकोणान्ताचस्मादेव च सुत्रा-Sङ्काञ्चिकोणाद्धहिरपरं मस्स्यं कुत्वान्तर्मत्स्यात्त्रिकोणाद्धहिरपरं मत्स्यं कृत्वान्तर्मत्स्यात्रिकोणाद्धहिरुपीर सुवार्द्धज्याकमेकं बहिर्मत्स्या-ब्रिकोणान्तः अधः सुत्रार्द्धज्याकमपरामिति संख्यकोटिकमुपर्यधो-भावेन धनुर्द्रयं कार्यम्। एवमप्रसूत्रेऽपि कृत्वा सूत्रद्रयमार्जने वका-Sग्रं पद्मदलवत् पत्नं भवति । एवमन्यानि पत्राणि अवः क्रुत्वा इष्टचतुरसक्षेत्रकल्पितचतुर्विशत्यंशमध्ये त्रिभिरंशैर्व्यासार्द्धेन मध्ये तद्धहिश्च पडंशन्यासार्द्धेनेति द्वे हत्ते कार्ये । तत्रान्तहत्ते विस्तारे तद्भतेनोचतायां तद्व्यासेन समा मृदा कर्णिका कार्या । वहिर्हके तु केसरा इति । एतत् पद्मकुण्डम् । तथैतरफलम् । तत्रैकस्मिन् पत्रे उपरितने महति व्येकहस्ते चतुर्थमहद्गुत्तव्यासार्द्ध पश्चद्शाङ्ग्छा-नि १५। वश्च यवाः ५। तिस्रो युकाः ३। तिस्रो छिक्षाः ३। द्वे वा-लाग्रे २। द्विहस्ते विंशसङ्गलानि २०। त्रयो यवाः ३। तिस्रो यू-काः ३। एका लिक्षा १। षड् वालाग्राणि ६। त्रिहस्ते समाविशास-**ऽङ्गलानि २७। एको यत्रः १। एका यूका १। द्वे वालाग्रे २। चतु-**ईस्त एकत्रिंशदङ्गलानि ३१। द्वी यवी २। षद् यूकाः ६। षद् वाका- ऽप्राणि ६। पञ्चहस्ते पञ्चित्रं शक्का ३०। तिस्रो युकाः ३। पट् लिक्षाः ६। पञ्च वालाग्राणि ६। पट्टस्ते अप्टार्नेशदङ्खलानि ३०। पवद्वयम् २। पञ्च वालाग्रे २। पश्च स्त एकचत्वारिशदङ्खलानि ३०। पवद्वयम् २। सम् युकाः ७। अष्टहस्ते चतुश्चत्वारिशदङ्खलानि ४४। द्वो ययो २। युकात्रयम् ३। पट् लिक्षाः ६। नवहस्ते सम् चत्वारिशदङ्खलानि ४०। द्वे यूके २ नवलिक्षाः ९। दशहस्ते एकोन-पञ्चाश्वदङ्खलानि ४९। चत्वारो यवाः ४। चतस्रो युकाः ४। सम् विक्षाः ७। एकं वालाग्रम् १। पञ्च रयरेणवः ५। एका त्र तरेणुः १। सम् परमाणवः ७। इति पूर्वोक्तभूम्यद्वेनैतल्लम्बगणने फल्प एक-विकातिरङ्खलानि २१। पञ्च युकाः ६। वञ्च लिक्षाः ६। एकं वाला-ऽग्रम् १। पञ्च रयरेणवः ६। वयः परमाणवः ३। इति । व्यस्द्वपफलैकीकरणे द्वासमृतिरङ्खलानि ०२। पत्राग्वक्रताचा तावसेव मुस्त्यच्यते, तावसेव संग्रहते इति गणितं क्षेत्रफलम् अविद्वितम् । अष्टानामपि पत्राणां क्षेत्रफलमेलनेऽङ्गुलानां पट्समुन्यका पञ्चश्चति ६०६ ॥

अथाऽष्टास्त्रष् ॥ इष्टचतुरस्रव्यासश्चतुर्विशतिभागः । तत्र द्वाभ्यां भागाभ्यामेकभागचतुर्थाशाधिकाभ्यां मध्यसूत्रं संबद्ध्ये मध्याद्दद्ध्यन्तपृतकर्कटेन टत्तं क्रत्वेशानपृत्रान्तरालमारभ्येकादश-भिरंशिमितेन सूत्रेणाऽष्टसु स्थानेष्वक्किरेषु अष्टास्रं भवति । अत्र स्वैकादशांशः स्वाष्ट्मांशोनः कार्यः ॥

अतैकदृस्तादाबुपपत्तिः। मध्ये समचतुरस्तं तद्भुजमानं तु । विंश-स्पङ्कुलानि । एको यवः । यूकात्रयं च । चतुरस्रचतुर्भागेषु चत्नारि व्यक्षाणि । तत्र भुवश्चतुरस्रभुजा । एवं पूर्वोक्ताङ्कसूत्रामेतावेव च द्वौ भुजौ । लम्बानां तु चत्वार्य्यकुलानि । एको यवः । द्वे क्युके इति । तत्र चतुरस्रफलं, चत्वारि शतानि सप्त चाङ्कलानि । ४००। यवाश्च सप्त मसेकं व्यक्षफळं द्विचलार्यञ्चलानि ४२।व्यव्य-चतुष्टुयफळमष्टवष्टाधिकं शतम् १६८॥ रामोक्तं त्वष्टास्नं विषमवक्र-सुजलादः पोडशास्त्रतापत्तेश्चोपेश्यपिति दिक् ॥

अष्टासिभुजाङ्कुळानि । एकस्मित् दशाङ्कुळानि सप्त यवाः । द्वयोः पश्चदशाङ्कुळानि । त्रयो यवाः । त्रिष्वप्टादशाङ्कुळानि । सप्त यवाः । पश्चमु चतुर्विशत्य-ऽङ्कुळानि यवत्रयम् । पर्मु पद्विशत्यङ्कुळानि पद्यवाः । सप्तस्वष्टा-विश्वसङ्कुळानि । सप्त यवाः । अप्टमु त्रिश्वदङ्कुळानि । सप्त यवाः । नवसु द्वात्रिश्वदङ्कुळामि । पद् यवाः । दशसु चतुर्स्विशदङ्कुळानि । यश्च यवाः ॥

अथ चतुर्विशांशाः । एकस्मित् एकाङ्गुलम् । द्वयोरेकाङ्गुलम् । प्रया यवाः । विष्वेकाङ्गुलम् । पट् यवाः । चतुर्षङ्गुलद्वयम् । पञ्चस्वङ्गुलद्वयम् । पञ्चस्वङ्गुलद्वयम् । पञ्चस्वङ्गुलद्वयम् । पञ्चस्वार्यङ्गुलाने । एकहस्तादिषु चतुर्याशाः । एकस्मित् पटङ्गुलाने । यवन्त्रयम् । युकाश्चतस्यः । चतुर्षे द्वादश्चलाने । पञ्चमु त्रयोरिशङ्गुलानि । यवन्त्रयम् । युकाश्चतस्यः । चतुर्षे द्वादशङ्गुलानि । पञ्चमु त्रयोरिशङ्गुलानि । यद्वार्यः । चतुर्पे द्वाराङ्गुलानि । द्वारेष्टाङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । विषु द्वशङ्गुलानि । यवत्रयम् । यूकाश्चतस्यः । चतुर्पेद्वादशङ्गुलानि । पञ्चमु त्रयोरिशङ्गुलानि । यद्वार्यः । य्वार्श्वतस्यः । यद्वश्चल्याने । पद्वमु चतुर्दशाङ्गुलानि । पद्वमु चतुर्दशाङ्गुलानि । पद्वमु चतुर्दशाङ्गुलानि । सप्तयवाः । चतस्य युकाः । नवस्यष्टादशाङ्गुलानि । द्वार्यः । चतस्य युकाः । विष्टस्य चतुर्विश्वरङ्गुलानि । सप्तयवाः । चतस्य युकाः । विष्टस्य चतुर्विश्वरङ्गुलानि । सप्तयवाः । चतस्य युकाः । विष्टस्य चतुर्विश्वरङ्गुलानि । सप्तयवाः । पद्वस्य युकाः । विष्टस्य चतुर्विश्वरङ्गुलानि । सप्तयवाः । प्रयाः । विष्टस्य चतुर्विश्वरङ्गुलानि । ।

अयाष्ट्रमांबाः। एकस्मिनस्युलत्रयम्। इयोश्चत्वार्यङ्गुलानि ।

द्वी यवी । त्रिषु पञ्चाङ्गगुलानि । द्वी यवी।चतुर्षु पढङ्गुलानि । पञ्चमु षढङ्गुलानि षड् यवाः । षद्मु सप्ताङ्गुलानि।यवव्यप् । सप्तस्वष्टाङ्गुलानि । अष्टस्वष्टाङ्गुलानि। यवचतुष्कप् । नवसुनवा-ऽङ्गुलानि । दशसु नवाङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । षोढशसु द्वादशाङ्गुलानि ॥

अथ पष्टांशाः। एकस्मिन्नङ्कुळचतुष्टयम्। द्वयोः पञ्चाङ्कुळानि पञ्च यवाः। तिस्रो यूकाः। त्रिषु पदङ्कुळानि सप्त यवाः। चतस्रो यूकाः।चतुर्ष्वधृङ्कुळानि।पञ्चस्वष्टाङ्कुळानि सप्त यवाः।चतस्रो यूकाः। पद्स नवाङ्कुळानि। पद् यवाः। चतस्रो यूकाः।। सप्तसु द्वा- ऽङ्कुळानि।चत्वारो यवाः।पञ्च यूकाः। अष्टस्वेकादशाङ्गुळानि। द्वासु द्वादका- इङ्कुळानि। य्वा युकाः। नवसु द्वादशाङ्गुळानि। द्वासु द्वादका- इङ्कुळानि। पञ्च यवाः। पोडशसु पोडशसु पोडशस्तुरुळानि।

अथ द्वाद्यांशाः । एकस्मिन्नङ्गुलद्वयम् । द्वयोद्वें अङ्गुले । सप्त यवाः। विष्वञ्चलत्रयं यवचतुष्टयम् । चतुर्षु चत्वार्यऽङ्गुलान् । पश्चमु चत्वार्यङ्गुलान् । चत्वारो यवाः । पर्मु चत्वार्य-ऽङ्गुलान् । पश्चमु चत्वार्य-ऽङ्गुलान् । सप्त यवाः। सप्तमु पश्चाङ्गुलान् । द्वौ यवौ । अष्टमु पश्चाङ्गुलान्। पश्चमु पर्वङ्गुलान्। दश्चमु पर्वङ्गुलान्। दश्मु पर्वङ्गुलान्। वश्चमु पर्वङ्गुलान्। वश्चमु पर्वञ्चलानां ध्वनायः सर्वसिद्धिदः * इत्युक्तत्वाद् सर्वेषु चैतेषु भोक्तमाना-दर्धाङ्गुलयवादिन्युनमितिरक्तं वा कृत्वा ध्वनायः साधनीयः । विस्तारदैर्व्यं गुणितैर्ष्टभिविभक्ते यद्येकः परिश्चित्यते तदा ध्वनाय इति । तदुक्तम् । ध्वनो धूम्रोऽथ सिद्ध्यं सौरमेयः खरो गन्नः। ध्वाङ्क्षस्थिति क्रमेणैतदायष्ट्वक्रमुदाहृतमिति ॥ भविष्यपुराणे मुनिमानं शताद्वें तु ज्ञते चारिकमात्रकपः । सहस्रे त्वय हीतव्ये कुर्याद् कुण्डं करात्मकम् ॥ द्विहस्तमसुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम् ।

अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकमिति ॥ यमु शारदा-तिलके । एकहस्तमितं कुण्डमेकलक्षे विधीयते। लक्षाणां दशकं या-धत्तावद्धस्तेन वर्द्धयेत ॥ दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि शस्यत इति ॥ यमु स्कान्दे, कोटिहोमे चतुर्दस्तं चतुरस्तं समन्ततः * योनिवक्रद्वयोपेतं तद्प्पाहुस्त्रिमेखलमिति च लक्षादिहोमेण्वेकहस्ता-दिकुण्डविधानं, कोटिहोमे दशहस्तस्य । तद् यथोचितवीद्यादि-चिरदाहस्युलद्रव्यविषयम् । पृतादिक्षिपदाहिद्रव्यविषयं च क्षेयम ॥

अथ खातम्। मोहचूडोत्तरे। चतुर्विश्वातिमं भागमङ्गुलं परि-करण्य तु। चतुर्विशाङ्गुलं हस्तं कुण्डानां परिकल्पयेत्॥ हस्तमात्रं खनेत्तिर्यगुर्ध्वमेखल्या सह ॥ पिङ्गलमते, खातादेकाङ्गुलं त्यक्ता मेखलानां स्थितिर्भवेत् ॥ तथा, सर्वेषामेव कुण्डानामेका ना तिस्र एव वा ॥ कुण्डलक्ष्मिवहत्तो, कण्डाङ्गुलाद्धहिः कार्या मेखलैका षडङ्गुलेति । चतुश्चिद्धङ्गुला वाऽपि तिस्रः सर्वत्र शोभना इति ॥ मेखलात्रितयं कार्यं कोणरामयमाङ्गुलेः ॥ कोणाश्चत्वारः। रामास्त्रयः। यमौ द्वौ । चतुश्चिद्धाङ्गुलत्वं च विस्तारे, उच्चतायां च । अत एव शारदातिलके मेखलामानं प्रकृत्य, विस्तारोत्सेषतो क्रेषा मेखलाः सर्वतो बुचैरिति। रामेण तु तिस्रणामपि व्यङ्गुलो-चत्तेव। विस्तारस्तु चतुश्चिद्धाङ्गुल इत्युक्तम् ॥

अथ योनिः।तत्र स्वायम्भुने, मेखलामध्यतो योनिः कुण्डार्द्धाः व्यंशिवस्तृता । अङ्गुष्टमानोष्टकण्डा कार्याऽत्वत्यदलाकृतिः ॥ कुण्डार्द्धाः दीर्घा। व्यंशिवस्तृता मुले अग्रेऽक्वत्यदलवत कुश्चिता । अङ्गुष्टमानो ओष्टकण्डो यस्याः सा अङ्गुष्टमानोष्टकण्डा । ओष्टः कुण्डमध्ये मिष्टं योन्यग्रम्।कण्डो योनिमेखलेखेके। तथाच भुवि वेष्टिता योनिः कार्येसर्थः । मेखलात उच्चो भाग इसपरे । वेस्लोनमस्तरे, दैव्यात सूर्याङ्गुला योनिस्वयंशोना विस्तरेण तुः।

एकांगुळोच्छिता सा तु पविष्टाभ्यन्तरे तथा ॥ कुम्भद्रयसमायुक्ता वाऽश्वत्थदलवन्मता। अङ्गुष्टमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिक्षमेति॥ अंशोना योनिदैर्घातः । अष्टाङ्गुलेति यावतः । कुम्भद्वयेन दतार्द्धद्याकारेण मुलदेशे समायुक्ता । शारदातिलके, स्थलादा-रभ्य नालं स्याद्योन्या मध्ये संरब्धकामिति॥ प्रागाग्नियाम्यकुण्डा-नां पोक्ता योनिरुदक्सुली । पूर्वामुलाः स्मृताः दोवा यथा शोभाममन्विताः ॥ त्रैळोक्यसारे, नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्ष-दले स्थितेति ॥ शारदाया योनिर्कुण्डे योनिमज्जडतुल्यां नार्भि च वर्जवेदिति ॥ सिद्धान्तशेखरेऽपि, योनौ योनिर्न कुर्विति ॥ शारदातिलके, कुण्डानां कल्पयेदन्ते नाभिमम्बुजसन्निभाम् । तत्तत्कण्डानुरूपां च मानमस्या निगद्यते ॥ मुष्टिरत्नैकहस्तानां नाभिरुत्सेधतो मता । नेत्रवेदाङ्गुळोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ॥ यबद्वयक्रमेणैव नार्नि पृथगुदारधीरिति ॥ नेत्रवेदाङ्गुळोपेता उच्चतायां ह्यङ्गुलविस्तारा वामयोश्चतुरङ्गुलेखर्थः। द्वित्रिहस्ता-दिकुण्डेषु द्विः द्विस्तु विस्तारा । मयोः पष्टांशविस्तारपरा । उच्चतायाः द्वादशांशपरेति रामादयः । शारदातिलको, एकमेव भवेत कुण्ड-मीशान्यां वैष्णवाध्वर इति ॥ विश्वकर्मा, खाताधिके भवेद्रोगीः हीने धेनुधनक्षयः I वक्रकुण्डे तु सन्तापो गरणं छिन्नभेख-छे ॥ मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसङ्खयः । भार्यावि-नादानं पोक्तं कुण्डे योन्या विना कृते ॥ अपत्यध्वंसनं शोक्तं कुण्डं यत् कण्डवर्जितमिति ॥ सिद्धान्तशेखरे, मानंहीने महान्या-धिर्धिके शत्रवर्द्धनम् । योनिहीने त्वपंस्मारो वाक्कुण्डः कण्डव-जिंते ॥ तत्रैव । स्थण्डिलं वाऽपि कुर्वीत सुसिद्धैः सितकैः श्रितैः। इस्तमात्रं पविस्तारं सुसमे ज्यङ्गुलोन्नतम् ॥ ग्रन्थान्तरेऽपि नित्यं नैमिचिकं होमं स्थिण्डिले वा समाचरेत । हस्तमात्रेण तत कुर्या- द्वालुकाभिः मुर्रौभनम् ॥ व्यङ्गुलोत्सेघसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः इति ॥ इति श्रीशङ्करभद्दात्मजभद्दनीलकण्डकृते दानमयूखे कुण्ड-मेखलानिर्णयः ॥

अथ पोडशारचक्रम् । तत्र गुरुर्वेद्यां मध्ये त्रिहस्तव्यासं चतुरस्रं प्रसाध्य पागपरदक्षिणोत्तरनवनवरेखाभिस्तचतुःषष्टिकोष्ठ-कं कुर्यात् । तत्र कोष्ठानि मस्येकं नवाङ्गुलानि संपद्यन्ते । ततो बहिरन्त्यपङ्किषु चतुर्दिश्च मध्यकोष्टानि चत्वारि चत्वारि मार्ज-यित्वा तदुवर्युपान्सपङ्किषु पार्श्वयोस्तत्रयं त्रयं सक्ता प्रतिदिशं मध्यकोष्ठद्वयं मार्जयेत् । तेन चतुर्दिश्च पट् षट् कोष्ठानि चत्वारि द्वाराणि सिद्ध्यन्ति । ततो मध्यस्थितपोडशकोष्ट्रानि मार्जयेत । ततो बाह्य एकैकं कोणकोष्ठं विहाय कोणकोष्ठद्वारपीठान्तराल-वर्त्तीन्यविष्ठानि पञ्च पञ्च कोष्ठानि मार्जयेत् । तथाच मध्यन चतुरस्रपीठस्य पादाः सिद्ध्यन्ति । ततो मध्याचत्वारि दृत्तानि कुर्यात् । तत्राद्ये चत्वार्यङ्गुलानि न्यासः । द्वितीयेऽष्टौ । तृतीये चत्रविंशतिः। चतुर्थे पर्डिशतिरिति।तचतुरङ्गुछं टत्तं कर्णिकारूपं पीतेन रजसा पूरियत्वा कार्णिकाविधरेखां सितेन रजसा निर्माय तद्वहिरष्टाङ्गुलात्मके रंत्ते पीतरक्तासितरजोभिः संपादितमृखमध्या-Sग्राणि षोडश केशराणि संपाद्य तत्केसरावधिरेखां सितेनैव रजसा-**ऽङ्गुलोनतां संपाद्य चतुर्विशाङ्गुलात्मके तद्धहिर्देने सितरजसा** अष्टदिस्वष्टौ पत्राणि रक्ताग्राणि कुर्याद ततो दलान्तरे रेखां सितेन रजसा विभाय दलान्तराणि कृष्णेन रजसा पूरियत्वा तद्धहिरेकाङ्-Sग्रळान्तरं बहिर्हेत्तरेखां सितेनैव रजसा संपाद्य तहुवान्तरं परितो-Sङ्गुष्ठदछान्तराणि कृष्णेन रजसा पूरियत्वा तद्वहिरेकाङ्गुळान्तरा वहिर्टचरेखां सितेनैव रजसा संपाच तह्यान्तरं परितोऽङ्गुष्ठदळाग्र-तत्सन्धिचिद्धैः षोडश्या विभज्य प्रतिभागं यवाकारान् पोडश्चन

कीटान् व्यामपीतारूणक्षेतरजोभिः कल्पिय्ता तदन्तरा यथायोग-रजोभिः पूरियत्वा तद्धाहिःसितपीतारूणक्यामहरिताः पञ्चेरसा लिखे-द। तद्धाहिः पीठक्षेत्रचतुरस्रं यथाक्षोभं रजोभिरलंकु सपीठाऽवधि-रेसां सितेन रजसा चतुरसां रचयेत । द्वारक्षेत्राणि पूर्वादितः पीतक्यामक्षेतहरितरजोभिः पूरयेत । आग्नेयादिकोणे कोष्ठ-चतुष्टयं लोहितहरितक्यामधनलैः पूरयेत । आग्नेयादिपीठपाद-चतुष्टयं पञ्चकोष्ठात्मकं क्रमात् सितरक्तपीतकृष्णरजोभिः पूरयेत । ततः सितेन रजसाङ्गुलोन्नतेन बहिश्चतुरस्ररेखां कुर्यादिति पिता-महचरणाः । मदनाद्याश्च ॥

टक्कुरमते चतुर्हस्तं चतुरस्रम् । तत्र प्रथेकं द्वादशाङ्गुळानि कोष्ठानि । दत्तानि तु पश्च । तत्राचे दत्ते चत्वार्थ्यङ्गुळानि व्यासः । द्वितीयेऽष्टो, तृतीये विंशतिः, चतुर्थे चतुर्विंशतिः, पश्चमे षट्बिंशदिति । पश्चकोष्ठात्मकं पीठपादचतुष्ट्यमाग्नेयादिक्रमेण रक्तहरितश्यामसितैः पूरणीयम् । कोणकोष्ठचतुष्ट्यं त्वेकं त्रिभि-स्त्रिभिर्वणौरिति विशेषः । इति पोदशारचक्रानिर्मितिः ॥

इदमेव च वारुणं मण्डलम् । तथा, वज्रं मागुत्तमे भागे आन् ग्नैटयां शक्तिमुङ्ब्बलाम् । आलिखेइसिणे दण्डं नैर्ऋयां खड्ग-मालिखेद ॥ पाशं तु वारुणे लेख्यं ध्वनं वै वायुगोचरे । कौवे-र्या तु गदां लिख्य ईशान्यां श्रुलमालिखेद ॥ श्रूलस्य वामदेशे तु चक्रं पश्चं तु दक्षिणे इति ॥ ततो महावेद्यपरि पञ्चवर्णफल-पुष्पोपशोभितं वितानं वध्नीयादिति।ततो महावेदीशानभागे आ-यामदैन्वांच्छ्रायैईस्तमिता ग्रहादिस्थापनार्था परा वेदियां विहिन् ताऽस्ति, हेमादिनते वितस्त्युच्छ्राया वा तस्यां सर्वतोभद्रं लिखेद । तक्षेस्तनमकारोऽपीत्थम् मागुदीच्यां गता रेसाः कुर्यादेकोन-विश्वतिः। स्रण्डेन्द्रस्तिपदः कोणे श्रृङ्खला पञ्चाभः पदैः॥ एकादश्चन पदा बल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । चतुर्विशत्पदा वापि परिधिन् विश्वकैः पदैः ॥ मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदल्लं स्मृतम् । श्वेतेन्दुः श्रृङ्खला कृष्णा वर्ली नीलेन पूरयेत् ॥ भद्रारुणा सिता वाऽपि परिधिः पीतवर्णकः । वाह्यान्तरदला क्ष्वेता कर्णिका पीतवर्णिका ॥ परिध्यावेष्टितं पद्मं मध्ये स्थापयेन् देवान् ब्रह्मायांश्च सुरासुरानिति ॥

अथ ग्रहपूजापकारः । तत्र ग्रहा मात्स्ये, सूर्यः सोमा मही-प्रतः सोमप्रतो बृहस्पतिः । शुकाः शनैश्वरो राहः केतुश्चेति ग्रहा नव ॥ स्कान्दे, जन्मभूगोत्रमेतेषां वर्णस्थानमुखानि च । यो-**डज्ञात्वा क्रुरुते शानित ग्रहास्तेनावमानिताः ॥ स्थानमाधिष्टानम् ।** एतद्विज्ञाय यः कुर्यात्तत्सर्वे सफलंभवेत् *॥वर्णजन्मनीआह बद्ध-पराशरः, रक्तः कश्यपजो भातुः शुक्को ब्रह्मसुतः शश्ची । रक्तो रुद्रमुतो भौमः पीतः सोमम्रुतो बुषः ॥ पीतो ब्राह्मः मुराचार्यः शुक्रः शुक्रो भृगृद्रहः। कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः मजा-पतेः ॥ कृष्णः केतुः क्रशानृत्यः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी ॥ भुत्रमाह स एव, उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यमुनायां च चन्द्रमाः। अङ्गारकस्त्ववन्त्यां तु मगधायां हिमांश्चनः ॥ सैम्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा । बानैश्चरस्तु सौराष्ट्रे राहुवैराटिके पुरे ॥ अन्तर्नेद्यां तथा केतुरित्येताग्रहभूमयः ॥ गोत्रमाह स एव, आदित्यः काञ्यपो गोत्राद् आत्रेयश्चन्द्रमा भवेत । भारद्वाजो भवेद्धौमस्तथा-SSत्रेयश्च सोमनः॥शक्रपूरुयोऽङ्गिरोगोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तया । श्रानिः काश्यप एवाथ राहुः पैठीनसिक्तथा ॥ केतवो जैमिनीया-श्च ग्रहा लोकहितावहाः ॥ दामोदरीये ग्रहान् मक्रम्य, वर्णस्प-मुणैर्युक्तानः च्याहृत्यावाहयेनु तान्॥ तत्रैव, भानुं तु मण्डलाकारं 🖍 अर्द्धचन्द्राकार्ति विधुम् । अङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं बाणाकृति

विदः ॥ पद्माकारं गुरुं कुर्याचतुष्कोणं च भार्मवम् । दण्डाकृति श्चानि राहुं मकराकारमेव च ॥ खड्गाकाराँस्तथा केतृत् स्थापयेद-Sतुपूर्वशः ॥ ग्रहादिक्ष्पाणि मात्स्ये, पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भ-समद्यतिः । सप्ताञ्चरथसंयुक्तो द्विभुजः स्यात सदा रविः॥ स्वेतः इनेताम्बरधरो द्वाद्यः स्वेतभूषणः । गद्यापाणिर्द्विवादुश्च कर्त्तव्यो वरदः शशी ॥ रक्तमाल्याम्बरघरः शक्तिशूलगदाघरः । चतुर्भुजो मेषवाहो वरदः स्याद्धराम्रुतः ॥ पीतमाल्याम्बरघरः कर्णिकार-समद्यतिः। खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥ देवदैसगुरू तद्भव पीतक्षेती चतुर्भुजी । दण्डिनी वरदी यो हि साक्षसूत्र-कमण्डलः ॥ इन्द्रनीळचुतिः ज्ञूली वरदो गृधवाहनः । वाणवाणा-SSसनधरः कर्चव्योऽर्कस्रुतः सदा ॥ करालवदनः खड्गचर्मश्रूली वरपदः । नील्रसिहासनस्थश्च राहुस्तत्र प्रशस्यते ॥ धूम्रा द्वि-बाइवः सर्वे गदिनो विकृताननाः। ग्रेश्रासनगता निसं केतवः स्यु-र्वरपदाः ॥ सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः ॥ केतृनां बहुत्वे एकमेव देवतात्वम् । दृद्धपराश्चरः, मध्ये तु भास्करं वि-ु द्याच्छितानं पूर्वदक्षिणे । दक्षिणेन धरासूनुं बुधं पूर्वीत्तरेण तु ॥ उत्तरेण गुरुं विद्याद पूर्वेणैव तु भार्गवम् । शनैश्चरं पश्चिमस्या राहुं दक्षिणपश्चिमे ॥ पश्चिमोत्तरतः केत्त् स्थापयेदनुपूर्वशः॥ मुखानि मान्स्ये, देवानां तत्र संस्थाप्या विश्वतिद्वीदशाधिका । आदिस्याभिमुखाः सर्वे साधिपत्यधिदेवताः ॥ शुक्राकी पाङ्मुखौ क्षेयाविति स्कान्दात सूर्यः पाङ्मुखः । पूजायां संमुखतानुरोधात प्रत्यङ्गुख इसन्ये । अधिदेवताः पत्यधिदेवताश्च, मात्स्ये-भास्करस्येक्वरं विद्यादुर्गां च शशिनस्तथा । स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुपस्यापि तथा हरिम् ॥ ब्रह्माणं च गुरोविद्याच्छुक्रस्यापि शची-पतिम । शनैश्चरस्यापि यमं राहोः कालं तथैव च ॥ केतूनां

चित्रगुप्तं च सर्वेवामधिदेवताः । अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रश्चेन्द्री च देवता ॥ प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रखिषदेवताः ॥ एतेपां लक्षणानि विष्णुवर्गोत्तरे. पञ्चवक्रो द्ववारूढः प्रतिवक्रं त्रिलोचनः । कपालग्रलखडाङी चन्दमीलिः सदाशिवः ॥ अक्षस्रत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलम् । उमा विभक्तिं हस्तेषु प्रजिता त्रिदशैरपि ॥ क्रमारः षण्मखः कार्यः शिखण्डकविभूषणः । रक्ताम्बरधरो देवो ॥ कुक्कुटश्च तथा चण्टा तस्य दक्षिणहस्तयोः । मयरवरवाहनः पताका वैजयन्ती स्यान्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥ विष्णुः कौ-मोद्कीपद्मशङ्खचक्रथरः क्रमातः । प्रदक्षिणं दक्षिणाधःकरावारभ्य निस्रक्षः ॥ पद्मासनस्यो जटिलो ब्रह्मा कार्यश्रुतर्मुखः । अक्षमालां स्रुवं विश्वत् पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥ चतुर्दन्तगजारूढो वजी कुलिशमृत्करः । श्रचीपतिः पकर्त्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥ ईषं-स्त्रीलो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानता। रक्तदक्पाश्चहस्तश्च महा-महिषवाहनः ॥ कालः करालवदनो नीलाङ्गश्च विभीषणः । पाशहस्तो दण्डहस्तः कार्यो दृश्चिकरोमवान् ॥ अपीच्यवेषस्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम् । दक्षिणे लेखनीं चित्रगुप्तं वामे तु पात्र-कम् ॥ पिङ्गलक्पश्चकेशाक्षः पीनाङ्गोजनरोऽरुणः । छागस्यः साक्ष-सूत्रोऽग्निः सप्तार्विः शक्तिधारकः ॥ चिह्नितं चमरेणास्य करमन्यं प्रकल्पयेत् ॥ आपः स्त्रीरूपधारिण्यः ब्वेता मकरवाहनाः । दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ॥ शुक्रवर्णा मही कार्या दिन्या-ऽऽभरणभूषिता। चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांग्रसद्शाम्बरा॥रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् । पद्मं करे च कर्त्तव्यं भुवो यादव-तन्दन ॥ दिग्गजानां चतुर्णी सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥ विष्णी-रिन्द्रस्य चोक्तम्।वामे शच्याः करे कार्या सौम्या सन्तानमञ्जरी । ब्रस्टा मण्डिता कार्या द्विभुजा च तथा सती ॥ यह्नोपनीती इंसस्य एकवकश्चतुर्भुजः । अक्षं स्रुचं स्रुवं विश्वत कुण्डिकां च मजापितः ॥ अक्षम् अक्षमालाम् । कुण्डिकां कमण्डलुम् । अक्षसूत्र-घराः सर्पाः कुण्डिकापुच्छभूषणाः । एकभोगास्त्रिभोगा वा सर्वे कार्याश्च भीषणाः ॥ त्रह्मलक्षणमुक्तम् । ग्रहाणां दक्षिणे पार्वे न्यसेत् मसाधिदेवताः ॥

अथ विनायकादिलक्षणानि । चतुर्भुजिक्ष्निनेत्रश्च कर्त्तन्योऽत्र
गजाननः । नागपद्गोपवीतश्च श्वशाङ्करुतशेखरः ॥ दक्षे दन्तं करे
दद्याद्वितीये चासस्त्रकम् । तृतीये परश्चं दद्याचतुर्थे मोदकं तथा ॥
श्राक्ति वाणं तथा ग्रूलं खड्गं चक्रं च दक्षिणे । चन्द्रविम्वमथो वामे
खेटमुर्थ्वे कपाळकम् ॥ सुकङ्कटं च विश्वाणा सिहाइटा तु दिग्भुजा । एपा देवी समुदिष्टा दुर्गादुर्गातिनाश्चिनी ॥ धावद्धरिणपृष्ठस्थो ध्वजथारी समीरणः । वरदानकरो भूत्रवर्णः कार्यो विजानता ॥ नीलोत्पल्लामं गगनं तद्वर्णाम्वरधारि च । चन्द्रार्कहरतं
कर्त्तन्यं द्विभुजं सौम्पखण्डवत्॥द्विभुजो सौम्पवरदौ कर्त्तन्यौ छप्संयुतौ । तथोरोषध्यः कार्या दिन्या दक्षिणहरूतयोः ॥ वामयोः
पुरुतकौ कार्यो दर्शनीयौ तथा द्विजाः ॥ एकस्य दक्षिणे पार्ष्ये
वामे चास्य च यादव । नारीयुगं प्रकर्त्तन्यं सुद्धपं चाहदर्शनम् ॥
स्त्रभाण्डकरे कार्ये चन्द्रशुक्ताम्बरे तथा ॥

अथ लोकपालकपाणि । तत्रेन्द्राग्नियमब्रह्मकपाणि मस्रिवि-देवते। त्रस्योक्तानि । खड्गचर्मपरो बालो निर्वहितनेरवाहनः । ऊर्ध्व-केस्रो विक्पाक्षः करालः कालिकाप्तियः ॥ नागपात्राधरो रक्त-भूषणः पश्चिनीपतिः । वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः ॥ बाद्यविनायकादिपश्चके लक्तः । सोमो ग्रहेषु । अनन्तः मत्यधिदेव-तास्तु । त्रिनायकादिस्यापनं ग्रहेभ्य द्वचरत इति संप्रदायः । दक्षिण-पश्चिमवायन्योक्तरपूर्वेषु यथाक्रममिखन्ये । राहुमन्ददिनेसानासुक

त्तरस्यां यथाक्रमम् अ गणेशदुर्गा वायुश्च राहुकेत्वोश्च दक्षिणम् ॥ आकाशमध्यनौ चेति पश्चेतान् स्थापपेद बुध इति वचनानुसारेणेति भट्टाः, रूपनारायणश्च ॥ पूजामकारमाह याज्ञवल्क्यः । यथावर्णे मदेयानि वासांसि कुछुगानि च । गन्धाश्च बळयश्चैव घूपो देयोsत्र गुग्गुल्तः ॥ मात्स्ये, धृपामोदोऽत्र सुराभिरुपरिष्टाद्वितानकम् । शोभनं स्थापयेत पाइः फलपुष्पसमन्त्रितम् ॥ धूपे विशेषो हेमा-Sद्रौ स्कान्दे । स्वेः कुन्द्रुकं धूपं शशिनस्तु धृताक्षताः । भौमे सर्ज्जरसं चैव अगरुं च बुधे स्मृतस् ॥ सिह्न ं गुरवे द्याच्छुके विल्वा-गुरु स्मृतम् । गुग्गुलं मन्दवारे तु लाक्षा राहोश्च केतवे ॥ कुन्द्रुकः सञ्जकीनियीसः । सर्ज्ञः । बालः । सिहकं सिहा इति मध्य-देशे प्रसिद्धम् । बिल्वागुरु विल्वफलनिर्याससहितमगुरु । मन्द्वारे श्रनेश्चराय । लाक्षा राहवे केतुभ्यश्च । गन्धे विद्योषमाह, दिवाकर-कुजाभ्यां हि दापयेद्रक्तचन्दनम् । चन्द्रे च भार्गवे चैव सितवर्ण प्रदापयेत ॥ कुङ्कमेन च संयुक्तं चन्दनं जीवसीम्ययोः । अगुरुं चापि कस्तूर्या राहते त्वर्कजेषु च ॥ अङ्गदेवतानां तु, पुष्णाणि सितवर्णानि चन्दनं च विलेपनम् । एतेषां गुग्गुलुर्धुपो नैवेद्यं घृत-पायसम् ॥ वासांसि शुक्कानीति संपदायः । ग्रहवलीनाह । गुडौ-दनं खेर्दचात सोमाय घृतपायसम् । अङ्गारकाय सँय्यावं बुधाय क्षीरपष्टके ॥ दध्योदनं तु जीवाय शुक्राय च घृतौदनम् । शनै-श्चराय कुशरमाजं मांसं च राहवे ॥ चित्रौदनं च कोतुभ्यः सर्व-भक्ष्येरथार्चयेत्॥ अत्र सर्वभक्षेरथार्चयेदिसन्यद्पि मोदकादि देय-मिति दामोदरठक्कुरः । सँय्यावो गोधूमचूर्णसाधितो घाटाख्य इसपि स एव । तण्डुलमसुरात्रमिति रूपनारायणः । क्रुवारं तिल-. तण्डुळं दुग्यसाधितम् । चित्रौदनम्, तिळतण्डुळमिश्रं स्यादजाङ्गीरं तु बोणितम् अकर्णनासायहीतं स्यादेतचित्रौदनं स्मृतम् इति.

दामोदरः ॥ याज्ञवल्क्यः । शक्तितोवा यथालाभं संस्कृत्य विधि-पूर्वकम् । पूजयन्तो ग्रहानेताँ छभन्ते सकलं फलम् ॥ यत्तु पृथ्वीचन्द्रोद्यादौ,वर्णरूपगुणैर्युक्तान् व्याहृसावाहयेत्त् ता-नितिवचनाद्ॐभूरादित्यमावाहयामि। ॐभुवःआदित्यमावाहयामि ॐस्वः आदिसमावाहयामि । ॐ भूर्भुवःस्वरादिसम् इति व्यस्त-समस्तव्याद्वतिभिरावाह्य, भगवन्नादित्य नक्षत्राधिपते काश्यपगोत्र कलिङ्गदेशेश्वर जवापुष्योपमाङ्गयुते द्विभुज पद्माभयहस्त सिन्दूर-वर्ण माल्याम्बरानुलेपन ज्वलन्माणिक्यखचितसर्वाङ्गाभरण भास्त्र-त्तेजोनिये त्रिल्लोकपकाशक त्रिदेवतामयमुर्ते नमस्ते सन्नद्धारुण-ध्यजपताकोपशोभियेनसप्ताद्यस्थवाहनेन मेहंपदक्षिणीकुर्वज्ञागच्छा-ऽग्निरुद्राभ्यां सहेसादिविशेषणैरपि युक्तान ग्रहान आवाहये-दिति । तद् पूछं विसुद्ध कार्यम् । वामनग्रन्थे, आचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफ्छं ततः । समिदाज्यचळ्णाम् । ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चार्चनस्य फलं च यत् अ लोकपालगणेशाद्यास्तत्र या अङ्गदेव-ताः ॥ तासां जपफले तद्भद् युद्धीयाज्जलपूर्वकम् । ततस्तेभ्यो यथाशक्ति दातच्या दक्षिणा तत इति ॥ इति ग्रहपूजाविधिः ॥

अथ पुण्वाहवाचनम्। त्रिकाण्डमण्डनः, गर्भाषानादिसंस्कारेध्विष्ठापूर्त्तकतुष्विपि अः दृद्धिश्राद्धं पुरा कार्यं कर्मादौ स्वस्तिवाचनम् ॥ व्यासः । सम्पृत्त्य गम्धपुष्वाद्यैद्धार्णान् स्वस्ति वाचयेत् । धर्मकर्मणि माङ्गल्ये सङ्क्षामेऽद्भुतदक्षेने इति ॥ मृह्यप्रिक्षिष्ठे।
स्वस्तिवाचनमृद्धिपूर्तेषु तत्कर्मणश्चान्तयोः कुर्यात् ॥ आक्वर्षाः
यनः । दैविके तान्त्रिके चादौ ततः पुण्याह इष्यत इति ॥ तस्य
स्पमारायणीये इत्यम् । त्रीनिधकान् ब्राह्मणान् मोजयित्वोदङ्मुखानुपर्वश्य बङ्कादिभिः परितोष्य पुण्याहं भवन्तो ब्रवन्तिति
ब्राह्मणान् यजमानः माङ्मुखिक्षः श्रावयेत् ॥ ततो ब्राह्मणाः

पुण्याहंमिति त्रिर्व्युः । ततः स्वस्ति भवन्तो ब्रवन्त्विति त्रिःश्रावन येत् । ॐ स्वस्तिरिति त्रिर्वृत्यः । ततः, ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्स्विति त्रिःश्रावयेत । ऋद्ध्यतामिति त्रिः मतिवचनम्।एतच्च, ब्राह्मणान् अन्नेन परिविष्य पुण्याहं स्वस्ति ऋदिरिसोङ्कारपूर्वे त्रिस्निरेकै-कामाशिषो बाचियत्वेद्यादिना बौधायनेनोक्तम् । यमः । पुण्याह-वाचनं देवे बाह्मणस्य विधीयते । एतदेव निरोङ्कारं कुर्याद क्षत्रियवैश्ययोरिति ॥ बह्वचग्रह्मपरिशिष्टे तु, अवनिकृतजानुमण्डलः कमलमुकुलसहक्षमञ्जलि शिरस्याधाय दक्षिणेन पाणिना सुवर्ण-पूर्णकलकां घारियत्वा, दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि व तेनाऽऽयुःत्रमाणेन पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु । शिवा आपः सन्तु सौमनस्यमस्तु, अक्षतं चारिष्टं चास्तु,गन्धाः पान्तु सुमङ्गल्यं चास्तु, पुष्पाणि पान्तु सुश्रियमस्तु, अक्षताः पान्तु आयुष्यमस्तु । ताम्बूलानि पान्तु पेश्वर्यमस्तु, दक्षिणाः पान्तु आरोग्यमस्तु, दीर्घ-मायुः बान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यको विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं चायुष्यं चास्तु । यं कृत्ता सर्ववेदयज्ञित्रयाकरणकर्षारम्भाः छुभाः शोभनाः पवर्त्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुःसमाशीर्वचनं बहर्षिमतं समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचिष्ये । वाच्यताम् । द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य, सविता पश्चात्तात्, नंबो नवो भवति जायमानः, उच्चा दिवि, दक्षिणावन्तो अस्थुरिसेता ऋचः पुण्याहे ब्रूपात ॥ व्रतानियमतपःस्वाध्यायऋतुद्मदानवि-विष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम् । समाहितमनसः स्मः । प्रसीदन्तु भवन्तः । प्रसन्नाः स्मः । शान्तिरस्तु । पुष्टिरस्तु। तुष्टिरस्तु । दृद्धिरस्तु । अविष्नमस्तु ॥ आयुष्यमस्तु । शिवं कर्मा-ऽस्तु । कर्मसमृद्धिरस्तु । प्रत्रसमृद्धिरस्तु । धनवान्यसमृद्धिरस्तु । इष्ट्रसमृद्धिरस्तु । अरिष्टनिरसनगस्तु । यद पापं तदं प्रतिहतमस्तु । यच्छेयस्तदस्त । उत्तरे कर्मण्यविष्नमस्तु ।उत्तरोत्तर अहरहरभि-दृद्धिरस्तु । उत्तरोत्तराः क्रियाः श्रुभाः बोभनाः प्रवर्त्तन्ताम् । तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रसम्पद्स्तु । तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रह-लग्नाधिदेवताः पीयन्ताम् । तिथिकरणे मुहूर्त्तनक्षत्रे सग्रहे सदैवते शीयेताम् । अग्निपुरोगा विश्वेदेवाः शीयन्ताम् । इन्द्रपुरोगा मरुद्भणाः भीयन्ताम् । वसिष्ठपुरोगा मरुद्भणाः भीयन्ताम् । माहेक्वरीपुरोगा उमामातरः शीयन्ताम् । अरुन्वतीपुरोगा एकपल्न्यः भीयन्ताम् । विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः भीयन्ताम् । ब्रह्मपुरोगाः सर्वे वेदाः पीयन्ताम् । ब्रह्मा च ब्राह्मणाश्च पीयन्ताम् । श्री-सरस्वसौ भीयेताम । श्रद्धामेथे गीयेताम । भगवती कासायनी शीयताम् । भगवती माहेक्वरी भीयताम् । भगवती ऋद्धिकरी मीयताम । भगवती पुष्टिकरी भीयताम । भगवती तुष्टिकरी भीय-ताम् । भगवन्तौ विष्नविनायकौ शीयेताम् । सर्वाः कुछदेवताः श्रीयन्ताम् । इता ब्रह्मद्विषः । इताः परिपन्थिनः । इताश्च विघन-कत्तरिः । बात्रवः पराभवं यान्तु । बाम्यन्तु घोराणि । बाम्य-न्त पापानि । शाम्यन्त्वीतयः । शुभानि वर्द्धन्ताम् । शिवा आपः सन्तु । शिवा अग्नयः सन्तु । शिवा आहृतयः सन्तु । शिवा वन-स्पतयः सन्तु । बिावा अतिथयः सन्तु । अहोरात्रे बिवे स्याताम् । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु । फलवस्रो न ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम् । शुकाङ्गारकबुधबृहस्पतिशनिराहुकेतुसोम-सहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः शीयन्ताम् । भगवान्नारायणः श्रीयताम् । भगवान् पर्जन्यः शीयताम् । भगवान् स्वामी महासेनः भीयताम् । पुण्याहकालं वाचियष्ये । वाच्यताम् । उद्गातेव शक्कने साम गायसि । याज्यं याजयति । यत्पुण्यनक्षत्रम् । तद्वषट्कुर्वतो-पञ्चम् । यदा वे सूर्य उदेति । अथ नक्षणं नैति । यावती तत्र

जचन्यं परयेत् । तावति कुर्वीत यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते । तानि वा एतानि यमनक्षत्राणि । यान्येव देवनक्षत्राणि । तेषु कुर्वीत यत्कारी स्याद । पुण्याह एव कुरुते । पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु । ॐ पुण्याहं स्वस्तये वायुमुपत्रवामहै । आदिस उदयनी-या, स्वस्ति न इन्द्रो हद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अशिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्देषात्विति । अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः । चतस्रो देवीरजरा श्राविष्ठाः । ते यज्ञं पान्तु रजसः परस्ताद संवत्सरीणममृतं स्वस्ति । स्वस्ति भ-वन्तो ब्रुवन्तु । आयुष्मते स्वस्ति । ऋध्याम स्तोपम् । सर्वामृद्धि-मृद्धिमृध्तुयामिति । ऋध्यास्म हर्व्येर्नमसोपसद्यः । मित्रं देवं मित्र-घेयं नो अस्तु । अनुराधान इविषा वर्धयन्तः शतं जीवेग शरदः सनीराः । त्रीणि त्रीणि वै देवानामृद्धानि । त्रीणि छन्दांसि त्रीणि सवनानि । त्रय इमे लोकाः। ऋखामेव तद्वीर्य एषु लोकेषु प्रतितिष्ठति । ऋद्धि भवन्तो बुवन्तु । ऋद्ध्यताम् । श्रिये जातः, श्रिय एवेनं, यस्मित् ब्रह्माभ्यजयत् सर्वमेतदमुं च लोकामिदमुं च सर्वम् । तन्त्रो नक्षवमिजिद्विजिस श्रियं दधात्वाहरणीयमानम् । अहे बुधिय मन्त्रं मे गोपाय यमृषस्त्रयीविदा विदुः । ऋचः सा-मानि यजुःषि । सा हि श्रीरमृता सताम । श्रीरस्विति भवन्तो श्रुवन्तु । अस्तु श्रीः । पुण्याहवाचनसमृद्धिरस्तु । भगवान् प्रजा-'पतिः मीयताम् ॥ इति पुण्याहवाचनम् ॥

ततो नीराजनशिभेकं च यथाशास्त्रं कारयेदिति । पुण्याह-बाचनं चादिमध्यान्तेषु कार्यम् । आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद् ब्राह्मणवाचनमिति वचनाद।ततोऽस्मिन् कर्मण्यमुकगोत्रममुकपवर-ममुकशर्माणं गुरुं त्वां टण इसाचार्यं टत्वा ऋग्वेदिनौ द्वौ पुर्वो कुण्डे होमं कर्त्युम् ऋत्विक्त्वेन त्वामहं टणे । ऋग्वेदः पश्चपत्राक्षो गायत्रः सोपदैवतः । अत्रिगोत्रस्तु विषेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे पखे भवेति मसेकं दणुपाद।सर्वत्र मथमं ब्रह्मणस्ततो होतुरिति क्रमः । चतोऽस्मीसेव प्रतिवचनम् । यजुर्नेदिनौ दक्षिणे । कातराक्षो यज्ञ-र्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः । काञ्यपेयस्तु विमेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भवेति॥ सामगौ पश्चिमे। सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्र-दैवतः । भारद्वाजस्तु विषेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भवेति ॥ अथर्वणाबुत्तरे । बृहस्रेबोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः।विश्वम्पायन-गोत्रस्तु ऋ।त्वक् त्वं मे मखे भवेति ॥ ततो जापकानाम् । ते च अष्टाविति कल्पतरौ । चत्वार इति रूपनारायणादयः । एतन्मते-Sष्टौ ऋत्विजः। चत्वारो जापकाः। गुरुश्च इति स्रयोदशः। अष्टौ ऋत्विजोऽष्टौ जापकाः। गुरुश्चेति सप्तदश वा । अष्टौ ऋत्विज-अत्वारो जापकाश्चत्वारो द्वारपालकाः, गुरुश्चेति वा सप्तद्वा । एवं वरणानन्तरं, तत्क्रमेणैवाचार्यादीनां तच्छाखया मधुपर्क इति हेमाद्रौ ॥ संपूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्म कारयेत । अपूज्य कारयेत कर्म किल्विपेरेव युज्यते इति वचनात्। ततो, यदावध्ननिति मन्त्रेण, येन बद्धो बली राजा दानत्रेन्द्रो महाबलः । तेन त्वाम-भिबधामि रक्षे मा चल मा चलेति ॥ अनेन च पीतसूत्रं यज-मानतत्पत्रीगुर्दित्वग्द्वारपालानां इस्ते रक्षार्थं बधान्ति मध्येदेशे । ततो गौर्यादिपोडश ब्राह्मचादिसप्त च मातृः श्रीश्च लक्ष्मीर्घृतिर्मेधा स्वाहा प्रज्ञा सरस्वतीति वसोद्धारा देवताश्च संपूज्य सिपण्डमिपण्डं वा दृद्धिश्राद्धं कुर्यात । तत्र रूपनारायणीये विशेषः। अग्नौकरण-मर्घ्यं चाऽऽवाहनं चावनेजनम् । पिण्डश्राद्धे मकुर्वीत पिण्डहीने निवर्त्तते ॥ तथा, पिण्डनिर्वापरहितं यत्र श्राद्धं विधीयते । स्वधा-बाचनछोपोऽस्ति बिकिरस्तु न छिप्यते ॥ अक्षय्यं दक्षिणा स्वस्ति स्रौमनस्यं यथास्थितीति ॥ तत्र संक्षिप्य प्रयोगः-

सयवस्रमंत्रकाविञ्वेदेवाः, ॐभूर्भवःस्वः इदं वः पाद्यम्। एवं सर्वत्र पाद्यम् । मातृषितामहीप्रापितामहाः नान्दीमुख्यः, ॐभूर्भुवःस्वः इदं वः पाद्यम् । पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः भूर्भवः स्वः इदं वः पाद्यम् । मातामहममातामहत्रद्वममातामहाः नान्दी-मुखाः सपत्रीकाः भूर्भवः स्वः इदं वः पाद्यम्। आचमनम् । सत्य-वससंज्ञकानां विश्वेषां देवानां भूभेवः स्वः इदमासनम् । सुखा-सनम् । नान्दीश्राद्धे क्षणी क्रीयेताम् । ॐ तथा, माप्तु-तां भवन्तौ । प्राप्नवावः । मातृषितामहीप्रिषतामहीनां भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनम् । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रिवेताम् । ॐ तथा माप्तुतां भवन्तौ पाप्रवावः । मातामहप्रमातामहद्यद्वपमातामहानां सपत्रीकानामिदपासनम् । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम्।ॐ तथा, प्राप्तुतां भवन्तौ प्राप्तवावः । ततो गन्धादिदानम् । ससवस्रसंह्न-केश्यो विश्वेश्यो देवेश्य इदं गन्याद्यर्चनं स्वाहा संपाद्यतां हिद्धः। मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीसुखीभ्य इदं गन्ध्राद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां दृद्धिः । पितृपितामहमपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदं गन्याद्यर्चनं स्वाहा । संपद्यतां रुद्धिः । मातामहत्रमातामहरुद्ध-प्रमातामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः सपत्रीसहितेभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा । संपाद्यतां दृद्धिः। ततः परिवेषणं कृत्वा गायन्या मोक्ष्य, पृथिवी ते पात्रमिति पात्रमालभ्य, ससवस्रसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो युग्नब्राह्मणमोजनपर्याप्तम् अन्नम् अमृतक्षेण स्वाहा संपद्यतां दृद्धिः । मातृपितामहीमपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यो युग्नवाह्मणभोजनपर्याप्तमन्त्रममृतस्रोण स्वाहा संपाद्यतां राद्धिः। पितपितामहमितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याम-मनम् अमृतरूपेण स्वाहा संपाद्यतां दृद्धिः । मातामहममातामह-द्वद्धपमातामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः सपत्रीकेभ्यो युग्पत्राह्मणभोजन-

पर्याप्तमञ्जनमृतक्ष्पेण स्वाहा संपाद्यतां दृद्धिः । स्वस्ति न इन्द्रो दृद्धश्रवा इति पाठः । अनेन नान्दीश्राद्धेन कर्माङ्गदेवताः प्रीय-न्तां रहिः । पुरुषसुक्तादिजपः । नान्दीश्रादं सुसंपन्नं सुमोक्षित-पस्तु । शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्तु । अञ्चतं चारिष्टं चास्तु । नान्दीमुख्यो मातरः पीयन्ताम् । नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः शीयन्ताम् । नान्दीमुखा पातामहाः प्रमातामहा रुद्ध-ममातामहाः भीयन्ताम् । ततो गोत्रं नो वर्द्धताम् । वर्द्धता-मित्युक्ते । दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च * श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नो ऽस्तिति ॥ अनं च नो बहु भवेदतिथीं श्र लभेगहि।याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चनेति सम्मार्थ्य, विभैः, दातारो वोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।श्रद्धा च वो मा व्यगपद् बहुदेयं च वो ऽस्तु॥असं च वो वहु भवेदितथींश्च छमध्वम् । याचितारश्च वः सन्तु मा च याचिष्व कञ्चनेति प्रत्युक्ते, द्राक्षामलकाँस्तन्निष्क्रयं वा दक्षिणां दत्वा विश्वेदेवाः शीयन्तामि-ति दैवे वाचियत्वा, वाजे वाजे इति पूर्व विसञ्यामा वाजस्येखनु-व्रजेदिति नान्दीश्राद्धम् ॥

अथ वास्तुपूजा । मारस्ये, यज्ञोत्सवादौ च बल्हिस्तवाहारो भाविष्यति । तथा, वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भाविष्यतीति । तथा, वास्तुपूज्ञा समुद्दिष्टस्तदामभृति ज्ञान्तय इति ज्ञानरत्नावरयाम् ॥ चतुःषष्टिपदं वास्तु देवानां परमं हितम् । एकाज्ञीति पदं वास्तु ग्रहाणान्तु मकीत्यते ॥ प्रपञ्चसारे, कृत्वाऽवनि समतलां चतुरस्र-संख्यामष्टादिकोष्टकपदां च हि कोणसूत्राम् ॥ तस्यां चतुष्पद-समन्वितमध्यकोष्ठे ब्रह्मा तु साधकवरेण समर्चनीय इसादि । अत्र प्रयोगः । मण्डपनिर्ऋतिभागे हस्तमात्रां वेदि कृत्वा तस्यां तत्स्थापिते वस्त्रे वा सुवर्णादिज्ञलाकया नव रेखाः माक्पश्चिमाय-

ता. नव च दक्षिणोदगायताः कृत्वा मध्यकोष्ठचतुष्ट्रयमेकीकृत प्रति-कोणं त्रिषु त्रिषु पदेषु सूत्रं दद्यात । तथाच चतुर्विशतिरर्द्ध-पदानि संपद्यन्ते। अथ कालादि सङ्कीर्स पारीप्सितस्यामुककर्मणः साङ्गतासिद्धार्थं वास्तुपूजां करिष्य इति सङ्कल्प्य वास्तुमण्डल-स्याग्नेयादिकोणेषु बङ्कचतुष्टयम् । विशन्तु भृतले नागा लोक-पालाश्च सर्वतः । मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्वेलकराः सदेति मन्त्रेण निधाय । अग्निभ्योऽप्यथ सर्वेभ्यो ये चान्ये तान समाश्रिताः । तेश्यो बर्लि पयच्छामि पुण्यमोदनसंयुतम् ॥ नैर्ऋसाधिपतिश्चेत नैर्ऋयां ये च राक्षसाः। बिंह तेभ्यः पयच्छामि सर्वे गृह्वन्त मन्त्रि-तम् । ॐ नमो वायुरक्षेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः । बल्लिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम्॥ रुद्गेभ्यश्चेत्र सर्पेभ्यो ये चा-Sन्ये तान् समाश्रिताः । बार्छे तेभ्यः मयच्छामि गृह्वन्तु सत्ताेत्सु-का इति मन्त्रैः शङ्कपार्क्ने यथाक्रमं माषभक्तवळीन दत्वा।शान्ति-र्वशोवती कान्तिर्विशाला प्राणवाहिनी सती समना नन्दा सुभद्रा इति नव प्रागायतरेखादेवताः पूजियत्वा, हिरण्या सुप्रभा छक्ष्मी-र्विभूतिर्विपछा निया जया काछा विशोका इति नव दक्षिणोत्त-रायतरेखादेवताश्च संपूज्य मध्ये समस्तव्याहृतिभिर्वास्तुपुरुषम् आवाह्य, वास्तोष्पते इति मन्त्रेण संपृत्य बार्छ च दत्वा मध्य-पदचतुष्ट्रये वास्तोर्हृदये ब्रह्माणमावाह्य पूजियत्वा, ॐ ब्रह्मणे नमो बिंछ समर्पयामीति पायसादिबिंछ दद्यात ॥

ततः पूर्वपदद्वये दक्षिणस्तने अर्थम्णे नमः । दक्षिणपदद्वये जठर-दक्षिणभागे विवस्वते,पश्चिमपदद्वये जठरवामभागे मित्राय, उदक्-पदद्वये वामस्तने पृथ्वीधराय नम इत्युदक्पदद्वये आग्नेयकोण-स्त्रबद्विपाक्ततपदोत्तरार्व्हे दक्षिणहस्ते सावित्राय, दक्षिणार्द्धे स-वित्रे वा।एवं नैर्क्डसपदपूर्वार्द्धे द्वणयोविंबुधाधिपाय, तत्पश्चिमा-

ऽर्हें मेट्टे जयन्ताय, वायन्यपदद्वयदक्षिणार्ह्ने वामहस्ते राजयक्ष्म-णे । उत्तरार्द्धे हदाय च । ईशानपदार्द्धे उरित अद्भ्यः, दक्षि-णार्द्धे मुखे आपवत्साय । ततोऽन्त्यपङ्क्तिगते ईशानपददक्षिणार्द्धे शिर्मि शिखिने । तद्दक्षिणसार्द्धपदे दक्षिणनेत्रे पर्जन्याय । त-इक्षिणपद्योदिक्षिणश्रोत्रे जयन्ताय । दक्षिणपद्योदिक्षिणांसे कुलिशायुत्राय । तद्दक्षिणयोर्दक्षिणवाही सूर्याय।तद्दक्षिणयोर्दक्षिण-बाहाचेव सत्याय । तद्दक्षिणे सार्द्धे दक्षिणकुःकूर्पणे भृशाय । तद्दक्षिणपदार्द्धे दक्षिणप्रवाहौ आकाशाय । तत्पश्चिमार्द्धे दक्षिण-भवाहावेव वायवे । तत्पश्चिमे सार्द्धे दक्षिणमणिवन्धे पूष्णे । तत्प-श्चिमयोदिक्षिणपार्के वितथाय । पश्चिमयोदिक्षिणपार्के एव गृहक्ष-ताय । तत्पश्चिमयोर्देक्षिणोरौ यमाय । तत्पश्चिमयोर्देक्षिणजानौ गन्धर्वाय । तत्पश्चिमे सार्द्धे पदे दक्षिणजङ्घायां भृङ्गराजाय । तत्पश्चिमे नैर्ऋसपदार्द्धे दक्षिणस्फिजि मृगाय । तदुत्तरार्द्धे पाद-योः पितृभ्यः । तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिनि दौवारिकाय । तदु-त्तरयोर्वामजङ्घायां सुग्रीवाय । तद्त्तरयोर्वामजानौ पुष्पदन्ताय । तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय । तदुत्तरयोर्वामपार्क्वे सुराय । तदुत्तरे सार्द्धपदे वामपार्क्व एव शोषाय । तदुत्तरे वायव्यार्द्धे वामपणि-बन्धे पापाय । तत्प्रागर्द्धे वामपवाहौ रोगाय । तत्प्राक्सार्द्धे वाम-भवाहावेवाहये । तत्पाग्द्रये वामवाही भरलाटाय । तत्पाग्द्रये वामवाहावेव सोमाय । तत्पाग्द्वये वामांसे सर्पाय । तत्पाकसार्द्धे वामश्रोत्रे अदिसै । तत्पागर्दे वामनेत्रे दिसै । तदुत्तरे, वास्तोष्पत इति वास्तोष्पतिम् ॥ ततो मण्डलाद् बहिरीशानादिषु चरक्यै, वि-दार्थे, पूतनाये, पापराक्षस्ये । ततः पूर्वादिषु स्कन्दाय, अर्थम्णे, जम्भकाय, पिछिपिच्छाय । पुनः पूर्वादिषु इन्द्रादीन । ततो-मण्डलादीशाने कलशं संस्थाप्य, तत्र वरुणं, तत्त्वा यामीत्यावाह्य पूजयेत् । यथा मेहागिरेः शृङ्कं देवानामालयः सदा * तथा व्रह्मादिदेवानां मम यहे स्थिरो भवेदिति मार्थयेत्।तत उदुम्बरा-दिसिमित्तिलाज्येः स्वतन्त्रस्थाण्डलेऽप्टार्विकातिरष्टौ वा मत्येकं तत्तनाममन्त्रेर्द्धत्वा वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च हुत्वा, ॐ वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च हुत्वा, ॐ वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च हुत्वा, ॐ वास्तोष्पत च पञ्च विल्वफलानि हुत्वा स्विष्टकृदा-दिपूर्णाहुत्यन्तं कुर्पात् । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसवालि दत्वा कृष्णुष्वपाज इति सक्तादिना मण्डपं त्रिस्चण्या वेष्ट्यित्वा वास्तु-कलक्षोदकेन यजमानमभिषिच्य पुनः सम्पूज्य यथाशिक्त दिक्षणां दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति ॥ शारदातिलक्षे तु होमो नोक्तः । तिलाज्यादिद्वन्याणां विकल्प इति ग्रन्थान्तरे ॥ इति वास्तुपूजा॥

मात्स्ये । उपोषितास्ततः सर्वे क्रःवैवमधिवासनिमिति । पाग्ने, उपवासो भवेदेवमशक्तौ नक्तिमिष्यते । सद्योऽधिवासने बाऽय कुर्याद्यो विकलो नर इति ॥ तत्रैवोक्तम् अधिवासनं चैवम् । ग्रक्तवे सपत्नीकः सक्तत्विकतो यज्ञमानः पूर्णकल्यां ग्रहीत्वा, भद्रं कर्णोभिरिसादिमन्त्रयोषेण मण्डपं मद्त्रिणीक्तस्य पश्चिमद्वारेण मण्डपं मद्त्रिणीक्तस्य पश्चिमद्वारेण मण्डपदेव-तास्थापनादि करिष्य इति सङ्कल्प्य गणपति सम्पृज्य मण्डपा-ऽन्तः सर्वतः सर्पपान् विकिरेत् । तत्र मन्त्राः। यदत्र संस्थितं मृतं स्थानमाश्रित्य सर्वतः । स्थानं त्यक्तवा त्य तत्तः पत्रसर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥ अपकामन्तु मृतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् । सर्वेषा-मविरोधेन ब्रह्मकर्ष समारभ इति ॥ ततः कुशैः पञ्चगच्येन सर्वत्र आपोहिष्ठति तृचेन मोक्षयेत् । ततः, स्वित्ति न इति मन्त्रं पठेत् ॥

अथ द्वारपूजा । पूर्वद्वारे द्वारिश्रये नमः कर्ध्व देहल्ये अधः। वामदक्षिणसम्भयोर्गणशाय स्कन्दाय नमः । द्वारस्थितकछशद्देषे गङ्गाये यमुनाये।दक्षिणद्वारे द्वारिश्रये कर्ध्व देहल्ये अधः।स्तम्भुयोः षुष्पदन्ताय । कपहिंने । कलराद्वये गोदामै कृष्णायै । पश्चिमे द्वारिश्रये इत्यूर्धम । देहरुये अधः । स्तम्भयोः नन्दिने चण्डाय । कलराद्वये देवाये ताष्ये । उत्तरे द्वारिश्रये ऊर्ध्वम् । देहरुये अधः । स्तम्भयोर्भहाकालाय मृङ्गिणे नमः । कलराद्वये वाण्ये वेण्ये ॥ इति द्वारपूजा ॥

ततो बहिईस्तमात्रे बटतोरणमाद्यस्यं वा सुदृढनामकं सुद्यो-भननामकं वा शङ्खाङ्कितमात्रिमीळ इति मन्त्रेण न्यस्य सम्पूच्य राहुबृहस्पती तत्र न्यसेत् सम्पूजयेच्च । तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र, मही द्यारिति भूमिनार्थना। ओषधयः समिति यवप्रक्षेपः । आजित्र कलकोष्विति कलकानिधानम् । इमं मे गङ्ग इति जलपूर-णमः । गन्बद्वारामिति गन्धं प्रक्षिपेतः । या ओषधीरिति सर्वीषधीः । काण्डात् काण्डादिति दुर्वाः। अश्वत्थे व इति पञ्चपछ्ठवान्।स्योना पृथिवीति सप्त मृदः । याः फालिनीरिति फलम् । स हि रवानि इति रत्नम । हिरण्यरूप इति हिरण्यम । युवा सुवासा इति वस्ता-दिना वेष्ट्रयेत । पूर्णा द्वीति धान्यपूर्णपात्रमुपरि निद्ध्यात । तत्र ध्रवावाहनं पूजनम् । ततो दक्षिणे औदुम्बरं छाक्षं वा सुभद्रे विकटं वा चक्राङ्कितं तोरणम्, इपे त्वोर्ज्जे त्वेति निधाय चन्दना-दिचर्चितं कृत्वा सूर्यम् अङ्गारकं च तत्र म्यसेद । ततः पूर्ववद कल्कां स्थापयित्वा तत्र धरामावाह्यार्चयेत् । ततः पश्चिमे प्राक्षमौ-दुम्बरं वा सुकर्मसु भीमं वा गदाङ्कितं तोरणम, अग्न आयाहीति न्यस्य चन्दनादिना चर्चितं शक्तं बुधं च तत्र न्युसेद । ततः पूर्व-वतः कलशं स्थापयित्वा तत्र वाक्पत्यावाहनपूजनादि । तत उत्तरे नैयग्रे।धमाक्वत्यं पालावां वा सुहोत्रं सुप्रभवपद्याङ्कितं तोरणं वान्नो देवीरिति निधाय पूजितं कृत्वा सोमं केतुं शनि च तत्र न्यसेत् । ततः कल्कां स्थापयित्वा तत्र विश्लेशावाहनपूजनादि । ततः पूर्वन

द्वारे द्वारशासाद्वये कलशद्वयं दध्यक्षतादियुक्तं पूर्ववतः स्थापयै-त । ऐरावतं कलशद्वये न्यस्यार्चयेत । तत्र पूर्वस्मिन ऋग्वेदिनाः द्यतिजी द्वावेकं वा शान्तिसुक्तजपार्थत्वेन स्वामहं दण इति मसेकम् । ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः । अत्रिगोत्रस्तु विवेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुविति द्वाऽधिमीळ इसादिना पूजय-च । ततः, एहाहि सर्वाऽमरसिद्धसाध्येराभष्टुतो वज्रधराऽमरेश ***** संबीज्यमानोऽप्तरसां गणेन रक्षाऽध्वरं नो भगवन नमस्ते ॥ भो इन्द्र, इहाऽऽगच्छेह तिष्ठेतीन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्ति-कं द्वारकलशे आवाह्य, त्रातार्गिन्द्रमिति पूजियत्वा, आधः शिशान इति मन्त्रेण तां पताकां ध्वजं च समुच्छ्येत । तत पेरावतस्थं पीतवर्णं सहस्राक्षं दक्षिणवामहस्तस्थवज्ञोत्पलमिन्दं ध्यात्वा, इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः अ शतपत्ना-Sिषपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः, इति नत्वा, इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुवाय सर्वाक्तिकायैतं माषभक्तविंछ समर्पयामीति बार्छ दद्यात । तत आचम्याग्नेयकोणे गत्त्रा पूर्ववत कल्ठंशं स्था-पित्वा तत्र पुण्डरीकममृतं च संपूज्य, एहाहि सर्वाऽमरहव्यवाह सुनिषवर्धैरभितोऽभिजुष्ट * तेजीवता लोकगणेन सार्द्ध मगाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥ भो अग्ने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिकमधि कलको आवाहा, त्वं नो अग्ने इत्यप्तिं संपूज्य, अग्निं दूर्तमिति रक्तां पताकां रक्तं ध्वजं चोच्छ्येत् । ततः, छामस्यं रक्तं दक्षिणवाम-कर्ष्ट्रतशक्तिकमण्डलुं यज्ञापवीतिनमर्गिन ध्यात्वा । आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽन्ययः । धूमकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै निसं नमो नम इति नत्वा, अग्नये साङ्गायेत्यादि एतं माषभक्तवार्छ समर्पयामीति बर्छि दद्याद् । ततः कृताचमनो दक्षिणे गत्त्रा प्रति-द्वारकाखं पूर्वत्रत कलशद्वयं स्थापयित्वा वामनं दिगाजं तत्रार्चये-

त । ततो यजुर्वेदिनौ द्वावेकं वा दक्षिणद्वारे बान्तिसुक्तजपत्वेन त्वां ष्टण इत्युक्ता कतराक्षो यजुर्वेदस्त्रेष्ट्रमो विष्णुदैवतः । काश्यपेय-स्तु विमेन्द्रः ऋत्विक् त्वं मं मखे भवेति मत्येकं संपार्थ्य, इषे त्वोर्ज्ञो त्वेति पूजपेतं । ततः, पृक्षेति वैवस्वत धर्मराज सर्वाऽमरै-र्चित धर्ममूर्ते * श्रभाश्रभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते । भो यमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादि यममावाह्य, यमाय सोमिमिति संपूज्य कुष्णां पताकां कृष्णं ध्वजं चायं गौरित्यु-च्छ्रयेत । ततो महिषाक्ढं धृतदण्डपाश्चदक्षिणवामकरमञ्जनपर्वत-तुल्यक्षपंमियसमलोचनं यमं ध्यात्वा, महामहिषमाक्षढं दण्डहस्तं महाबल्छम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं मतिग्रह्णतामिति नत्वा, साङ्गाय यमायेतं माषभक्तवछि समर्पयामीति वर्छि दद्यात् । तत आचम्य नैर्ऋखां पूर्ववर्व कलशं स्थापियता कुमुदगजं दुर्जयं च सम्पूज्य, प्हाहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः * मपाध्वरं पाहि पिशाचनाथ छोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥ भो नि-र्ऋते इहागच्छेह तिष्ठोते साङ्गमावाह्य, असुन्वन्तमिति सम्पृज्य नीलां पताकां ध्वजं च, मोषुण इत्युच्छ्यि, नराइढं खड्गइसं नीलवर्ण महाबलम् महाकायं बहुराक्षसयुतं निर्ऋति ध्यात्वा निर्ऋति खड्गहस्तं च सर्वछोकैकपावनम्।आवाहपामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं मतिपृद्धतामिति नत्वा, साङ्गाय निर्ऋतये एतं माषभक्त-बिंछ समर्पपामीति बिंछ दद्यात् । तत आचम्य पश्चिमे प्रतिद्वार-शाखं कलशद्वयं निधायाञ्जनदिग्गजं न्यस्यार्चयेव । ततः सामगा-वृत्विजी ऋत्विजं वा दत्वा, सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक-दैवतः । भारद्वाजस्तुविषेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुर्विति पार्थियत्वा, आवाहीति प्रार्थ्य। ततः, पृह्योद्दे याद्योगणत्रारिधीनां गणेन पर्जन्य-सहाप्तरोभिः * विद्याधरेन्द्राऽपरगीयमान पाहि वमस्मात् भगवन्नमस्ते॥इत्युक्त्वा भो वरुण इद्दागच्छेद तिष्ठेति साङ्गं वरुण-मावाहा, त त्वा यामीति सम्पूज्य क्वेतां पताकां ध्वजं च, इमं मे वरुणेत्युच्छिस, मकरस्थं पाशहस्तं किरीटिनं क्वेतवर्णं वरुणं ध्यात्वा । पाश्चहस्तं च वरूणं यादसां पतिमीक्वरमः । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन वरुणाय नमी नम इति नत्वा, साङ्गाय वरुणायैतं माषभक्तविष्ठं समर्पयामीति विष्ठं दद्यात्। तत उपस्पृश्य वायव्यां पूर्ववत कळशं स्थापित्वा पुष्पदन्तं सिद्धार्थं च तत्र पूजिय-त्वा, एहोहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूदः सह सिद्धसंघैः * प्राणाधिपः काळकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवनपरते ॥ भो वायो इहाऽऽगच्छेह तिष्ठेति साङ्गादि वायुमावाह्य, तव वायदतस्य त इति सम्प्रच्य, बायोः शतमिति धुम्रां पताकां ध्वनं चोच्छित, मृगारूढं चित्राम्बरधरं युवानं वरध्वजधरवामहस्तं वायुं ध्यात्वा, बायुमाप जगतो वायवहं नमामि त इति नत्वा सङ्गाय वायवे एतं माषभक्तवर्छि समर्पयामीति वर्छि दद्यात्।तत आचम्योत्तरे मति-शाखं कलशद्वयं स्थापित्वा सार्वभौमं दिग्गजं न्यस्य पूजियत्वा अथर्वविदौ ऋत्विजौ ऋत्विजं वा उत्तरद्वारे शान्तिसुक्तजपा-Sर्थन्वेनाईत्वेनाऽई त्वां हण इति उक्तवा,बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुषुभो रुद्रदैवतः । वैशम्पायन विषेन्द्र शान्तिपाउं मखे कुर्वित्युक्त्वा प्रार्थ्य, शन्त्रो देवीरिति पूजयेत्। पृह्योहि यह्नेश्वर यह्नरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् * सर्वोषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥भोः सोम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गार्दि सोममावाह्य, वयं सोमेति सम्पूज्य इरितां पताकां ध्वजं चाप्यायस्वेति न्यस्य, नरयुतपुष्पकविमानस्थं कुण्डलकेयूरहारसंशोभितं वरदगदाघर-दक्षिणवामहस्तं मुकुटिनं महोदरं स्थूछकायं हस्त्रं पिङ्गछनेत्रं पीत-विग्रहं शिवसखं विमानस्थं क्ववेरं ध्यात्वा, सर्वनश्चत्रमध्ये द्व

सोमो राजा व्यवस्थितः । तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नम इति नत्वा, साङ्गाय सोमायैतं माषमक्तविक समर्पयाभीति बिक्र दद्यातः । तत ईशान्यां गत्वाऽऽचम्य पूर्ववतः कलशं संस्थाप्य सन मतीकनामानं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र पूजियत्वा, एहोहि विश्वेश्वर नास्त्रश्चकपालसङ्घाऽङ्गधरेण सार्द्धम् क्ष्वोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्धी पृहाण पूजां भगवन नमस्ते ॥ ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति तमाबाह्य. तमीशानमिति सम्पूज्य, ब्वेतां सर्ववर्णा वा पताकां ध्वजं च, अभि त्वा देव सवितारित्युच्छिय, दृषारूढं वरदत्रिशुलयुतदक्षिण-बामहस्तद्वयं त्रिनेत्रं शुद्धस्फटिकवर्णमीशानं ध्यात्वा, दृषस्कन्ध-समारूढं शुलहस्तं त्रिलोचनम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पुजेयं मतिगृह्यताम्। सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्क ईश्वरः। शुलपाणि-र्विक्पाक्षस्तस्मे नित्यं नमो नमो इति नत्वा साङ्गायैतं मापभक्त-बिछ समर्पयामीति बिछ दद्यात । तत आचम्येशानपूर्वयोर्मध्ये गत्त्रा, एहोहि पातालधराऽमरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान अ यक्षोरगेन्द्रामरलोकसंघैरनन्त रक्षाध्वरमस्मद्यम् ॥ भो अनन्त इहा-SSगच्छेह तिष्ठेति साङ्गमनन्तमावाह्य, गौरिति सम्पूज्य, मेघवणी श्वेतां पताकां ध्वजं चाऽयं गौरित्युच्छिस, अनन्तं शमनासीनं फणसप्तकमण्डितम पद्मशङ्खधरोध्वीधोदक्षिणकरद्वयं चक्रगदा-भ्ररोध्वीभोवामकरद्वयं नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा योऽसावनन्तक्र्पेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् । पुष्पबद्धारयेन्मूर्श्चितस्मै निसं नमो नम हाते नत्वा, साङ्गायाऽनन्तायैतं माषभक्तवछि समर्पयामीति बर्छि दद्यात ॥ तत आचम्य नैर्ऋतपश्चिमयोर्मध्ये गत्वा, एहोहि सर्वा-ऽधिपते सुरेन्द्रलोकेन सार्द्ध पितृदेवताभिः । सर्वस्य घातास्यऽमित-प्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥ भो ब्रह्मान्निहागच्छेह ति-ष्ट्रेति ब्रह्माणमावाहा, ब्रह्मजङ्गानमिति सम्पूच्य, रक्तां पताकां ध्वजं च, ब्रह्मजङ्गानमित्युच्छिस चतुर्भुखं इंसारूदम अक्षमालाकुत-मुष्टियरोध्वीधोदाक्षणकरद्वयम् स्तुत्रकमण्डल्लघरोध्वीधोवामकर-द्वयं अमश्रुलं जीटलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा, पद्म-योनिश्चतुर्मृतिर्वेदाकासः पितामहः। यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्रस्तस्यै निसं नमो नम इति नत्वा, साङ्गाय ब्रह्मणे एतं माषभक्तविं समर्पवामी-ति बिंछ दद्यात्। नैर्ऋसपश्चिमान्तराले अनन्तबलिदानम्, ईशान-पूर्वान्तराले ब्रह्मबलिदानं वेति रूपनारायणः । तत आचम्य मण्डपमध्ये ऽत्युचदण्डो दशहस्तदीर्घस्तिहस्तित्रस्तृतः पश्चहस्तदीर्घो हस्तविस्तारो वा महाध्वजः किङ्किण्यादियुक्त, इन्द्रस्य टब्ण इति स्याप्यः। तत्रेव ब्रह्मपूजनं च । ततो मण्डपवोडशस्त्रम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः, पृष्ठे पन्नगेभ्यो नम इस-Sचेंथेत् । ततः पूर्वभागे उपलिप्तभूगावुपविषय, त्रेलोक्ये यानि भू-तानि स्थावराणि चराणि च * ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्ध रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपत्रगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च । सर्वे ममाऽध्वरं रक्षां प्रकुर्वन्त मुदान्विताः ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपाछो गणैः सह । रक्षन्त्र मण्डपं सर्वे घन्तु रक्षांसि सर्वत इति पठित्वा, त्रैलोक्यस्थम्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्रैलोक्पस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ब्रह्मणे विष्णवे शिवाय देवेश्यो दानवेश्यो गन्धर्वेश्यो राक्षसेश्यः पन्नगेभ्य ऋषिभ्यो मनुष्येभ्यो गोभ्यो देवमानुभ्यो नम इति म-सेकं सम्पूज्य भूमी माषभक्तविं दद्यात्। ततो यजमानः सर्वे-र्ऋत्विग्भिः सह पाग्द्वारेण मण्डपं पविश्व दक्षिणद्वारपश्चिमभागे खपविश्य गुर्वादयो यथाविहितं कर्म कुरुध्वमिति वदेत्। मतिकुण्डं एकैकः कछशः स्थाप्यो ऋत्विग्मिरिति केचित । गुरुणा स्थाप्य इत्यन्ये ॥

ततो गुरुर्यजमानान्वितो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलदेवताः स्थापयोदिति पितामहचरणाः ॥ यथा, अग्रेहेसादि, मण्डलदेवता-स्थापनं करिष्य इति सङ्कल्प्य स्थापयेत्। तत्र मध्ये ब्रह्माणं, ब्रह्मजङ्गानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् । ब्रह्मस्थापने पूजने विनियोगः । एवमुत्तरत्र । ब्रह्मजङ्गानम् । तत उदीचीमारभ्य बायबीपर्यन्तं क्रवेरादीत बाय्वन्तान् अष्टी लोकपालान् । तत्र, आप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री। ॐम् आप्यायस्व। अभि त्वा-**डजीगर्त्तः श्रनःशेप ईशानो जगती। अभि त्वा देव सवितः।** इन्द्रं वो मधुछन्दा इन्द्रो गायत्री । ॐमू इन्द्रं वो विश्वतः । अग्नि काण्यो मेघातिथिरियरियाियत्री । ॐम् अप्तिं दृतं दृणीमहे । यमाय सोमं यमोऽनुष्टुप् । यमाय सोमम् । मोषुणो घोरः काण्वो नि-र्ऋतिर्गायत्री । ॐ मोषुणः । त त्वा यामि शुनःशेषो वरुणिखः-ष्दुप् । त त्वा यामि । वायोः शतं गौतमो वामदेवो वायुरतुष्टुप् । वायो शतम् । वायुसोममध्येऽष्टौ वसून् । ज्यया अत्र मैत्रावरुणो विसिष्ठी वसविद्धिष्दुप् । ज्यया अत्र । सोमेशानमध्ये एकादश रुद्रान्। आ रुद्रासः श्वावाश्व एकादश रुद्रा जगती । अँम आरु-द्रासः । ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादिखान् । त्यान्तु सामदो मत्स्यो द्वादशादित्या गायत्री । ॐत्यान्तु क्षत्रियान् । इन्द्राग्निमध्ये अश्विनौ, आक्वना राहुगणो गौतमोऽक्विनाबुष्णिक् ।ॐम् आक्विना-वर्तिः। अग्नियममध्ये विक्तेदेवान् सपैतृकान् । ॐमासो मधुच्छन्दा विद्वेदेवा गायत्री । ॐमासः ॥ यमनिर्ऋतिमध्ये सप्त यक्षान् । अभिसं वामदेवः सप्तपक्षाः प्रकृतिः ।अभिसं देवं सवितारमोण्योः कावेकतुमर्चामि सत्यसवर स्वाधामभिमियं मति कावेम । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा आदिद्युतत् सत्रीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतः कृपाद्यः । निर्ऋतिवरूणमध्ये भूतनागातः । आयं गौः सार्पराक्री

सर्पा गायत्री । आयं गौः । वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः। अप्सरसामैतश ऋष्यश्रङ्को गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्द्रप्।अप्सरसां गन्ध-र्वाणाम् । ब्रह्मसोममध्ये स्कन्दनन्दीः व्यरशूलमहाकालान् । कुमारं क्रुपारः स्कन्दिख्डिप् । अदितिश्चनिष्ट । ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गी विष्णुं च । तामग्रिवणीं सौभारिर्दुर्गा त्रिष्टुप्।उदीरताम् ।सूनृताः। ब्रह्मयममध्ये मृत्युरोगान् । परं मृत्योः सङ्कुमुको मृत्युरोगा-स्निष्टुप् । ॐ परं मृत्यो अनुपरेहि । ब्रह्मानिर्ऋतिमध्ये गणपतिम् । गणानां त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती । ॐ गणानां त्वा । ब्रह्म-वरुणमध्ये अपः। शक्तोऽम्बरीषसिन्धुद्रीप आपो गायत्री। ॐ शक्तो देवी: । ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः। मरुती यस्य राह्मणी गीतमी मरुती गायत्री । ॐ मरुतो यस्य । ब्रह्मणः पादमुले कार्णकाधः पृथ्वी-म् । स्योना मेघातिथिर्भूमिर्गायत्री । ॐ स्योना पृथिवि । तत्रैव गङ्गादिनद्यः । इमं मे सिन्धुक्षित् मैयमेघो गङ्गायमुनासरस्वत्यो जगती । इमं मे गङ्गे यमुने । तत्रैव सप्त सागरानः । धाम्नो धाम्नो राजिन्ततो वरूण नो सुञ्च । यदापो अध्न्या इति वरुणेति शपा-महे ततो वरुण नो मुख । मयि वायो मोषधीहिंसीरतो विश्वधा भूस्त्वेतो वरुण नो मुखा तद्परि मेर्ह नाम्ता । बाह्ये सोमादिस-मीवे क्रमेणायुवानि । गदां त्रिशुछं वज्रं वाक्तिं दण्डं खड्गं पा-क्षाप् । अङ्कुदाम् । तद्वाह्ये उत्तरादितः । गौतमं भरद्वाजं विश्वामित्रं कद्यपं जमद्धिं वसिष्ठम् । अत्रिम् । अरुन्धतीम् । तद्वाह्ये पूर्वा-दि ऐन्द्रीं कौमारीं ब्राह्मीं वाराहीं चामुण्डां वैष्णवीं माहेश्वरीं विनायकीम् । इसष्टी शक्तयः । एताः मतिष्ठाप्य मत्येकं सह वा पूजयेतः । ततस्तस्यामेव वेद्यां वस्त्रशिखतवक्ष्यमाणमण्डलेषु आदिसादिदेवताः स्थापयेव पूजयेच । अस्मिन कर्माण प्रहादि-स्थापनं पूजनं च करिष्ये इति सङ्कल्प्य प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः।

परमात्माऽग्निदेंवता । देवी गायत्री छन्दः । व्याहृतीनां क्रमेण जमदग्निभरद्राजभृगव ऋषयः । अग्निवायुसूर्या देवताः । दैवी गायत्री दैवी उष्णिक दैवीवृहसञ्खन्दांसि सूर्याद्यावाहने विनि-योगः । केचित्तत्तन्मन्त्रानप्यावाहने आहुः । तत्र ग्रहपीठमध्ये वर्त्तुले पाङ्मुखं सूर्यं रक्तपुष्पाक्षतैः आकृष्णेन हिर्ण्यस्तृपः स-विता त्रिष्टुप् । सूर्यावाहने विनियोगः। ॐप आकृष्णेन रजसा । ॐ भूर्भुवः स्वः कछिङ्गदेशोद्भव काश्यपगोत्र सूर्य इहागच्छेह तिष्ठेसावाह्य, इह तिष्ठेति स्थापयेत । एवं सर्वत्र मन्त्रान्ते व्याहृती-रुक्ता, इहागच्छेह तिष्ठेति स्थापयेत । तत आग्नेये चतुरस्ने प्रस-ङ्मुखं सोमं श्वेतपुष्पाक्षतैः । आप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री । यमुनातीरोद्धव आत्रयगीत्रं सोम । ततो दक्षिणे त्रिकोणे दक्षि-णामुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः । अन्निर्मूर्द्धा विरूपोऽङ्गारको गाय-त्री । अग्नि । अवन्तीसमुद्धव भारद्राजगोत्र भौम । तत ईशाने बाणाकारे बुधमुदङ्मुखं पीतपुष्पाक्षतैः, उद्दुद्ध्यध्वं बुधः सौम्यो बुधिस्त्रष्टुष् । मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र बुध । तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे उदङ्गुखं बृहस्पति पीतपुष्पाक्षतैः बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिास्त्रिष्टुप् । सिन्धुदेशोद्भवं आङ्गिरसगोत्र बृहस्पते । ततः पूर्वे पञ्चकोणे पाङ्मुखं धक्रं धक्रपुष्पाक्षतैः । धक्रः पारावारो द्विपदा निराट् । भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्र । ततः पश्चिमे धनुषि पसङ्मुखं शनि कृष्णपुष्पाक्षतः शमग्निरिरिविटिः शनि-हाल्पक । सौराष्ट्रज काञ्यपसगोत्र शनैश्वर । ततो नैर्ऋसे शूर्पा-कारे दक्षिणामुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः । कया नो वामदेवो राहु-र्गापत्री । राह्वावाहने । राठिनापुरोद्धव पैठीनसिगोत्र राहो । ततो वायन्ये ध्वजाकारे दक्षिणामुखं केतुं धूम्रपुष्पाक्षतेः केतुं मधुन्छन्दाः केतवो गापत्री । अन्तर्वेदिसमुद्भव जैमिनिसगोत्र केतो । सर्वे वा आदियाभिमुखाः ॥ अथाऽधिदेवताः । व्वेत-पुष्पाक्षतैः क्रमात सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः। ज्यम्बकं वासिष्ठो रुद्रोऽनुष्ट्यू । विनियोगः सर्वत्र क्षेयः । ॐ व्यम्बकम्।ॐ पूर्भुवः स्वः ईश्वरः गौरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती । सोमदक्षिणे । यदक्रन्दो दीर्घतमा स्कन्दिख्रिष्टुप् । विष्णोदीर्घतमा विष्णुक्षिष्टु-प्। ब्रह्मज्ञानं गौतमो वापदेवो ब्रह्मा विष्टुप्। इन्द्रं वा पधु-च्छन्दा इन्द्रो गायत्री । यगाय सोमं यमो यमोऽनुष्द्रप् । मोपुणो घोरः काण्यः कालो गायत्री । उषोवाजं स्कर्णाश्चनगुप्तो बृहती? एत्रेव रहाज्याक्षतेर्प्रहाणां वामतो मन्त्रान्ते व्याहृतीरुचार्य इहा-ऽऽगच्छेह तिष्ठेति चोक्का मसधिदेवताः स्थापयेत । अप्नि काण्वो मेवातिथिरियर्गायत्री । ॐम अप्निं द्तम् । अप्सुमे मेघातिथि एपो-Sनुष्टुप् । स्योना मेघातिथिर्मूमिर्गायत्री । इदं विष्णुर्मेघातिथि-विष्णुर्गायबी। इन्द्रश्रेष्टानि ग्रन्समद इन्द्रस्त्रिष्टुप् । इन्द्राणीं हषा-कपिरिन्द्राणी पङ्क्तिः।प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिश्चिष्ट्रप् । आयं गौः सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री । ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्दुष् । ततः शुक्कपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पश्च । गणानां त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती । राहोरुत्तरतो विनायकम् । जातवेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् । शनेरुत्तरतो दुर्गातव वायन्यश्च आङ्गिरसो वायुर्गायत्री । रवेहत्तरतो वायुप्। एतान् मन्त्रान् पठन्ति सांपदा-यिकाः । तत्र केषुचिन्मन्त्रेषु मूळं चिन्त्यम् । आदित्प्रत्रस्य वत्स आकाशो गायत्री । राहोर्दक्षिणे आकाशम । एवा उवा प्रस्कण्यो-ऽिवनौ गायत्री । अदिवनाविहागच्छतमिह तिष्ठतमिति केतो-र्दक्षिणेऽश्विनौ । एतानि विनायकादिस्थानानि चिन्तामणौ । विनायकादीन् पश्च उत्तरत एवेति संपदायः।इति द्वात्रिंशहेवता इति इपनारायणाद्यः । हेमाद्रौ तु लोकपालादीनामपि सूर्पाऽभि-

मुखानां दिश्व स्थापनमुक्तम् । तद्यथा । इन्द्रं विक्वाजेता माधु-च्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप्। इन्द्र इहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रमेवमुत्तरत्र। अग्नि काण्त्रो मेघातिथिरश्निर्गायत्री । यमाय सोमं यमो यमो-Sनुष्टुप् । मोषुणो घोरः काण्वो निर्ऋतिर्गायत्री । त्वं नो अग्ने नामदेवो नरुणिख्रब्दुप् । तव वायो व्यक्तो वायुर्गायत्री । सोमो धेनुं गौतमः सोमिस्त्रष्टुप् । तमीशानं गौतम ईशानो जगती । सहस्रशीर्षा नारायणोऽनन्तोऽनुष्टुप् । ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम् । ॐ ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् । नैर्ऋत्यपश्चिमयो-र्मध्ये ब्रह्माणम् । अथ वस्वाद्येकादशदेवताः । ज्मया अत्र मैत्रा-वरुणो वसिष्ठो वसविश्वब्दुण् । इन्द्राग्निमध्ये । ध्रुवाऽध्वरसोमावनि-ळानळप्रत्यूषप्रभासाख्यानष्टी वसून् । त्यान्तु सामदो मत्स्यो द्वादशादिसा गायत्री । इन्द्रेशानमध्ये । धात्रर्यमीमत्रवरुणांशभर्गेन्द्र-विवस्त्रत्पूषपर्ज्ञन्यत्वष्ट्रजघन्याजघन्ययविष्ठाख्यान द्वादशादिसान् । आरुद्रासः क्यावाक्त्र एकादश रुद्रा जगती । अन्नियममध्ये। बीर-भद्रशम्भ्रमहाशयायुतगिरिशाऽजैकपादहिर्बुध्न्याऽपराजितपिनाकि-भुवनाधीक्वरविद्पतिकपालिस्थाभगवद्भगाख्यान् एकाद्वा रुद्रान्। गौरीर्मिमाय दीर्घतमा गौर्यादयो जगती।गौरीपद्मावाचीमेघासावित्री-विजयाजयादेवसेनास्वधास्त्राहामातृळोकमातृष्टृतिपुष्टितुष्ट्यात्मकुळ-देवतारूयाः षोडशमातृः। निर्ऋतिवरूणमध्ये गणपति, गणानां स्वा युत्समदो गणपतिर्जगती।मरुतोयस्यराहूगणोगौतमो मरुतो गायत्री। वासुसोममध्ये, आवहमबहोद्वहसंबहविबहपराबहपरिवहानिलाख्यान् सप्त मरुतः । वेद्यामेत्र यथानकारां ब्रह्मादीन पञ्च स्थापयेदाब्रह्म-जज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मात्रिष्टुप् । इदं विष्णुर्मेघातिथिरच्यु-तो गायत्री । कदुद्वाय घोरः कण्व ईज्ञानो गायत्री । अग्निरिक्ष-विश्वामित्रोऽर्कस्त्रिष्टुप् । वनस्पते गर्गो वनस्पतिस्त्रिष्टुप् । पुदं मतिष्ठाप्य पूज्येत वोडशोपचारैः । पूजा च तत्तद्वर्णैर्मन्यपुष्य-वासोभिस्तत्तन्मन्त्रैः । एवं सूर्यादिद्वात्रिशत् दश दिक्पालान् थस्वादीनेकादश चावाह्य संस्थाप्य पञ्चिभः षोडशिभवोपचारैः सं-पूज्येत् । तत्र वस्त्वाणि ग्रहवर्णानि । रविभौमयो रक्तचन्दनम् । चन्द्रशुक्रयोः क्वेतचन्द्रनम्। बुधगुर्वोः कुङ्कमयुतम् ॥ शानिराह्केत्-नां कृष्णागुरुष । पुष्पाणि तद्वणीनि । घूपास्तु, सञ्जकीनियीसं घृताक्तपवान् रालमगुरुम् । सिह्नं बिरवयुतागुरुम् । गुग्गुलुम् । लाक्षाम् । लक्षाः । क्रमाद् गायव्या दत्त्वा, उद्दीप्यस्त्रेति सर्वेभ्यो दीपान दत्वा गुडौदनं पायसं नीवारौदनं श्लीरयुतपष्टिकौदनं दध्यो-दनं घुतौदनं तिल्पापयुतमोदनं मांसौदनं चित्रौदनं च क्रमानि-वेदयेत् । अधिदेवतादिभ्यस्त वासोगन्धपुष्पाणि क्वेतानि गुग्गु-लुर्भुपः । नैवेद्यं पायसादि यथालाभम् । सूर्यादिद्वाविश्वतामन्येषां च सर्नेपां पूजापदार्थानुसमयेनैव । ततो ग्रहवेदीशान्यां कलवां संस्थाप्य । तत्र वरूणमावाह्य संपूज्याभिमनत्रयेत । तद्यथा. कलशस्य मुखे विष्णुः कण्डे रुद्रः समाश्रितः । मुले तत्र स्थितो बह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥ कुक्षौ त सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसन्वरा ॥ ऋग्वदोऽथ यज्जवेदः सामवेदो हाथर्वणः ॥ अङ्गेश्च सहिताः सर्वे कल्कां त समाश्रिताः। अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥ आयान्तु यजमानस्य दुरितश्चयकारकाः । देव-दानवसंवादे मध्यमाने महोदधौ ॥ उत्पन्नोऽसि तदा क्रम्भ वि-धृतो विष्णुना स्वयमा त्वचोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्विय स्थि-ताः ॥ त्विय तिष्ठन्ति भूतानि त्विय प्राणाः प्रतिष्ठिताः । शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विक्वेदेवाः सपैतृकाः । त्विय तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफल-मदाः ॥ त्वत्मसादादिमं यज्ञं कर्त्तुमीहे जलोद्भव । साक्षिध्यं

कुरु मे देव प्रसन्नो भन सर्वदेति ॥ ततः फलपुष्पमालाशोभितं वितानं बृहस्पितिदैवत्यं सूर्यादिभ्य इदं न ममेति उत्सरुत्य प्रहन्वयुपिर वश्रीयात ॥ तत एको होता परो ब्रह्मेति पूर्वकुण्डे द्वौ ऋत्विजौ दक्षिणादिकुण्डेषु यथासालं होमात प्राक्तनं कर्म कुर्युः । तत्र पोडसमहादानादौ प्रामादिक्रमेण ऋग्वदादिविदितं कर्म-जलाशयोत्सर्गादौ पञ्चकुण्डीपक्षेऽप्येवम् । तत्राचार्यकुण्डं स्त्रीशान-पूर्वयोग्मंत्र्ये टत्तं चतुरस्तं ता तत्रैन नवकुण्ड्यामप्येत्रमेवाचार्यकुण्डः । तिस्पत्त विदिवकुण्डेषु च चतुःपञ्चकुण्डीवद्योमादित्तिरितं केचित । सुक्तं तु चतुःकुण्डीहोम एव विभन्नय कार्य इति । तदा चैको द्वोता परो ब्रह्मोति । विदिक्कुडचतुष्ट्ये अष्टो अधिका ऋत्विजः । ते त्याग्रेयादिकोणक्रमेण ऋगादिशास्त्रीया इति कोचित् । आनियता इसपरे । आचार्यकुण्डं तु पणयनयोग्याग्निस्यापनार्थीमिति साम्पर्दायिकाः । होमादिचिर्विभन्नय होमानुष्टानं वेति परे ॥

अध ऋक्शास्त्रीयानामन्वाथाने विशेषः । तत्र चक्षुषी आज्येनेसन्तमुक्तात्र प्रधानं सूर्यसोमभौमबुधगुरुश्वक्रशितराहुकेत्त्र ग्रहान्
समिच्चर्राज्यैः मतिद्रन्यम् । अष्टसहस्राऽष्टशताऽष्टाविश्वस्रष्टान्यतमसंरूषायाः ईत्वरोमास्कन्दिविष्णुत्रक्षेन्द्र्यमकाल्यित्रन्तास्याः अधिदेवताः । अग्न्यन्भूमिविष्ण्यन्द्रेन्द्राणीसपैपजापतित्रक्षाल्याः
प्रत्यिधिदेवताः । विनायकदुर्गावाय्वाकाशाल्यान् पञ्चलोकपालान्
इन्द्राग्नियमिनर्ऋतिवरूणवायुसोमेशानानन्तत्रस्राल्यदशदिवपालान्
द ध्रवाध्वरसोमापानिलानलप्रस्यूषप्रभासाल्यान् अष्टी वस्तन् घान्नर्ञ्यमिमत्रवरुणाश्वभगेन्द्रविवस्वत्पूषपर्जन्यत्वष्ट्रविष्ण्याल्यान् द्वादशादिसान्, वीरभद्रश्वम्सुगिरिशाजैकपादिविद्वध्न्यपिनाकिस्रुवनाऽधीव्यरकपालिविशाम्पतिस्थाणुभगाल्यान् एकादशस्त्रान्, आवइपवहोद्वहस्त्वहविवहपरावहपरिवहाल्यान् सप्त मस्तः, ब्रह्माच्युतेः

भार्कवनस्पतीन पञ्च चामुकसंख्यया समिचर्ताज्येर्यक्ष्य इति।वसु-न आदिसान रुद्रान मरूत इति समुदितानामेनोल्लेखो युक्त इति बहवः । अत्र ग्रहहोमसंख्यातोऽधिदेवताहोमेन्यूनसंख्येति सम्प्र-दाय: । ततो यजमानो मण्डपमध्ये दक्षिणत उपविष्ट आधारा-Ssज्यभागदेवता अन्वाधानोक्तपधानदेवताः स्विष्टकुदाग्रुत्तराङ्ग-देवताश्चतुर्थ्यन्तेनादिइयैताभ्य एतानि समित्तिलचर्नादिद्रव्याणि होतुमुत्स्टज्य इति सजेद । बहुकर्तृके होमे प्रसाहुतित्यागस्याज्ञ-क्यत्वादिति पर्योगविदः। तता होतारः स्वस्वशाखीयैः पणवाचैः स्वाहान्तेस्तत्तन्मन्त्रेर्ऋषिदेवताछन्दःस्मरणपूर्वकं सूर्यादिभ्यः स-मिचर्वाज्यादि जुदूयुः । तत्र वस्त्रादिसस्ट्रमस्तां पत्येकं मन्त्रा-Sभावात प्रणवादिना चतुर्थीस्वाहान्तेन प्रसेकं होम इति केचित । समुदितानामेव विधी श्रवणात मन्त्रानुरोधाचेति तुक्तम् । तत्र प-सेकदेवतात्वपन्ने पञ्चाशीतिर्देवताः । समुदितपन्न एकपञ्चाशतः । होमकाले ऋग्वेदिनौ द्वारपाली पूर्वे द्वार उदक्सुखी रात्रिसुक्तं रोद्रं पवमानं सुमङ्गलं शन्न इन्द्राग्नी इति सुक्तानि पटेताम्। यजु-विंदी दक्षिणे शाकं रोद्रं सीम्यं कौष्माण्डम ऋचं वाचामत्यध्यायं च पढेताम् । पश्चिमे सामविदौ सुपर्ण विराजमाग्नेयं रुद्रसंहितां ज्येष्ठ सामर बोधयेति च पडेताम्। उत्तरेऽधर्ववेदिनौ सौरं शाक्र-नकं पौष्टिकं सुमहाराजं, शन्न इन्द्राग्नी इति ऋक्त्रयं च पठेतास । अय तत्तदैवसानि सक्तानि जप्यानि । ह्वयामीसेकादशर्चस्य सुक्तस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः सविता देवताऽऽद्यायाः पादत्रये-ऽरिनमित्रावरुणौ रात्रिश्च देवता त्रिष्टपूछन्दः आद्यनवम्योर्जगती सूर्यभीतये जपे विनियोगः। ह्वयाम्यभिन देवम् । १९ । त्वं सोमेति त्रयोदशर्वस्य सुक्तस्य गौतम ऋषिः सोमो देवता । पञ्चम्यादि-द्वादश गायच्यः सप्तदश्युष्णिक् शेषास्त्रिष्टुभः सोमपीतये जपे वि- नियोगः । त्वं सोप गविष्ठौ । सिपधारिनियिति त्रिंशर्चस्य स्कस्य विक्ष्य अक्षिरसोऽरिनर्गायत्री । भौमगीतये । सिपधारिन सोतिर । उद्बुध्यध्विमिति द्वादश्चिस्य स्कस्य चुत्रो विश्वदेवा नवमी द्वादश्चिस्य स्कस्य चुत्रो विश्वदेवा नवमी द्वादश्ची च नगती (अभी चृहती चतुर्थो पष्ठी च गायत्री शेषास्ति-ध्युभो चुश्मीतये उद्बुध्यध्वम । यस्तस्तम्भेसेकादश्चिस्य वामदेवो नवानां चृहस्पतिरन्त्ययोरिन्द्रावृहस्पती दश्च त्रिष्टुम उपान्सा जगती । चुहस्पतिरन्त्ययोरिन्द्रावृहस्पती दश्च त्रिष्टुम उपान्सा जगती । चुक्रपतिविष्टुम यस्तस्तम्भ मरातीः । चुक्रगति । चुक्रते व अन्यत्ससम्बम् । आपो हिष्ठोति नवर्चस्याम्बरीपसिन्धुद्रीप आपः सप्त गायत्र्यः पश्चमी वर्द्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठान्त्ये हे अनुष्टुभौ । श्वामितितये० । आपो हिष्ठा वर्चसा । कया न हित पश्चदश्चस्य वामदेव इन्द्रो गायत्री तृतीया पादिनिष्ट्यः । राहुभीतये० । कया नाश्चित्र० सिवोपिर । चुक्षन्तीति दश्चस्य मधुङन्दा आद्यानां तिस्रणां चतुर्थी पष्टचष्टमीनां मरुतो गायत्री। केतुपीतये० । खुञ्जन्ति व्रश्चं रजस० ॥ इति नवग्रहम्कक्तानि ।

अथ होममन्त्राः । तल ऋगेवदि अथाधिदेवतानाम् । इमा रुद्रायेत्येकाददार्चस्य कुत्सो रुद्रो जगती अन्से त्रिष्टुमे रुद्रभीतये । इमा रुद्राय तद्यौः । आपो हिष्ठिति नवर्च पूर्ववत् । उमापीतये । आपो हिष्ठा० वर्चसा । मातर्युज्ञेसेकविद्यान्यसक्तस्य मेधातिथिराद्यानां चतस्यणामिदेवनौ चतसूणां सविता द्वयोरियरेकादद्या देव्यो द्वादद्या इन्द्राणी वरुणान्यायेट्योर्द्वयोद्योवांवापृथिव्यौ पञ्चद्याः पृथिवी पण्णां विष्णुर्गायत्री । स्कन्द्रभीतये । मातर्युजा० पदम् । अतो देवा इति पण्णां मेघातिथिविष्णुर्गायत्री । हिन्मितये । अतो देवा० पदम् । अत्र आयाह्यिति विद्यात्य्वस्य सक्तर्य भगोंऽद्याः प्रायः ब्रह्मभीसर्थे० । अत्र आयाह्यिति विद्यात्याः स्वनः।

इन्द्रं विका इत्यष्टर्चस्य जेता माञ्च छन्दस इन्द्रोऽनुष्ट्य् । इन्द्रभी-तये०।इन्द्रं विका० यसीः। आयं गौराति तिमृणां सार्पराइयात्मा गायत्री यमप्रीतये० । आयं गौः पृश्चि० द्युभिः। परं मृत्योपिति चतमृणां संकु सुको मृत्युश्चिष्टुप् । कालप्रीतये०।परं मृत्यो० तेनं । सचित्रत्यस्य भरद्वाजो मरुतस्चिष्टुप् । चित्रगुप्तमीतये०। सचित्र चित्रं० युवस्व०॥

अथ प्रसिदेवतानाम् । आग्नं दृतिमिति द्वादश्चिस्य मेथांतिथिरग्निः पष्ट्या आद्ये पादे निर्मथ्याहवनीयौ गायत्री । आग्नं
दूतम् । स्वनः । कस्येति पञ्चदश्चिस्याजीगर्त्तः शुनःशेष । आद्यायाः को द्वितीयाग्निसिस्षणां सविता दशानां वरुणस्ट्तिद्यासिस्रो
गायन्यः शेषासिष्टुभः । अप्पीतये० । कस्य नृनम् । स्योना
मेघातिथिः पृथिती गायत्री । मृमिपीतये० । स्योना पृथिवि०
प्रथः । सहस्रशीर्षेति षोदश्चिस्य नारायणः पुरुषोऽनुष्युवन्यात्रिष्टुप् विष्णुपीतये । सहस्रशीर्षा० देवा० । इन्द्राय कश्यपः पवमानसोमो गायत्री । इन्द्रपीतये० । इन्द्रायेन्द्रो सदं० । इमां सनामीति षण्णाम् इन्द्राणीन्द्राण्यनुष्टुभं त्वन्सा पञ्चपदा पङ्किः ।
इन्द्राणीभीतये० । इमां स्नामि० घावत्र । प्रजापते हिरण्यगर्भः
प्रजापतिस्विष्टुप् प्रजापतिपीतये० । प्रजापते० रथीणाम् । कालिको वसिष्ठः सर्पा अनुष्टुप् । सर्पपीतये । कालिको नाम मर्पः
इनः । ब्रह्मा देवानां दैवोदासिः प्रतर्दनो ब्रह्म विष्टुप् ब्रह्मगीतये० । ब्रह्मा० रेमम् ॥

अथविनायकादिपञ्चासम् । आत्न इति नवानां कुसीदः काण्वो गणपतिर्गायत्री । विनायकप्रीतये । आत्न इन्द्र० रन्तो । जातवेदसे कञ्चपो जातवेदा त्रिष्टुप् । दुर्गाप्रीतये० । जातवेदसे-स्थिनः । ऋणी त्रितो वा पुरु उष्णिक् वायुर्धीतये० । ऋणी

शियुद्धिता । अंदिद्वस्स आकाशो गायत्री । आकाशपीतपे०। आदित्मत्त्रस्य० । एवो उवा प्रस्कण्योऽस्थितौ गायत्री । अस्थितोः भीतये० । एषो० इद ॥

अय दशलोकपालानाम्। इन्ह्रं निक्नेत्यष्टानां जेता मधुच्छन्दस् इन्ह्रोऽनुष्टुण् । इन्ह्र्मीतये० । इन्ह्रं निक्ना० यसी । आग्नः साप्तः मिति सप्तानां सौचीकोऽगिनैक्नानरोऽग्निल्लिष्टुण् । आग्निमीतये। आग्नः साप्तः जस्व । परेयिवांसमिति षोडशर्चस्य यमः पश्चानां यमः षष्ठया अङ्गिरसस्तिष्टणां क्वानौ चतष्टणां यमो द्वादशिक्ष-ष्टुभौ पादानिष्टतौ पश्चदशी बृहती षोडशी अनुष्टुण् । यमप्रीत-ये । परेयिवांसं० हिता। वेत्था हि विक्नमाना वे पश्चो निर्क्रति-प्रीतये । वेत्था हिमिन । मोष्टिनि । पश्चानां विसष्ठो वरुणो गायत्री । अन्या जगती । वरुणमितये । मोषुनरुणोरिरिषः । वात इति तिष्टणां वातायन उली वायुगीयत्री० । वायुपीतये० । वात आवानु० सीवसे० । त्वं सोमिति ग्रह्वत् । इमा रुद्रायेति पूर्वनद । सहस्रशीर्षेति प्राग्वद । त्विमद्ग्रमोंऽग्निकृहती अक्षप्रीतये । त्व-मित्सप्रथा० थसः ॥

अथ वस्तादिनवानाम् । जमया अत्रेति वस्नां होमवत् । हमा गिर इति सप्तदश्चिस्य गार्त्समदः कूर्म आदिसाक्षिष्टुप् । आदिसामित्ये । इमा गिरः वीराः । आत इति पश्चदश्चिस्य गार्त्समदः कूर्मरुद्राक्षण्टुप् । ईशानभीतये । । आतोपितः वीराः । मरुतो यस्पेति दशानां गौतमो गायत्री । मरुतो यस्पेत दशानां गौतमो गायत्री । मरुतो यस्पे । इप्तामितः । हिर्ण्यगर्भ इति दश्चिस्य हिर्ण्यः मजापतिः कास्त्रिष्टुप् ब्रह्मभीतये । हिर्ण्यगर्भः रयीणामः । सहस्रशीर्षेत्यच्यु- सस्प पाग्वतः । आतेपितिरतीश्चर्य पाग्वतः । चित्रमिति पण्णां कुत्सक्रिष्टुप् । अर्कपितये । चित्रं देवानापः जतः द्योः । वनस्पतः

इति तिस्वां गर्गी वनस्पतिस्विष्टुप् । वनस्पतिभीतये । वनस्पते बीड्नङ्गो सुभाय । आवाहितयोशि मार्गणपत्योहींमस्क्तजपौ नस्तः। एवं ऋग्वेदी हुत्वा स्तिष्टक्रदादिमायश्चित्रयन्तं पूर्णाहुतिमास्-भावि कर्म कुर्याद् । अय यजुर्वेदिनः कुशकण्डिकानन्तरं मधान-होममन्त्राः । आकृष्णन हिरण्यस्त्यः सिवता त्रिष्टुप् । सूर्यभीतये तिलाजयहोमे विनियोगः । आकृष्णन पश्यन् स्त्राहा । इदं सूर्या-ष । एवं सर्वत्र । इमं देवा वरुणः । सोमो यजुः । इमं देवानां । राजा । अग्निर्मुद्धाविष्ट्योऽङ्गारको गायत्री । उद्गुष्ट्यस्य परमिष्ठी सुधिस्विष्टुप् । बृहस्पते सुत्समदो वृहस्पतिस्विष्टुप् । असात्मना-पतिराश्विसरस्वतीन्द्राः सुको जगती । शक्तो दध्यस्क्रथर्यणशनि-गायत्री । कया नो वामदेवो राहुर्गायत्री । केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री ॥

अथाधिदेवतानाम्। ज्यम्बकं वसिष्ठो रुद्रसिष्टुष् । अत्र मणी-तोदकं स्पृशेतः । श्रीश्चेत्युत्तरनारायण उमा त्रिष्टुष् । यदकन्दो भास्करजनद्धिदीर्धनमाः स्कन्दासिष्टुष् । विष्णोरराटमुनथ्यो विष्णुर्यज्ञः । विष्णोरराटम् । वे त्वा । आ ब्रह्मन् प्रजापतिर्वका यज्ञः । आ ब्रह्मन् करुपताम् । सजोषा विक्वामित्र इन्द्रसिष्टुष् । सजोषा इन्द्रः । असियमो भास्करजनद्धिदीर्धनमसो यमाखिष्टुष् । अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेतः । काषिरसि दध्यङ्क्ष्यर्थनः कालोऽतु-ष्टुष् । अत्रापि प्रणीतोदकस्पर्शः । वित्रापि प्रणीतोदकस्पर्शः । चित्रावसीर्ऋषयश्चित्रगुप्तो जगती चित्रावसोः शीय० ॥

अथ प्रसिद्देवतानाम् । अधि द्वेति विद्योऽधिर्मायत्री । अव्हवन्तर्बृहस्पतिः आपः पुर उदिणक् । स्योना मेघातिथिः पृथिवी गायत्री । इरं विष्णुर्भेघातिथिविष्णुर्गायत्री । त्रातारं गार्ग्य इन्द्र-स्निष्ट्य । अदिस्यै दश्यकृत्वाथर्षण इन्द्राणी यजुः। अदिस्यै राह्या ब्लीयः । प्रजापते वरुणः प्रजापतिश्चिष्दुष् । नमोऽस्तु देवाः सर्पा अनुष्दुष् । ब्रह्म प्रजापतिर्वज्ञा विष्दुष् । अप विनायका-दिपञ्चानाम् । गणानां प्रजापतिर्गणपतिर्यज्ञः । गणानां स्वा । सम । अम्बे प्रजापतिर्दुर्गाऽनुष्टुष् । वातो वा गन्धवां वात उदिणक् सर्वा अस्य समिष्रो प्रजापतिराकाश उदिणक् । अवितनौ अवितनौ यज्ञः । अवितनोभौवामि ॥

अथ दिक्पालानाम् । स्नातारं गार्ग्य इन्द्रसिष्टुप् । आग्नं दूर्वे विक्रपोऽप्रिगीयत्री । असियमो भागेवजमदिग्नदीर्धतमसो यमस्ति-च्हुप् । अत्र पणीतोदकस्पर्शः । एष ते वरुणो निर्ऋतिर्पत्तः । एष ते निर्ऋते ० पस्व । पणीतोदकस्पर्शः । इमं मे श्वनःश्चेषो वरुणो मायत्री। इमं मे वरुण० । वातो वा गन्थर्वा वात उण्लिक् । वयं बन्धः सोमो गायत्री । तमीशानं गौतम ईशानो जगती । पणीतोदकस्पर्शः । नमोऽस्तु देवा अनन्तोऽनुष्टुप् । ब्रह्मप्रजापतिर्ब्रह्मा न्निष्टुप् ॥

अथ वस्तादीनाम् । स्त्रगि देता वसत्राख्चित्रपु । यक्को देतानां क्कुःस आदिस्याख्चित्रपु । य एतात्रन्तश्च परमेष्ठी हद्दोऽतुष्टुप् । महतो यस्य गौतमो महतो गायत्री । आत्रक्षत्त प्रजापतिर्वक्षाः यद्धः । इदं विष्णुर्भेषातिथिरच्युतो गायत्री । मानस्तोके क्कुत्स ईशो जगती।चित्रं देवानां क्कुःसोऽकंख्विष्टुप् । अयं हि मजापति- धनस्पतिर्थद्धः । अयं हि स्त्रापति-

अथ जपस्कानि । विश्वाहितिसप्तर्श्वस्पानुवाकस्य आ-द्याया विश्वाद । ततिश्वद्यणां मस्काष्यः । पश्चम्या अवस्तारः कार्यपः पष्टचा वेनः सप्तम्याः कुरतोऽष्टम्या अगस्त्यो नवम्याः श्वतकसञ्चकत्तौ दशम्याः मस्कण्योऽथ द्वयोर्जनद्विः पश्चद्वयाः स्रोधः । पोटश्याः कुरतः । अन्याया हिरण्यस्य आङ्गिरसः । पश्च-म्या विश्वदेवाः । पश्चयाः सोमोऽम्यासी सूर्य आद्या पश्चमी जगती, द्वितीयादितिस्रो नवभी दशभी च गायम्बस्ययेदशीपश्चनः दश्यी पथ्याबृहस्ती। चतुर्दशी सतो बृहती। शेषाः सप्त विष्टुभः । सूर्यभीतये जपे विनियोगः। ॐविभ्राड्वहत् पश्यत् आषाढं पुंस्तिति चतररणां गौतमः सोमस्विष्टुप्। सोमभीतये ०। आषाढं युत्सु ० विष्टो। आधर्मूद्धा विरूपाक्षोऽग्रिगीयत्री। उद्बुद्धस्व पर्मेष्ठश्चित्रिष्टुप्। बुध्मीतये। बृहस्पते अतिग्रत्समदो ब्रह्मा विष्टुप्। बुदस्पतिमीतये०। अन्नात् परिश्रुतः मजापत्यश्चित्रसरस्व-ती-द्वः इन्द्रो जगनी। शन्नो देवी दध्यङ्ख्यर्थण आपो गायत्री। केतुं कुष्वत् मधुष्डस्ता अश्चर्यायत्री। एते मन्त्रा प्र सूक्ताति॥

अवाऽिधदेवतानाम् । पद्विष्टियन्त्रात्मकरुद्राध्यायस्य परमेष्ठी
ऋषिः । आद्यानां षोढशानाम् एकरुद्रस्ततो बहुरुद्र आद्यो गान्यत्री । तिस्रोऽनुरुद्रभो द्वे जगसौ । नमो हिरण्यवाहत् इत्यन्तिस्तिक्षाः चर्ल्यां द्वाप्ति इत्यन्तिस्तिक्षाः चर्ल्यां द्वाप्ति इत्यन्तिस्ति चर्ल्यां द्वाप्ति जगती, या ते स्द्रेत्यनुरुद्ध्य । ततो द्वे त्रिष्टुभौ । विकिरिदेत्याचा द्वादशानुरुद्धः । शेषाणि त्रीणि यर्जूषि । रुद्रभीतये० । नमस्ते रुद्धः द्याना प्रदेशाः । द्वापह इत्यन्ताः पोडशेत्र रुद्धस्तिमितं स्वनारायणीये । प्रणीतोदकस्पर्थः । श्रीश्च ते जत्तरनारायणो नारायणास्तिरुद्ध् । स्कन्द-भीतये । सहस्रशीर्षिते षोडशानां नारायणः । पुरुषोऽद्धुरुद्धनन्ताः त्रिष्टुद्धनन्ताः विष्टुप् । विष्णुभीतये० । आत्रह्मस्तितं मजापतिर्वह्मा यज्ञः । ब्रह्मपीतये० । आश्चः शिशानामितं द्वादशानाममितस्य इन्द्रस्तिष्टुप् । इन्द्रभीतये ० । प्रणीतोदकस्पर्शः । चित्रावसो ऋष्यो रात्रिर्जगती । चित्रग्रप्तमीतये० ॥

्र अथ प्रसिधदेवतानाम् । अस्या जरास इति सप्तदश्चिस्यः आद्याया वत्सपी इन्द्रवाय् त्रिष्टुप् । द्वितीया विरूप इन्द्रवायु गान्ध यत्री । तृतीया गौतमो मित्रावरुणौ गायत्री । चतुरुर्या विरूप इन्द्र-बरुणौ गायत्री । पञ्चम्याः कुत्सः शुक्रस्त्रिष्टुप् । षष्ठया वामदेबो -Sिमर्जगती । सप्तम्या विश्वाभित्र इन्द्रायी त्रिष्टुप् । अष्टम्या भर्-द्वाजोऽग्निख्रिष्द्रप् । नवम्या भरद्वाजो विक्षेदेवा गायत्री । दश-म्या मेघातिथिरात्रिर्गायत्री । एकादश्याः शक्त्यः पाराशरो मरुत-स्त्रिष्टुप् । द्वादश्या अत्रिद्दिता विक्वेदेवा महतस्त्रिष्टुप् । त्रयो-दश्या भरद्वाजोऽग्निस्त्रिष्ट्यं । चतुर्दश्या विसष्ठ आदिसो बृहती । षोडक्यो वामदेवोऽग्निस्त्रिष्ट्यः । सप्तदक्याऽनुरोषातकः सविता त्रिष्दुप् । अग्निपीतये० । आपो हिष्ठेति तिस्रणां सिन्धुद्रीप आपो गायत्री । अप्पीतये० । स्योना पृथिवि दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । पृथिवि दृष्यङ्ङाथर्वणः पृथिवी गायत्री । पृथिवीपीत्वर्थे० । सहस्रशीर्षा नारायणीयः पुरुषस्त्रिष्टुप् । विष्णुपीत्यर्थे । आशुः शिशानो द्वादशानाममतिरथम् । इन्द्रस्तिष्दण् । इन्द्रमीसर्थम् । अदित्यै रास्ता दध्यङ्ङाथर्वण इन्द्राणी यन्तु इन्द्राणी पाहिरण्यगर्भ इति चतुर्णो हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्दुप् । प्रजापतिपीत्यथेम् । नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तृचस्य देवाः सर्पा अनुष्टुप् । सूर्यपीत्यर्थे । ब्रह्मजङ्गानं पजापतिरादित्यस्त्रिष्टुप् । ब्रह्मपीतये० ॥

अथ विनायकादिपञ्चानामः । गणानां त्वा प्रजापतिर्गणपतिर्यजुः । गणपतिप्रीतये० । अम्बे ग्राम्बिकं प्रजापतिरक्वोऽनुष्टुष् ।
दुर्गाप्रीतये० । त्वां वा येति पण्णामाद्याया ग्रत्समदो द्वितीयायाः
पुरुषदाजमीदौ तिस्रणां प्रजापतिः पष्ट्याश्च आङ्गिरसो वायुद्वितीयाऽनुष्टुप् पञ्चमी त्रिष्टुप् दोषा गायन्यः।वायुपीतये। उप्तर्वा
अस्य समिष्ठ इति द्वाद्यानां प्रजापतिरग्निरुष्णिक् । आकाद्यप्रीतये । या वां कदा मेषातिथिर्विननौ गायत्री । अध्विनोः
सीतये ॥

अय दिक्पालानाम । आधः शिशान इति द्वादश्चिमेन्द्रं प्राग्नत । अस्या जरास इति सप्तरश्चिमाग्नयं प्राग्नत । यमाय दध्यक्टाथर्वणो यमो यल्तः । यमपितये । यमाय स्वाहा । प्रणीन तोदकस्पर्शः । अमुन्वन्तामिति तृचस्य प्रजापतिराग्निल्लिष्ट्यु । निर्म्हितपील्लिष्ट्ये । प्रणीतोदकस्पर्शः । इमं मे वरुणेति द्वयोः शुनःशेषो वरुणो गायत्री त्रिष्टुभौ । वरुणपतिरये । नियुत्वा त्वा य-विति षडचे वायवीयं पाग्नतः । आषादिमिति सौम्यचतुष्ट्यं पाग्नतः । रुद्राध्यायः षट्विष्टुपन्त्रावसानं पाग्नतः ॥ ६६ ॥ प्रणीतोदकस्पर्शः । नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तृचमनन्तस्तां पाग्वतः । ब्रह्मजन्मावं प्राणीतीरादिशास्त्रिष्टुप् । ब्रह्मपीतये ॥

अथ वस्वादीनां स्वमा बो देवा वसविख्रप्रप् । वसुपीतये । इमा गिरो युत्समद आदिसाख्रिब्रुप् । आदिसपीतये । स्द्राध्या-येणेन्द्रं पाग्वत । शुक्रज्योतिश्चेति वण्णां सप्तर्पयो मस्त अन्वतुर्थी बोष्णिक् पञ्चभी जगती शेषा गायग्यो मस्त्र्पतिये । आन्नझन् प्रजापतिर्वद्या यजुः। ब्रह्माभीतये । सहस्रशीषेति वैष्णवं पाग्वत । स्द्राध्यायो रौद्रं पाग्वत । विश्वाद्यित सप्तद्यार्चमार्क पाग्वत । बनस्पते वीद्वङ्गः प्रजापतिर्वनस्पतिख्रिष्टुप् । वनस्पतिशीतये । ततो न्याद्वतिहोमादिविख्होमान्तयाज्यपं पूर्णाहुतिपाग्भावि कर्म कर्यात ॥

अथ सामगानां कुशकण्डिकानन्तरं प्रधानहोंने मन्त्राः । छदुत्यं प्रस्कण्यः सुर्वो गायत्री । तिळाण्यहोमे विनियोगः। छदुत्यं, सूर्याय स्त्राहा । सं ते प्रयांति सोमः सोमो गायत्री । आग्नर्मूर्द्धां बरुणः सोमो गायत्री । अग्ने निवस्त्रनण्डो जमद्गिनर्बुचो सृह-ती । सृहस्पते परिदीपा प्रतिरयो सृहस्पतिस्त्रिष्टुण् । शुक्तं ते भरदाणः शुक्रस्त्रिष्टुण् । शको देवीः सिन्धुद्वीणः शनिर्गायत्री । कया नो वामदेवी राहुर्गीयत्री । केतुं कुणवन्मधुच्छन्दाः केतु-र्गायत्री॥

अयाधिदेवतानाम् । आवो राजानं वामदेवो रुद्रसिष्ट्युप् । आपो हिष्ठा सिन्धुद्रीप उमा गायत्री । स्पोना पृथिवी मेघातिथिः स्कन्द उदिणक् । इदं विष्णुभैघातिथिविष्णुगीयत्री । स्वमित्सपथा गौतमो त्रसा बृहती । इन्द्रमिदेवता उक्तस्तुगिन्द्रसिष्टुप् । आयं गौः सार्पराज्ञी यमो गायत्री । ब्रह्मजज्ञानं ब्रह्मा कालसिष्टुप् । चित्र इञ्चिक्योथित्रगुप्तथित्रगुप्तो जगती ॥

अथ मसिदिवतानाम् । अप्तिं दृतं भरद्वाजोऽप्तिर्गायत्री । छद्भुत्तमं गौतम् आपिक्ष्यपु । पृथिव्यन्तिरक्षं विष्णुपृथिव्युष्णिक् । सहस्रत्रीर्था नारायणो विष्णुरन्तुषु । इन्द्रो द्यो द्यीय इन्द्रो गायत्री । एकाष्ठकी वसिष्ठ इन्द्राणी त्रिष्टुप् । मजापने न त्व हिरण्यगर्भः प्रजापतिक्षिष्टुप् । तवेदिन्द्रावमं वसिष्ठः सर्पास्त्रिष्टुप् । एष प्रत्या प्रजापतिर्वेद्धा द्विपदा गायत्री ॥

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । अत्तूतो गौरिवीतो गणपति-गीयत्री । इमं स्तोमं कुत्सो दुर्गा जगती । राणाशिरीन्द्रो बायु-रुष्णिक् । आदित्मत्नस्य निधनकाम आकाशो गायत्री । एवी खषा प्रस्कण्योऽक्षित्रनौ गायत्री ॥

अय छोकपालानाम् । त्वामिद्धि भरद्वाज इन्द्री बृहती । आग्निहैत्राणि श्रीतोऽग्निर्मायत्री । नार्कसुपर्णयमा यमिस्वष्टुप् । बेस्या हीत्यादित्यो निर्ऋतिकष्णिक् । इमं मे षुष्कभो वरुणो गान्यत्री । वा आवातु माजीने काशीतो वायुर्गायत्री । स्वादिष्ट्यां मम्भीरः सोमो गायत्री । तद्वो गायत्री । तद्वो गाय रुद्र ईशानो गायत्री । समानो अञ्चा चश्चना अनन्तस्त्रिष्टुप् । ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मा श्रिष्टुप् ।

अथ वस्वादीनाम् । तमन्त्रि नमस्वे वामदेशो वसवो विराद्री आदित्वैरिन्द्रभरद्वाज आदिखो विराद् । आवो राजानं वामदेवो रुद्रक्षिष्टुप् । पवमाना अस्टक्षत आदा रसनपृपरुतो बृहती । ब्रह्मजङ्गानं ब्रह्मा त्रिष्टुष् । इदं विष्णुर्मेषातिथिर्विष्णुर्गायत्री । आ त्वा सोमस्य सोम ईशानो बृहती । इन्द्राय मद्रने गौरी वित-को गायत्री । वनस्पते वीड्वङ्गो बाभ्रव्यो वनस्पतिस्त्रिष्टुप् । इति सामगानां होममन्त्राः।होममन्त्राश्च सामगानां जप्यानि सुक्तानि।विशे+ षस्तु ग्रहेषु सौम्ये पकीत्तितन्यामिति द्वादशर्चस्याद्यानां तिस्रणां वाज-स्त्रिष्टुप् । श्रोषाणामादित्यो गायत्री सोमो देवमा सोमपीत्यर्थे एका-दशसामारिमकायां रुद्रसंहितायाम् आवोराजानिर्माते वामदेवास्त्रिष्टुप्। तद्वोगायेति चतुःसाम्रो वर्गस्य रुद्रो गायत्री।त्रयाणामाज्यदोहसीम्ना वैश्वानरस्त्रिष्टुप् । त्रयाणां देवत्रतसाम्नां पूर्वमोरुद्रेसस्य विक्षे-देवा जत्कृतिः । सर्वेषां रुद्रो देवता । रुद्रमीसर्थम् । आ ४ वो ५ राजा ५७ एकादश ॥ सामात्मिकायां स्कन्दसंहितायाम् आम-न्द्रैरिति त्रयाणां च प अनो विश्वा सुहव्यमिति त्रयाणां शक्तयो बृहती । प्रसेनानीमिति त्रयाणां कुत्सिखिष्टुप् । पवित्रं त इति द्वयोरादित्यो जगती । सर्वेषां स्कन्दो देवता । स्कन्दशीतये । आ ५ मं ५० द्रे ५२, ५० । नवसामात्मिकायां विष्णुसंहितायाम् । इदं विष्णुर्गायत्री । मसक्षस्य दृष्ण्यो विष्णुर्जगती । प्रकाव्य-मुशने इति वराहस्य वाजिस्त्रिष्टुप् । सहस्रशीर्वा षट्टचरीतयोः पुरुषत्रतयोः पुरुषोऽनुष्टुष् । सर्वेषां विष्णुर्देवता। विष्णुनीत्यर्थम् । र ५६ मे ५ विष्णुः । विनायकस्य अदन्दोरिति दशमामास्मि-कार्या विनायकसंहितायाम् । अदर्दिति द्वयो रुद्रदक्षास्त्रिष्टुप् । सु-'आणास इति द्वयोः पृथिवी । त्रिष्ट्य् । आतून इति चतुःसामः वर्गे आद्ययोगीरिवीत अन्त्ययोरपालत्रैणवश्चतुर्णा गायत्री । गुज्य- माणा इति द्ववीराद्यस्योक्ष्णीराद्यीद्वितीयस्य वर्गस्य पष्टस्या ऽग्निर्वृद्वती । सर्वेषां विनायको देवता । विनायकप्रीसर्थप् ४ द ५६ ५ रुप ५ त ४॥ ०॥

सोमस्य पकान्यसुत्रानामिति पाग्वत । द्वादत्र । ईत्तानस्य रुद्वाणामानो राजानमिति रुद्वसंहिता पाग्वत। अच्युतस्य वैष्णवी-संहिता प्राग्वत । अन्येषां तु होममन्त्रा एवेति अहचरणाः, मदनो-मापतिस्यनारायणदानसागराद्याः । येषां गीतिरास्ति ते गीति-संहिता एव जप्या इसपितम्। एवश्च सक्तजपानन्तरं व्याहृतिहोमा-दिवाहिं जुहिकाहोमान्तं प्राग्माविस्वत्रास्तोक्तं सामवेदी कुर्णत्॥

अथार्थवेदिनः । प्रधानहोमे मन्त्राः । विवासहिमथर्यादिसो जगती । होमे विनियोगः । एवं सर्वत्र । शकधूमपथर्वा सोमो-ऽनुष्टुप् । त्वया मन्यो भौमस्त्रिष्टुप् । यद्राजानो विभजन्त विष्णुः बुधः पङ्क्तिः। वृहस्पतिनीं ब्रह्मा वृहस्पति। स्निष्टुप् ॥ ग्रक्तोऽस्यथर्वा ग्रक्तोऽनुष्टुप् । सहस्रवाहुनीरायणः शनिस्त्रिष्टुप् । दिन्यं विर्त्त कौशिको राहु स्निष्टुप् । यस्ते पृषुर्थयर्वा केतवस्त्रिष्टुप् ॥ ९ ॥

अथाधिदेवतानाम् । मा नो विदन् ब्रह्मा ईश्वरोऽनुष्टुप् । आद्विहिष्ठा सिन्धुद्दीप उमा गायत्री । अधिस्वमन्यो ब्रह्मा स्कन्द-स्त्रिष्टुप् । मतद्विष्णुरथर्या विष्णुर्गायत्री । ब्रह्मज्ञानमथर्या ब्रह्मा त्रिष्टुप् । इन्द्रं मे ब्राह्मेन्द्रोऽनुष्टुप् । यः भथमो ब्रह्मा यमस्त्रिष्टु-प् । रोहितः कालोऽधर्या कालोऽनुष्टुप् । यदाज्ञातं कौक्षिकः श्रित्रग्रमोऽनुष्टुप् ॥

अथ प्रसिधिदेवतानाम् । सामस्त्वामे ब्रह्मा त्रिष्टुष् । शस्त्रो देवी ब्रह्मा आपो गायत्री । भूमेर्मातर्ब्रह्मा भूमिरतुष्टुष् । इदं विष्णुरधर्वा विष्णुर्गायत्री । इन्द्रा जुवस्व ब्रह्मन्द्रोऽतुष्टुष् ॥ मेत-षादावधर्वेन्द्राण्यतुष्टुष् । नक्तं जातास्यथर्वा मजापतिरतुष्टुष् । स्र- र्पानुसर्पाथर्या सर्पाः पङ्क्तिः । ये दिशामथर्या ब्रह्मा त्रिष्टुप् ॥

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । निर्हश्म द्रविणोदा विनायको-ऽनुष्टुप् । प्रतनाजितमथर्गा दुर्गा त्रिष्टुप् । अन्तरिक्षे वायवे ब्रह्मा वायुरनुष्टुप् । काम्यन्ताथर्गा आकाकाक्षिष्टुप् । संवेत्रपथ्यो-ऽक्तिरा आवित्रनावनुष्टुप् ॥

अथ दिक्पालानाम् । इन्द्रब्रह्मेन्द्र त्रिष्टुप् । अप्रेर्मन्येति ब्रह्माग्निह्मिष्टुप् । परो मृत्युक्तब्रह्मा यमिस्रप्टुप् । अपितं तिर्चानित्यर्था निर्कृतिह्मिष्टुप् । ये पश्चाज्ज्ञह्मयथर्था वरणस्चिष्टुप् । वायोः सवितुरथर्था वायुश्चिष्टुप् । य उत्तरतो ब्रह्मा सोमिस्रिष्टुप् । धाता ददात्विङ्गरा ईशानो मायत्री।य अनन्तं वितमयर्था अनन्तः पिद्वः । ब्रह्मा परं युज्यताम् । अथर्वा ब्रह्मा विष्टुप् ॥

अथ वस्तादीनाम् । यानवहनस्त ब्रह्मा वसविख्रिष्टुप् । आदित्यो ब्रह्मा आदित्यिख्रिष्टुप् । रहं जलाष ब्रह्मा रुद्रख्रिष्टुप् । मरुतामत्वेर्वा मरुतिख्रिष्टुप् । इमा ब्रह्मा ब्रह्मा ब्रह्माख्रिष्टुप् । त-द्विष्णोर्ब्रह्मा गायत्री। रुद्रजात्वब्रह्मेशिख्रिष्टुप् । वत्सो विराजा ब्रह्मा-काख्रिष्टुप् । वनस्पते वीद्वज्ञोऽथर्वा वनस्पतिश्रिष्टुप् । इत्यर्थर्वविदो होममन्त्राः ॥

अय स्कानि । विषासिर्धं साहमा इति पण्णाम् । अथर्वा सूर्वो जगती । सूर्वमीतये जपे विनियोगः । एत्रमग्रेऽपि । शक-धूममिति चतुर्णामथर्वा सोमोऽनुष्टुप् । स्वया मन्यो इति सप्तानां ब्रह्मा भौमिखिष्टुप् । सोमस्याशो इति चतुर्णामथर्वा बुधोऽनुष्टुप् । भद्रादिधिश्रेय इत्यस्य ब्रह्मा बृहस्पतिस्थिष्टुप् । १ शुक्रोऽसीसथर्वा स्रकोऽनुष्टुप् । माणाय नम इति तिस्रणां ब्रह्मा शनिस्थिष्टुप् । शहुराजानं ब्रह्मा राहुस्थिष्टुप्।यस्ते प्रशुरिति तृचस्याथर्वा केतवः । आद्ययोरन्साऽनुष्टुप् ॥ अथाधिदेवतानाम् । मा नो विदिन्निति चतस्यणां ब्रह्मा हर्द्रस्मिष्टुप् । अग्निरिव मन्यो ब्रह्मास्कन्दस्मिष्टुप् । यत इन्द्रा इति
पञ्चानामथर्वा विष्णुस्मिष्टुप् । अन्त्या गायत्री । विष्णुत्रीतये ।
ब्रह्मजङ्गानिति सप्तानामथर्वा ब्रह्मा त्रिष्टुप् । इन्द्रो जयतीति
त्यचस्य ब्रह्मेन्द्रविष्णुस्मिष्टुप् । इन्द्रभीतये । यमो मृत्युरिति त्यस्य ब्रह्मा यमस्मिष्टुप् । यमगीतये । ओहितः काल इति द्वयोरथर्वा कालोऽनुष्टुप् । अथर्वाङ्मपरस्तादिति चतस्रणाम् । अथर्वा
चित्रग्रप्तिस्मिष्टुप् ॥

अथ प्रसाधिदेवतानाम् । अग्नेभेघ इति तृचस्य ब्रह्माग्निक्षिः ष्टुप् । शङ्गो देवतीति चतस्त्रणां ब्रह्माऽऽपो गायत्री । सत्यं बृह-हतामिति ब्रह्मा क्षितिस्त्रिष्टुप् । यद्म इन्द्र इति पञ्चर्च वैष्णवं प्रा-ग्वत ॥ इन्द्रा ज्ञुषस्वेस्रोकस्य ब्रह्मेन्द्रोऽनुष्टुप् । मेत पादावित्यस्य अथर्वेन्द्राण्यनुष्टुप् । प्रजापते न त्वदिति द्वयोर्ब्रह्मा प्रजापतिस्नि-ष्टुप् । शेरभकेयष्टानाम् अथर्वा सर्पा पाङ्काः । ब्रह्मज्ञानमिति सप्तर्च ब्राह्मं प्राग्वत् ॥

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । निर्छक्ष्मिमिति चतस्यणं द्रविणो दा विनायकोऽनुष्टुप् । वायोः सवितुरिति द्वयोरथर्वा वायुद्धि-ष्टुप् । पुरं यो ब्रह्मण इति चतस्यणां ब्रह्माकाकोऽनुष्टुप् । अथिना ब्रह्मणेसस्य ब्रह्माऽथिनौ त्रिष्टुप् ॥

अथ लोकपालानाम् । तत्रेन्द्राशियमानां त्रयस्तृचाः पागु-का एव । यस्यासो आसनीति तिस्रणां ब्रह्मा निर्कृतिस्थिष्टुप् । उदुत्तमं ब्रह्मा वरुणस्थिष्टुप् । वायोः सवितुरिति वायवीयो ऋचः पाग्वत । शकं धूमामिति चतस्यः । सोमस्य मानो विद्विति चत-स्र ईशस्य शेजम्भकेसष्टानां, तस्य, ब्रह्मजङ्गानमिति ब्रह्मणः स-प्र । प्तानिं पूर्वत । वस्वादिसस्द्रमस्तां होममन्त्रा एव । ब्रह्म- जहानामिति सप्तबहाणः । यदा इन्द्र इति पञ्चाच्युतस्य मानो-Sविद्क्षिति चतस्र ईशस्य विवासाहिमिति पडर्चस्य । एतानि पूर्व-बत् । वनस्पतेहींममन्त्रा एव । ततः स्वस्वशास्त्रीयं स्विष्टकुद्भवा-तानहोमादि पूर्णाहुतिपाग्मावि शेषं कर्म कुर्युः । ततो यजमानो मण्डपमाग्द्वारकलकासमीपे त्रातारामिन्द्र इन्द्रास्त्रिष्टुष् । इन्द्रमीत्पर्थे बल्लिदाने विनियोगः । त्रातारमिन्द्रम् । इन्द्राय साङ्गाय सपरिवा-राय सायुधाय सशक्तिकायाम् सदीपं माषभक्तविंह समर्पपामि, न मम इति माषभक्तविंछ दत्वा, भो इन्द्र दिशं रक्ष, बिंछ मक्ष, मम सकुदुम्बस्य आयुःकत्ती क्षेमकत्ती धुमकत्ती शान्तिकत्ती पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्त्ता भवेति मार्थयेव । एवमाग्रेय्यादिषु होमोक्ते-रम्न्यादिमन्त्रेर्वालेदानं मार्थनं च । एवमधिदेवतामसिधदेवता-सहितेभ्यः सुर्यादिप्रहेभ्योऽपि होमोक्तेस्तत्तन्यन्त्रैर्विनायकदुर्गा-बाय्याकाश्चास्तोष्पतिक्षेत्राधिपतिभ्यस्तत्तन्मन्त्रेहींमोक्तेरेव । तत आचार्यो यजमानान्वारब्धः शुचिस्स्वेण द्विवारं चतुर्वारं या नाछिकेरादिफलयुक्तमाज्यं गृहीत्वा पूर्णाहृति जुहुयात ॥ तत्र मन्त्राः । समुद्रा दुमिरिति तृचस्य गौतमो वामदेनोऽमिस्लिष्टुप् । पूर्णीहुतौ वितियोगः । एवमग्रेऽपि विनियोगः । मुर्दानं दिवो भरद्वाजो वैक्वानरास्त्रिष्टुप् । पुनराभिवसुरुद्रादित्यास्त्रिष्टुप् । पूर्णा दर्निविश्वेदेवाः शतकतुरसुष्टुप्। सप्त ते अग्रे सप्तनानग्निर्जगती । धामं ते वामदेव आपो जगती । धामं ते स्वाहेति । यजमानस्तु इद्मग्रये वैक्वानराम वसुरुद्रादित्येभ्यः क्षतकतवे सप्तवते अग्रये-Sद्भ्यश्च, न ममेति सजेव । कातीयानां तु, मुद्धीनं दिव इत्येव पूर्णोइतिमन्त्रः । अग्रय इदं न ममेति त्यागः । सामगानां तु मजा-प्रतिऋषिर्मायत्रीछन्द इन्द्रो देवता । यशस्कामस्य यजनीयमयोगे वितियोगः । पूर्णहोमं यश्चासा जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै

ददाति । वरं रुणो यशसा भामि छोके स्वाहेत्यनेन स्ववेणैव होमः। इन्द्राय इदं न ममेति त्यागः । ततो बसोर्घारया होज्याभीति सङ्करूप यजमानो वसोर्द्धारां जुहुयात । मन्त्रास्तु, अधिमीळ इति नवानां मधुन्छन्दा अग्निर्गायत्री । वसोद्धरियां विनियोगः । विष्णोर्न कमिति षण्णां दीर्घतमा विष्णु खब्दप् । आ ते पितरि-ति पञ्चदशानां ग्रत्समदो रुद्रसिष्द्रप् । स्वादिष्ठयेति नवानां मधु-च्छन्दः पत्रमानसोमो गायत्री । महीबैश्वानरसाम्नो वैश्वानर ऋषि-वैंक्जानरो देवता पथ्या बृहतीछन्दः । ज्येष्ठसाम्रो भरद्वाजऋष-वैंक्त्रानरो देवता त्रिष्टुपुछन्दः । वसोर्धारायां विनियोगः । वसी-र्धारा जहातीसन्त्वाकमपि पटन्ति शिष्टाः । वसोर्द्धाराहोमस्त गहा-बानजलाशयोत्सर्गादौ नास्तीति बहुवः । ततः पूर्णपात्रावेमोका-दि च यथाशाखं समाप्य आचार्यसाहता ऋत्विजः सर्वोषधीभि-रत्रुलिप्ताङ्गपत्रीपुत्रादिसहितं यजमानं स्वस्वज्ञाखियैर्मन्त्रेनेव-ग्रहपीठसमीपस्थकुशोदकेन सम्पातकल्लशोदकेन च अभिषिश्चे-युः पौराणिश्च । ते च, सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्व-राः । बासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विशुः ॥ मद्युद्धश्चा-5िनरुद्ध भवन्तु विजयाय ते । आखण्डलोऽग्निर्भगवात् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥ वरुणः पवनश्चेव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥ की चिर्लक्ष्मी धृतिभेषा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मातिः । बुद्धिर्रुज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥ एतास्त्वामभिषिश्चन्तु देवपस्यः समागताः ॥ आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः । ग्रहास्त्वामभि-विञ्चन्तु राद्दः केतुश्च तर्पिताः ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसः पन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥ देवपत्न्यो द्वमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः। अख्याणि सर्वशस्त्राणि राजानी

वाहनानि च ॥ औषधानि समस्तानि कालस्यावयवाश्च ये । सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ एते त्वामभिषि-अन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ तच्छंयोरावृणीमह इति ॥

ततो यजपानः स्नात्ना धुक्रमाल्यगन्धान्वर्षत्र आचार्यादीत्र सम्पूज्य तेभ्यो दक्षिणां दद्यात् । तत्राचार्याय धेनुः । ब्रह्मणे कृष्णोऽनङ्गत् । एवं सदस्यांत्वगृद्वारपालादिभ्यो यथाशक्ति । तथा, धेनुः शङ्कस्तथाऽनङ्गत् हेम वासो हयः क्रमात् * कृष्णा गौरायसं छाग एता वे दक्षिणाः क्रमात् ॥ ग्रहानुहिश्य देयाः । ततः शक्त्या ब्राह्मणात् भोजयेतः सङ्कल्पयेद्वाऽशक्ती। ततो दीना-ऽनाथभ्यो भृयसीं दक्षिणां द्यातः । मण्डलदेवतानां ग्रहपीद-देवतानां चोचरपूजां कृत्वा, यान्तु देवगणाः, अभ्यारमित इयो, खत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इति जत्थाप्य विस्त्रण्य मण्डपादीन् मतिपादीं-श्च सर्वात् सम्भारात् आचार्याय मतिपाद्य, यस्य स्मृत्या, ममान्दात कुर्वतां कर्मेति पठित्वा कर्मेश्वरापिणं कृत्वा विपाशियोग्रही-त्वा तान्नमस्कृत्र सुद्वद्यतो सुजीतेति सर्वं क्षित्रम् ॥ इति श्रीभष्ट-शङ्करात्मजनीलकण्डकृते दानमयुखे दानपरिभाषाप्रयोगः ।

अथ दानानि ॥ मारस्ये — अथातः सम्प्रवस्यामीत्यादिनाः षोडश्रमहादानानि उक्तानि । यथा । आद्यं तु सर्वदानानां तुष्ठा- पुरुषसंक्षितमः । हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ॥ कल्प- पाद्यदानं च गोसहस् च पञ्चममः । हिरण्यक्षमधेनुश्च हिरण्यात्रवन्स्येव च ॥ हिरण्यात्रवर्यस्तद्वद्धेमहस्तिर्यस्तथा । पञ्चलाङ्गरुकं तद्वद्धरादानं तथैवच ॥ द्वादशं विश्वचकं च ततः कल्पलतात्मकमः समुसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च ॥ महाभृतघटसद्भद्व षोडशः परिकीत्तितः ॥ तस्मादाराध्य गोविन्दसुमापतिविनायकौ । महा- दानमसं कुर्याद्विमैश्चैवानुमोदित इति ॥ तथा, षोदश्रारिनमां कुर्वादिमैश्चैवानुमोदित इति ॥ तथा, षोदश्रारिनमां कुर्वादिमैश्चैवानुमोदित इति ॥ तथा, षोदश्रारिनमां कुर्यादिने

हक्ष द्वादश वा करान् । मण्डपं कारयेद्विद्वानः चतुर्भद्रासनं बुधः॥ भद्रासनानि द्वाराणीति केचित । कुण्डसमीपान्यासनानीति परे । तथा, सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराऽथवा । तन्मध्ये तोरणं क्रयात सारदारुमयं दृढम् । षोडशहस्तपक्षे सप्तहस्तदशद्भाद्भाहस्त-योः पञ्चहस्तिति । सा च पूर्वेव निर्णीता । तस्यां मध्यगतमाकुसूत्रे पूर्वपश्चिमयोः शाकेङ्गुदीदेवदारुश्रीपणीविल्वकद्रम्बकाञ्चनादी-नामन्यतमनिर्मितसप्तहस्तं चतुरस्रं स्तम्भद्भयम् । इस्तद्भयं भूमौ स्तम्भयोरन्तरालं तु इस्तचतुष्ट्यम् । तयोरुपरि इस्तमिता चूडा । इस्तमितं सक्ताऽच्छिद्रं वा कार्यम् । एवमुत्तरङ्गोऽपि स्तम्भसजा-तीयकाष्ट्रघटितः पञ्चहस्तः । तयोवितास्त्रिमात्रं त्यवस्त्रा कृतविल-स्तम्भचूडयोर्वितिस्तिमात्रः, स्वकराभ्यां वा स्तम्भविलयोर्निवेश्यः। तदेतत्तोरणम् । उत्तरङ्गमध्येऽघोभागे लौहकटकमङ्कुदां वा की-छेन निवेश्य तदुत्तरकाष्ट्रातः षडङ्गुलावलम्बितुलावलम्बनाय । तुला तु पूर्वोक्ता काष्ठमयी दशाङ्गुलस्त्रवेष्टनस्यूला चतुर्भिः सार्देवी चतुर्भिईसैर्दीर्घा वर्चुछा मान्तयोर्भध्ये च वडङ्गुछोन्मिता चतुरस्रा कार्या । तस्यां च तुलावदीर्घं पदद्वयं चतुष्ट्यं वा निवेदय तयोर्भध्ये च पदत्रयं पडङ्गुलं निवेश्य मध्ये चार्म्ये चतुर्विशाति-र्बन्धा निवेत्रयाः सौवर्णाट्याः।तस्याः षडङ्गुलयोरन्तरयोरधोभागे विडिशाकुतिकटद्वयं निवेश्य तन्मध्ये चोर्ध्वभाग एकम् । ततस्ताम्र-पळानां दशाष्ट्रपट्शतेः ऋमात पञ्चचतुःसार्द्धत्रिपादेशच्यासवर्तुछे पञ्चचतुस्म्यङ्गुलोच्छितान्विते ताम्रचतुर्वेलयान्विते फलके लौहा-भिस्तिहस्ताभिश्रतस्रभिः शृङ्खलाभी रज्जुभिर्वर्त्तुलान्तयोरवलम्बयेत्। यथा फलकयोर्भूमेश्च वितस्तिमन्तरं भवति । हेमाद्रिरूपनारायणा-दिभिश्च काष्ट्रमये फलके उक्ते । तथा, कुर्यात कुण्डानि चल्वारि चतुर्दिसु विचक्षणः 🗱 । सुमेखळायो नियुतानि तानि सम्पूर्णकुम्भानि सहासनानि * मुताम्रपात्रद्वयसंयुतानि सयइपात्राणिसविष्टराणि॥ हस्तपमाणानि तिलाज्यपुष्पधूपोपहाराणि सुशोभनानि । पूर्वीचरे-इस्तमिताऽथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपुजनाय ॥ विस्तारायामोच्छायै-ईस्तमितेति केचित् । वितस्त्युच्छायेति हेमाद्रिः । तदुक्तं, गर्चस्यो-त्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तताम् । वमद्वययुतां वेदीं वितस्त्युच्छा-यसंयुताम् ॥ मात्स्ये, द्विरङ्गुलोच्छितो वमः मथमः समुदाह-तः । अङ्गुलोच्छ्रायसंयुक्तं वनद्रयमथोपरि ॥ द्वाङ्गलेस्तत्र विस्ता-रः सर्वेषां कथितो बुधैरिति ॥ तथा, अनेन विधि ॥ यस्तु तुला-पुरुषमाचरेत् । प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमध्वन्तरं वसेत् ॥ विमा-नेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालगालिना । पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं ब्रजेद ॥ करपकोव्यितं यावत्तस्मिञ्जोके महीयते ॥ कर्मक्षयादिह पुनर्भवि राजराजो मुपालमौलिमणिरक्षितपादपीठः * श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसङ्ख्याजी दीप्तपतापाजितसर्वमहीपछोकः ॥ थो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः कालान्तरे स्मरति वाचय-तीह लोके । यो वा शृंणोति पठतीन्द्रसमानलोकं मामोति धाम स पुरन्दरदेवज्ञृष्ट्रमिति ॥

अथ तुलापुरुषदानमयोगः । अधिवासनात पूर्वदिने क्रुतेकभक्तादिरिधवासनदिने यजमानो देशकाली सङ्कीर्ग्य ब्रह्महसादिसर्वपापनाश्चर्वकस्वमन्वन्तरकालाऽविक्रिक्सार्वलोकपालस्थानाऽधिकरणकवासोत्तरकालाऽप्तरोगणाऽधिष्ठितकालरणिकिङ्किणीगणमण्डितार्कवर्णविमानकरण्वेकुण्ठभुवनगमनानन्तकल्पकोटिशताविध्यूनायुक्तविष्णुपुरवासोत्तरासिलस्पालमोलिमाणिमाणिवयमालोपरिक्तवरणपीठःवविशेषितराजराजत्वश्रद्धानुविद्धयद्वसहस्त्रयाजित्वपदीप्तमतापाशेषमहीपालविषयकामो विष्णुमीतिकामो वा
भाः तुलापुरुषदानमहं मितपादिषण्य हति सङ्कर्ष्य, एकस्या

प्रतिमायां गोविन्दं, परायामुनापतिविनायकौ च गोविन्दाय नर्क जमःपतिविनायकाभ्यां नम इति सम्पूज्य, विमत्रयं च सम्पूज्य_। विपाज्ञां ग्रहीत्वा, पोडशमातृः सप्तवसोधीराश्च संपूज्य, नान्दी-श्राद्धपुण्याहवाचनगुर्देत्विग्द्वारपालवरणतदीयमधुपर्कपूजनानि पु-बीके कृत्वाऽपराक्के गुरुसहितो मण्डपपूजां कुर्यात । तत ऋत्विजः पतिकुण्डमेकैकं कलकार्पाप पूर्वोक्तिर्मन्त्रैः स्थापयेयुः । कलकास्थापनं गुरुः कुर्यादिति परे । तत ऋत्विजः स्वस्वकुण्डेऽनि स्थापयेयुः । ग्रहस्त महावेद्यां षोडशारग्रहवेद्यां च सर्वतोभद्रं विछित्वय तदेव-तास्तस्यामेव वेद्यां पातमासु वा सूर्यादिवनस्पसन्तैकपञ्चाशहेव-ताश्च सम्पूज्य नवग्रहवेदिकलशस्थापनतद्भिमन्त्रणानि प्रांग्वद क्करवा सर्वेकमीध्यक्षतया तिष्ठेत । ऋत्विजम्तु ग्रेहादिहोमसुक्तजप-द्वारा सक्तपाठान माम्बत कृत्वा स्विष्टकदादिपूर्णादुतिमाक्तनं कर्म कुर्यः । भूमिर्भूमिमगान्माता भूमिर्मातरमप्यगात् । भूयाम पुत्रैः पश्चभियों Sस्मान् द्वेष्टि स भिद्यतामिति भूमि स्पृशेत् । ततस्तोरण-इपर्काः । तुलायज्ञस्य पूर्वस्यां सुत्रभं नाम तोरणम् । महावीर्यं महाकार्य सुवर्णसद्दशप्रभम् ॥ अत्र द्वारे स्थितः शैलो माल्यवाश्च महाद्यातिः । एहाहि सुप्रभ तोरण तुल्लायज्ञं रक्ष, विघ्नं नाद्मय । अग्निपीळ इबाह्वानम् । दक्षिणाञ्चां गतं यस्य भौमारूयं नाम तोरणम्। महावीर्यं महाकायं भिन्नाञ्जनसमनभम् ॥अत्र द्वारे स्थितः बैछो विन्ध्यो नाम महाचलः । एहाहि भीमतीरणेसादि पूर्व-बत् । इषे त्वेसावाहनम् । पश्चिमां दिशामित्य सुदंष्ट्रं नाम तोरणम् । द्वारि तत्र स्थितः शैलो गन्धमादनसंज्ञकः ॥ एहाहि सुदंष्ट्रतोरणेत्यादि । अग्र आयाहीत्यावाहनम् । उत्तरस्यां दिश्चि तथा विकटं नाम तोरणम् । महावीर्यं महाकायं शुद्धस्फटिकः-साजिभम् ॥ तत्र द्वारि स्थितः बैछो हिमवांश्च महाद्यतिः ॥ प्र हेहि विकटतोरणेसादि, शको देवीरित्याह्वानम् । पूर्वदिहार-नामानि- पूर्वद्वारं वितानं स्वाइक्षिणं पुष्पकं भवेत । पश्चिमं तु धनं नाम कामदं चोत्तरं स्मृतिमिति ॥ तत, पहाहि वितानद्वारेति तन्नामभिश्चतुर्द्वारावाइनं कार्यम् । अय कुङ्कमपुष्पधृपदीपनेवेद्य-बळीनादाय पूर्वभागे सुभद्राय ऋग्वेदमूर्त्तये इन्द्रदेवस्याय माल्य-बत्पर्वतसहिताय वितानांख्यपूर्वद्वाराश्रिताय द्वारपालसहिताय स-प्रथनाम्ने उद्यत्थतोरणाय नम इति पूजयेद्वर्ति च दद्याद । दक्षिणे शोभनाय यजुर्वेदमूर्त्तये यमदैवसाय विन्ध्यपर्वतयुताय पुष्पकाssख्यदक्षिणद्वारमाश्रिताय द्वारपाछसहिताय भीवनाम्ने औदुम्बर-तोरणाय नम इति । पश्चिमे सुधर्माय सामवेदमूर्त्तये बरुणदैव-स्याय गन्धमाद्नसिहताय घननामपश्चिमद्वाराश्रिताय सुदंष्ट्रप्रक्ष-तीरणाय नग इति पूजयेत् । अथर्ववेदमूर्त्तये सोमदैवसाय हिम-बरपर्वतसहिताय कामदद्वारमाश्रिताय द्वारपालसहिताय विकटा-SSक्यवटतोरणाय नम इति उत्तरे पूजयेतः । मण्डपस्तम्भेषु सर्वे-क्यो देवेश्यो नम इति पूजयेत । वंशेषु किन्नरेश्यो नमः । पृष्ठे पद्मगेभ्यो नमः । ततः क्षेत्रपालाय मण्डपाधः पूजयेद् बार्ल दद्या-स् । कुपुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः । शङ्ककर्णः सर्वनेत्रः **प्र**मुखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ब्रह्मा नामश्च पूर्वादिशैले ध्वजनायकाः॥ कुमुदसहिताय पूर्वध्वजाय नम इति गन्धादि दद्याद । एवं कुमुदाक्षसहितायेत्यादिदशध्वजान् सदेवान् पूजयेद।गुरुर्यजमान-सहितः पुष्पधूपौ मापभक्तविं चादाय तूर्यनादं कारयेन्मण्डप-पूर्वद्वारदेशे । एहाहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्ट्रतो बज्जधराऽमरेश । संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवश्रमस्ते ॥ इतीन्द्रमावाह्य । इन्द्राय नम इति सम्पूज्य, इन्द्राय साङ्गाय सपरि-बाराय सायुधाय सञ्चाक्तिकाय एव पुष्पादिसहितो माष्यकः-

बिक्ति ममेतिबर्लि दयात् । एतमाग्नेय्यादिष्यान्यादिभ्यः । मन्त्रा-स्त - अम् प्रहोहे सर्वा Sपरहव्यवाह मुनिमवीरैरिभतो Sभि-लुष्ट । तेजोवता लोकगणेन सार्द्ध मगध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ॥ पश्चेहि वैवस्त्रत धर्मराज सर्वापरैराचित दिन्यमूर्चे । शुभाश्चभा-नन्दश्चनामधीय शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥ एहेहि रक्षोगण-नायकस्त्रं विशालवेतालपिशाचसंघैः। ममध्वरं पाहि शुभाऽभिनाध छोकेश्वरस्त्वं भगवन्नगस्ते ॥ एहोहि यद्गे मम रक्षणाय सुगाऽधि-रुट: सह सिद्धसंघै: । प्राणाधिप: कालकवे: सहाय गृहाण पूर्जा भगवन् नमस्ते ॥ एह्याहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धेष । सर्वेषिधीभिः पितृभिः सहैव यहाण पूजां भगवस्त्रम-स्ते ॥ पृद्धोहि पातालघरागरेन्द्र नागाङ्गनाकिश्वरगीयमान । यक्षी-रगेन्द्राऽमरलोकसार्द्धमनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥ पृक्षेहि विक्वा-Sिधपते सुनीन्द्रछोकेन सार्द्धे पितृदेवताभिः । सर्वस्य धातास्य-Sमितत्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥ ततः पूर्वस्यां दिशि किश्चिद्धिमेपुपछिष्य । त्रैछोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चरा-णि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥ देव-दानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च॥ एते ममाध्वरे रक्षां मकुर्वनतु मुदान्विताः॥ ब्रह्मा विष्णु-श्च रुद्रश्च क्षेत्रपालो गणैः सह । रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्रन्तु रक्षांसि सर्वतः ॥ ॐ त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्नैलोक्यस्थेभ्य-श्चरेश्यो भूतेश्यो नमः । दानवेश्यः, गन्धर्वेश्यः, यक्षेश्यः, राक्ष-सेभ्यः, वस्रगेश्यः, ऋषिभ्यः, मनुष्येभ्यः, गोभ्यः, देवताभ्यः, ब्रह्मणे, विष्णवे, रुद्राय, क्षेत्रपाळाय, गणेभ्यो नम इति संपूच्य मावभक्तविं द्याद । ततः साचार्यऋतिको यजगानश्ररणौ मक्षाल्य वेद्यामुपविषय पोडबारे तुलां संस्थाप्य तस्यां दक्षिणमा-

न्तादारभ्य सुवर्णादिश्रातुबन्धेषु सूत्रबन्धेषु वा चतुर्विशतिदेवता आवाह्य पूजपेत् । ताश्च- ईशः, शशी, मारुतः, रुद्रः, सूर्यः, विश्व-कर्मा,गुरुः, अङ्किरोऽग्निः,पजापतिः,विश्वेदेवाः,जगद्विधाता, पर्जन्य-शम्म, पितृदेवताः, सौम्यः, धर्मः, अमरराजः, अविवनौ, तुलेशः, मित्रावरूणौ, मरुद्रणः, धनेशः, गन्धर्तः, जलेशः, विष्णुरिति।तत-स्तिसपु मतिमासु गोनिन्दसूर्यधर्मराजानावाह्य सम्यूज्य' गोनिन्द-मतिमां द्वादशाङ्गुलमुक्तादाम्त्रा सुवर्णशृङ्खलया वा तुलामध्ये च क्रम्बयेत् । सूर्यधर्मराजी तुलासमीप एव स्थाप्यौ । ततः सर्वे ऋत्तिकः शान्ति पठेयुः । ततो यजमानकृतस्याधिवासनसाङ्कता-सिद्धये गुर्टीत्वग्जापकेश्य इमां दक्षिणां सम्पदद इति शक्तया दक्षिणां कुण्डलोपवीतकण्डकाङ्गुलीयवासांसि च दद्यात । द्विगुणां गुरवे । ताइने यजमानगुर्दत्विग्दारपालान् । उपवासाधाक्तो नक्तम । जागरश्च नृखगीतादिना।एवं पूर्वेचुरशक्तौ सचो वाऽधिवासनं कृत्वा परेद्यः कृतनिसकर्मा यजमानः स्वस्ति वाचयेत्। ऋत्विजः पूर्ववत स्वस्वकुण्डे पूर्णाहुति स्वज्ञाखया जुहुयुः । कर्मशेषं समापयेयुश्च । अत्र ब्रह्मदक्षिणा पूर्णपात्रक्ष्पा नास्ति । अधिवासनतुलाद्रव्य-द्वानेनान्यत्सिद्धेरिति पितामहचरणानामाशयः । ततो ऋत्विजः पुत्रपत्रीयुतं यज्ञमानं पाङ्मुखमुखमुदङ्मुखं वा कुण्डद्वारग्रहसमी-पुस्थकलक्षीदकरभिषिञ्चेयुः स्वस्वशाखीयैर्मन्त्रैः पौराणश्च । ते तु प्रदर्शिताः, सुरास्त्वामिसादयः । यजमानस्तु सर्वेषिध्यनुष्ठिप्तः स्नात्वा शुक्रमाल्याम्बरः पुष्पाञ्चित्रं गृहीत्वा सफलकां तोरणा-Sत्रलम्बितां तुलां त्रिः मदक्षिणीकृस अनुमन्त्रयेत् । ॐ नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमाश्रिता । साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मि-ता विश्वयोनिना ॥ एकतः सर्वसद्यानि तथाऽनृतशतानि च । श्वमीषमंक्रता मध्ये स्थापिताऽसि जगाद्धिते ॥ त्वं तुछे सर्वभूताः नां ममाणांमेह कीर्त्तिता । मां तोलवन्ती संसारादुद्धरस्व नमोsea ते ॥ योऽसौ तन्त्राधियो देवः पुरुषः पश्चितिकः । स एषां ऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमोनमः ॥ ततः,नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञकात्वं हरे तारयत्वस्मानस्मात् संसारसागरादिति॥त-रप्रतिमामनुषन्त्रय सतुलं गोविन्दं संपुज्य पुनस्तं पदक्षिणीकृत सखडु-चर्भकवचालंकतो हैमो धर्मराजसूर्यस्तयोर्वामदक्षिणकराभ्यामादाय तुलामध्यावलम्वितं गोविन्दं पश्येतः । तुलोत्तराशिक्य आरुह्योप-विशेत तत्र पाङ्गुखः । मात्स्ये, ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विज-मुक्कवाः । समादभ्यधिकं यावत् काञ्चनं चातिनिर्मलम् ॥ पुष्टि-कामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नराधिष्॥ यत्तु, पूर्व द्रव्यन्यामः पृथ्वा-त्तदः रोहणमिति गोपथे । तन्नानापुराणवचनविरोधादधर्वशास्त्रीय-विषयमिति दानसीख्यादी । गोदोहं यावत्स्थित्वैतदुदीरयेत् । नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातिन । पितामहेन देवि स्वं नि-र्भिता परमेष्टिना ॥ त्वया धृतं जगद सर्वे सह स्थावरजङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतेशे नमस्ते सर्वधारिणीति ॥ विक्रपुराणे तु सुहर्त्त-मात्रावस्थानमुक्ता, जपेन्मन्त्रांस्तु पौराणान् पुनन्तु नेति च त-चम् ॥ यथा पवित्रमतुल्लमपसं जातवेदसः। तथा स्वेन पवित्रेण सुवर्णे तु पुनातु माम् ॥ स्ट्रस्य सुमहत्तेजः कार्त्तिकेयस्य सम्भवः । यथाग्निर्देवताः सर्वाः सुवर्णे च तदात्मक्रम् ॥ तथा, यत्क्रतं मे स्वकायेन मनसा वचसा तथा। दुष्कृतं यत सुवर्णस्थं यातु सुन्ति परां शुभामिति ॥ मात्स्ये, ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्द्ध निवेदयेव । ऋत्त्रिभ्भयोऽपरमर्द्धं च दद्यादुदकपूर्वकम् ॥ गुरुवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत् ॥ अत्रेत्यं प्रयोगः । वेदिपश्चिमत उपविश्य मुत्रणीदिकुशोदकेन प्रोक्ष्य जलाक्षतकुशानादाय मासपक्षतिथ्या-द्याञ्चरूप प्रकेकमन्वन्तरकालेखादि राजराजत्वकामोऽहामसन्त

मागुक्तं महाभयोगमुक्ता पापसयकामो वा विष्णुपीतिकामो वेसाधुष्णिख्यामुक्तमोशायामुक्तर्राभेणे गुरवेऽमुक्तरामी इदं तुलापुरुषमुवर्णार्द्धमान्देवतं संगददे, न ममेति गुरुवेऽद्धं मुवर्णं दद्यात ॥
एवमपरार्द्धमान्विरुश्यः । दानसागरादिमते तु वरणक्रमेणाचार्यकराऽधः स्थितोत्तानकरेभ्यः सर्वेभ्यो गुगपदेव गोत्राधुचारपूर्वकमुत्स्रुष्ण्य
आचार्यादिभ्यो यथाविभागं मतिपादयेत । अदक्षिणं तु यद्दानं तसर्वं निष्फलं भवेदित्युक्तत्वादत्र दक्षिणापेश्वया गुरवे म्रामरत्वादीति श्रुतं दक्षिणात्वेनान्वेति । म्रामरत्वदक्षिणाऽपि सत्रियकर्त्वेके दाने । अन्यकर्त्तृके तु मुवर्णदक्षिणति देमाद्दिः । ततः पुनमासाधुङ्खिष्य कृतेन्तुलापुरुषमहादानमतिष्ठासिद्ध्यर्थं शतं मुवर्णदक्षिणाम्रामरत्नानि गुर्वेत्विग्ययोऽदं सम्भदद इति तद्धरते ज्ञकं
सिपेत । पश्चादाचार्यादिभ्यो भागशः मतिपादयेव ॥

क्ष्यनारायणादयस्तु, गुरवेऽद्धंदानानन्तरं सुवर्णसात्रं दक्षिणां दत्वा । पुनक्षेश्योऽष्टऋत्विग्श्योऽद्धंदानानन्तरम् एकैकं सुवर्णं दक्षिणां दद्यादिसाहुः ॥

अन्ये तु, अन्येषामिष तुलाद्र न्यदानानुद्वार्थं ग्रामरत्नानि तिन् वेदयेद । दक्षिणा तु, सर्वेषाभेत्र दानानामिति सामान्यन्यायेन सुवर्णम् । तत्रापि संख्याकाङ्कायां, गोषयोक्तसहस्रसंख्यान्वयः । सोऽषि कृष्णलादिभिनिर्वाद्य इसाहुः ॥

अत्र दानसारे त्रयः पक्षाः । आधेऽद्धें गुरतेऽद्धंसृत्विग्म्य इति । अत्र अदक्षिणं तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेदिति वचना-दक्षिणापेक्षायां गुरवे ग्रामरत्नादीत्युक्तम् । जापकेभ्यः पुनर-न्यद्गव्यं देयम् । तेषु ऋत्विकत्वाभावात् । द्वितीयस्तु, भाष्य तेषा-मनुज्ञातं तथाऽन्येभ्योऽपि दापयेदिति । तत्र गुरवे तुलाद्रव्यस्या-ऽद्धिश्रतुर्यो वांकाः। तुलाविकृतिभूते धरादाने धरार्द्धं चतुर्यामं गुरवे तु निवेदयोदिति श्रुतमत्रापि परिमाणापेक्षयाऽन्वेति । सत्रोक्तर्वाद्विपादिन्यवस्था ज्योतिष्टोमे, येन वा तुष्यते गुरुरिति सामाम्योक्तं
वा । दीनानाथविशिष्टादीम् पूजयेद् बाह्मणेः सहस्रेनेन तृतीयः
पक्षः । तत्रापि गुरवे दाने द्वितीयपक्षोक्तेव न्यवस्थिति विशिष्टा
बाह्मणा अपि। अनयोः पक्षयोजीपकादिभ्योऽप्येतन्मध्यस्थमुवर्णदाने न क्षतिरिति । अत्र पक्षत्रयेऽपि, गुरवे ग्रामरत्नादि । सवैवामेव दानानां मुवर्ण दक्षिणेष्यत इसादिनोक्तं मुवर्णमेव मसेकं
समुदायेन वा देयमिति ॥

मदनरत्ने गुर्दित्वगनुज्ञयाऽन्येभ्योऽपि देयमिति द्वितीयपक्षे बुखाद्रव्यं त्रेषा विभन्यैकोंऽशो गुरवे देयोऽन्य ऋत्विग्र्यः, परी ह्वारपालेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च । तृतीयपक्षे तु एतत्तुलितसुवर्णं गुर्धे ऋत्विग्भ्यो द्वारजापकेभ्योऽन्येभ्यश्च दीनानाथभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दातुमहमुत्स्रज्य इत्युत्स्रज्य दद्यात् । सर्वपक्षे दक्षिणा गुर्द्यत्विम्भ्य एन, नान्येभ्य इत्युक्तम् । अत्र प्रतिग्रहे ब्राह्मणे यजनाने सप्रणवं स्पत्तीति शब्द मुचैः पटेयुः । क्षत्रिये निरोङ्कारं मन्द्रम् । वैक्ये खपांश्च । ग्रुद्रे मनसा ॥ ततो द्रव्यं स्ट्रष्ट्वा स्वशाखोक्तां कामस्तुर्ति पठे।दिति रूपनारायणीये । अथर्यणानां तु, क इदं कस्मा अ-दाद कामः कामायादाद कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता। कामः समुद्रमाविश्वतः कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते भूमि-स्त्वा प्रतिग्रह्णात्त्रन्तरिक्षमिदं महत् । माऽहं प्राणेन मात्मना मजया मतिगृह्य विराधिषीयेति । ततः सहस्रं विमान् भोजयेत सङ्करपयेद् वा । ततः पुण्याहवाचनं कृत्वा स्थापितदेवतापूजनं कुर्याद् यजमानः । गुरुस्तु, यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिनीम् । इष्टकाममसिद्ध्यर्थे पुनरागमनाय चेत्याशुक्का पीठा-दिदेवता विसर्जयेद । ततो मण्डपादिसामग्रीम । आचार्याय

मितपादपामीत्युक्ता गुरुतात कुर्पात । मात्स्ये, न चिरं धारयेद् गेहे सुवर्ण मोक्षितं बुधः । तिष्ठज्ञपावः यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम् ॥ बीघं परस्वीकरणाच्क्रयः मामोति पुष्कछमिति ॥ इति तुछापुरुषदानविधिः ॥

अथ रजतादितुळाविधिः । भविष्योत्तरे, अनेनैव विधानेन केचिद्रप्यमयं पुनः । कर्पूरेण तथेच्छन्ति केचि इ ब्राह्मणपुङ्गदाः॥ अनेनेति मुख्यतुळापुरुषदानकथितेनेसर्थः । रजतादितुळापुरुषफ्छं च, यत्पापं स्वकुछे जातं त्रिसप्तपुरुषैः कृतम् । तदः सर्वे नञ्याते क्षित्रमग्नी तुलं यथा तथेसादिना गोपथब्राह्मणादौ पापविशेषसय-सूर्यलोकावाप्यादिरूपमुक्तम् । तथां सिततृतीयायां नार्यः सौ-भाग्यदास्तुलः प । कुङ्कुपेन प्रयन्छन्ति लत्रणेन गुडेन वा ॥ नं तत्र मन्त्रा होमो वा एवमेव मदापयेत् ॥ विश्वामित्रः, आदिसे राहुणा ग्रस्ते सुवर्णेस्तोलयेत्तनुम् । सोमग्रहे तु रौष्येण यथा दानं तथा शृष्ण ॥ प्रवर्ग्यस्य मुखे युक्त उत्पन्नः पक्षि देहतः। सर्वपापहरा-चैनद् ददाभि भीयतां त्रिधुः ॥ इत्युचार्य जलं त्रप्तु निक्षिपेह्मिन-सत्तमः । प्रीयतां पितरः कांस्ये ताम्रे चैत्र पितामहः ॥ लत्रणे सिन्धुने लक्ष्मीः पीयतां पार्वती गुडें । गन्धेर्गुडेर्वा वासोभिः सौ-भाग्यं छवणे परम् । मीयतां विश्वपात्रीति दानमन्त्रोऽभिधीयता-म्।। तुलापुरुवतो राजन् याति तत्परमं पदम् । सर्वपापविशुद्धात्मा मुक्ति यासपुनर्भवाम् ॥ अत्र सर्वपापहरायैतद्भिषीयतां विधारित रूप्ये । पितरः शीयन्तामिति कांस्ये । गन्धगुडवासस्तुलायां पार्व-ती । छत्रणे विकाधात्री । आत्मतुल्यं सुत्रणं वा रजतं रत्नेभेत वां अ यो ददाति द्विजाग्न्येभ्यस्तस्याष्येतत्फल्लं भवेदित्युक्तत्वाद रतनः तुलायामापे सुवर्णतुलाफलमेव । इतिकर्त्तन्यताऽपि सेवेति केचि-व ॥ इति इत्यादितुलापुरुषः ॥

अथ नानारोगद्यादिस्तुलाविधिः । गारुडे, तुलापुरुषदानस्य श्रृण मृत्युअयोदकम् । अथ छोहं मदातव्यं सर्वरोगोपज्ञान्तये ॥ कास्यं च यक्ष्मके देयं त्रपुं चार्शोविकारके । अपस्मारे च सीसं स्यात्ताम्रं कुष्टे सुदारुणे ॥ पित्तलं रक्तिपत्ते च रूप्यं महर्मेह-योः । सौवर्णं सर्वरोगेषु पदद्यान्मृत्युनोदनम् ॥ फलोद्भवं तथा देयं ग्रहणीदारुणे रुजि । गौडं भस्पकरोगे च पौगं तु गण्डमाळ के ॥ जाङ्गळं चाग्निमान्द्ये च रोमोत्पाते तु पौष्पकम् । जाङ्गळं काष्ट्रजम् । मधुद्भवं तथा देयं कासभ्यासजलोदरे॥घृतोद्भवं तथा देयं छाईरोगोपशान्तये।क्षीरम्पित्तविनाशाय दाधिकम्भगवारणे॥ छावणं वेपनाशाय पैंष्टं दद्दुविनाशने । असं च सर्वरोगस्य नाशने स्मृतमेव च ॥ अत्र तत्तत्तुलादाने मासाधिदेवताः पूज्याः । ताश्च गारुडे — छोहे महाभैरतः । कांस्पेऽकितनौ पूषा च । सीसके वायुः । ताम्रे सूर्यः । पैत्तले कुजः । रीप्ये पितरः । सुवर्णे देव-ताः । फले सोगः । गुडे आपः । ताम्बूले विनायकः । क्रसुमे गन्धर्वाः । जाङ्गलेऽग्निः । मधुनि यक्षः । घृते मृत्युञ्जयः । क्षीरे तारागणाः । दक्षि सर्पाः । पिष्टे प्रजापतिः । अन्ने सर्वदेवता इति॥

अथ घृतादितुलाविधः। विष्णुप्रमींतरे, पुण्यं दिनमधासाध मृतीयायां विशेषतः। गोमयेनातुलिसायां भूमौ कुर्याद्धं राभम्॥ दारवं रामदःसस्य चतुर्दस्तममाणतः। सुप्रणं तत्र वसीयाद स्वतस्या घटितं घटे ॥ सौवर्णं स्थापयेत्तत्र वासुदेवं चतुर्भुजम्। शिक्यत्रयं तु बसीयाद स्थापयेत् पिटके ततः ॥ तत्रारुदेवं सब्ह्रास्त्रः पुष्पान् लङ्क्ष्रारम्षितः। अभीष्टां देवतां एव स्नापयित्वा घृतादिभिः॥तुलान्दानस्य सर्वस्य विधिरेष मकीर्तितः। मथमा तु घृतस्योक्ता तेजोन्द्राद्धितरी तुला। ॥ मासिकेण तु सौभाग्यं तैलेन बहुलाः प्रजाः। बह्मस्य दिन्यवस्त्राणां प्रामोति तुल्या धृतम् ॥ लन्यस्यात्

लावण्यमरोगित्वं गुडस्य तु । असापत्न्यं शर्करया सुद्भपं चन्दनेन च ॥ अवियुक्ता भवेद्भर्त्रा तुलया कुङ्कमस्य च । न संतायो हृदि भवेद शीरस्य तुल्या सदा ॥ सर्वकामपदाः सर्वाः मर्वपायसयङ्क-राः । यो ददाति तुलाः सर्वाः स गौर्यालयमाप्तुपादः ॥ मन्त्रेण दद्यादाभेगान्त्रितां तु सकृत् तुलामेकतमां द्विजेभ्यः * स याति गौर्याः सदनं सुपुण्यं न शोकदौर्गसमुपाञ्चने पुमान ॥ त्वं तुले सर्वभुतानां प्रमाणं परिकीश्विता । मां तोल्यन्ती संसाराइद्धरस्व नमोऽस्तु ते ॥ इसारुह्य क्षणं स्थित्वा चिन्तयित्वा इरिमियाम् । अवरु ततो दद्यादर्घपाद्यमथापि वा ॥ गुरुं सम्पूज्य विधिवतः सर्वालङ्कारभूषणैः । विसर्ज्ञयेश्वमस्कृतः भोजधित्वा विधान-तः ॥ दोषं द्विजेभ्यो दातव्यं स्त्रीभ्योऽन्येभ्यस्त्रयेव च । इष्टबन्धु-विशिष्टानामाश्रितानां कुदुम्बिनाम् ॥ कदलीदलसंस्यां तु पञ्च-पिण्डां हिमादिजाम । कर्पूरस्य तुलां पूज्य कुङ्कुमेन लभेनु ता-म् ॥ गुडं वा यदि वा खण्डं छवणं वाऽपि तोछितम् । यो दद्या-दात्मना तुल्या नारी वा पुरुषोऽपि वा । पुमानः प्रद्युम्नवदः स स्यात्रारी स्यात् पार्वतीसमेति ॥ तुलादानस्य सर्वस्य विधिरेष खदाहृतः ॥ इति क्ष्यादितुलादानांविधः ॥

अथ रूप्यादितुलादानप्रयोगः। तत्र रूप्यकपृरतुलयोः सु-वर्णतुलाफलमेन, इतिकर्त्तन्यताऽपि पक्षे सैन । रत्नतुलायामपि तदेन फलम् । फलेषु रोगेषु च निशेष इति केचितः । तत्र वस्त्रं गन्धे फुङ्कुमे लन्नणे गुडे मधुनि च सौभाग्यम् । वस्त्रेषु वस्त्रमाप्तिश्च । लन्नणे लावण्यं च । कुङ्कुमे भर्नऽनियोगश्च । तेले वहुलाः म-जाः ॥ सर्वरोगेषु लोहम् । यहमणि कांस्यम् । अशिस्र लपुः । अपस्मारे सीसम् । कुष्टे तास्त्रम्। रक्तिपत्ते पित्तलम् । प्रद्रमह्योः रूप्यम् । सर्वरोगेषु मृत्युनिनारणार्थं च सुवर्णम् । प्रद्रण्यां फल्ड- म । भस्मके सर्वरोगेषु च गुडः। गण्डमालासु पूगफलम । अग्निमान्ये काष्ट्रम । वासुने रोमनाशे पुष्पम । कासश्वाजलोदरेषु मधु । छदौँ घृतम । तेनोटल्सर्थम । पित्ते क्षीरं सन्तापित्तरसर्थं च । भगन्दरे दिध । कम्पे लगण्म । दहुणि पिष्टम । सर्वरोगेषु अश्वं शर्करपा सापत्त्यम । चन्दने सौन्दर्यम । सर्वासु वा तुलासु सर्वाणि फलानि । अत्र तत्तत्तरललकामस्य तत्तद्रागिनिटित्तिकामस्य वा तत्तद्रव्यतुला श्रेषा ॥ अथ तत्तद्रव्येषु देवताः । लोहे महा-भैरवः । कस्ये प्वाऽविवनौ च । सीसे वासुः । ताम्रे सूर्यः । पित्तले कुजः । रूप्ये पितरः । सुत्रणें सर्वदेवताः । फले सोमः । गुडे आपः । ताम्बुले विनायकः । पुष्पे गन्धर्याः । काष्टेष्विः। मधुनि यक्षः । घृते मृत्युक्षयः । क्षीरे तारागणः । दिव्न सर्याः । पिष्टे प्रजापतिः । अने सर्वदेवताः ॥

तुला तु शाकेङ्गुदीदेवदारुश्रीपणीविल्वकदम्बकाञ्चनादि-काष्ठमपी सार्द्धचतुरस्रहस्ता दशाङ्गुलस्त्रवेष्टनस्यूला वर्षुला मान्तयोभध्ये च पडङ्गुलभिता चतुरस्रा कार्या। तस्याः षडङ्गुल-योरन्तरयोरधोभागे बिडशाक्तिकटकद्वयं निवेश्वपम् । मध्ये चोध्वं-भागे एकं तस्याः समान्तराश्चतुर्विश्वतिवन्या धातुमया निवेश्याः । एकं फलकद्वयमपि पञ्चचतुःसार्द्धतिन्रादेशमितं व्यासदृष्तं चतुरस्रं बा पञ्चचतुरुव्यङ्गुलोच्लित्रतान्तवन्यनार्थं त्रिभिश्चतुर्भिर्वा कटकै-धुतं कार्यम् ॥

अथ साम्प्रदायिकः प्रयोगः । कर्त्ता मासपक्षाद्युत्थिळ्ल्याः ऽमुककामोऽमुकरोगनिष्ट्रिकामः सर्वत्र गौरीसदनमुपुण्यप्राप्तिः शोकदुर्गतिनिष्ट्रिकाम ईश्वरपाप्तिकामो वाऽमुकतुळादानं कारिष्य इति सङ्करूप्य गणेशपूजाचार्यवरणतत्पूजनानि कुर्याद । स्वस्ति-वाचनमातृकापूजनाभ्युद्यिकश्राद्धान्यपीति केचिव ।तत आचार्यो पत्रसंस्थितम्ब्पात् विकीर्ष, श्रची वो हब्बेति त्चेन, एतान्विन्द्र-पिति तृचेन, आयो हिष्टेयादिभिः कर्मभुतं मन्योक्ष्य, स्वस्तयनं ताह्पीमिति मन्त्रद्वयं अध्वा पूर्वीकां महाभैरववेदिकां तत्तदृदृष्य-देवतां गोविन्दं मुर्थ धर्मराजं च प्रतिमाचनुष्टयं सम्पृत्रय नुलां गन्त्रादिभिरलङ्कत्य तस्यां धातुमयेषु सूत्रमयेषु वा चतुर्विकाति-बन्वेषु देवतास्तत्तवामभिश्चतुर्ध्यन्तनमोऽन्तेरावाह्य पूजयेतः। ताश्च ईशः १ शशी २ मारुतः ३ रुद्रः ४ सूर्वः ५ विक्वकर्मा ६ गुरुः ७ अङ्गिरोडदी ८ प्रजापतिः ९ विश्वेदेवाः १० जगद्विपाता ११ पर्जन्यज्ञाम्भू १२ पितृदेवताः १३ सौम्यः १४ धर्मः १५ अमर-राजः १६ अध्विनौ १७ तुलेशः १८ मित्रावरुणौ १९ मरुद्-गणाः २० धनेताः २१ गन्धर्वः २२ जलेताः २३ विष्णुः २४ इति।ततस्तुलामुत्तरङ्गादिषु बद्ध्वा फलकद्भयं तथाऽवलम्बयेचया भूमेर्वितस्तिनात्रमुच्चं भवेत । गोत्रिन्दमतिमा च हेमशृङ्खस्या मुक्तादाम्ना सुत्रान्तरेण वा द्वादशाङ्गुलेन नुलामध्येऽवलम्बनी-या । ततो यजपानः पुष्पाञ्जलि गृहीत्वा तुलां विःपदक्षिणीकु-.त्यानुगन्त्रयेत् । ॐ नगस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं ससमाश्रिता । साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विकायोनिना ॥ एकतः सर्वसद्यानि तथाऽनृतज्ञतानि च । धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापिनाऽसि जगद्धिः ते ।। त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणिपद्द कीर्त्तिता । मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ॥ योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशतिः । स एपोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नम इति ॥ नमो नमस्ते गोविन्द् तुलापुरुषमंज्ञक । त्वं हरे तारयत्वस्मानस्मात् संसारसागरादिति गोविन्दमनुमन्त्र्य, पुन-स्तुलां गोविन्दं च सम्पूज्य पुनः भद्क्षिणीकृत सूर्यं दक्षिणे करे भगराजं च नामे आदाय तुलावलम्बितं गोविन्दं प्रयन्तुः

त्तरशिक्ये पाङ्गपुख उपविशेष । ततोऽपरे शिक्ये आचार्या-दयो द्रव्यं न्यसेयुः । ततो मुहुर्त्तं गोदोहनपात्रं वा स्थित्वा पठे-त् । ॐ नमस्ते सर्वभृतानां साक्षिभृते सनातनि । पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्टिना ॥ त्वया घृतं जगद सर्व सह स्थावर-जङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतेशे नमस्ते सर्वधारिणीति ॥ ततोऽवतीर्य देशकालौ स्मृत्वा अमुकफलकामोऽमुकरोगनिष्टत्तिकामः सर्वत्र गौरीसदनपुण्यमाप्तिशोकदुर्गतिनिटिचकामईश्वरमीतिकामो वा इद-मात्मसमतोलितममुकद्रव्यममुकदैवतमाचार्यादिविषेभ्यो नानानाम-गोत्रेभ्यो दातुमहमुत्स्त्रेन, न ममेति जलं क्षिपेत् । तत्र कांस्ये पितरः पीयन्तामिति बदेत् । ताम्रे पितामहः भी० । छवणे छक्ष्मीः मी**ः । गन्यगुडवस्त्रेषु विक्वधात्री । गुडे** पार्वती मी**ः । तत** आ-चार्याय शक्त्या दक्षिणां दद्यात । आचार्यस्तु तत्तद्देवतां गोविन्दं सूर्य धर्भराजमीशादीश्च सम्पूज्य, उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इत्यु-त्थाप्य, यान्तु देवगणा इति विस्रजेत् । ततो यजमानः प्रतिमादिं-माचार्यकरे प्रतिपाद्य त्रीन् विपाद सम्भोज्य भूयसी दक्षिणां दद्यात् ॥ इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मजनीलकण्टकृते दानमयुले रूप्यादितुलादानप्रयोगः॥

अथ हिरण्यगर्भदानम् । मान्स्यं, अथातः संप्रवस्यामि हेम-दानमनुत्तमम् । नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम् ॥ पुण्यं दिनमयासाद्य तुळापुरुषदानवदः । ऋत्विङ्गमण्डपसम्भारभृषणा-च्छादनादिकम् ॥ कुर्यादुपोषितस्तद्वच्छ्लोकेनावाहनं ततः ॥ उपो-षित जपकान्तोपवासः । पुण्याहवाचनं छत्वा तद्वद्य छत्वाऽधि-वासनम् । ब्राह्मणैरुक्वेद्व कुण्डं तपनीयमयं छत्मः ॥ द्वासप्तय-इङ्कलोच्छायं हेमपङ्कलगर्भवदः। त्रिभागहीनविस्तारं प्रशस्तं मुरजा-६ऽकृति ॥ ब्राह्मणैर्गुर्हत्विगिभः सह यज्ञमान हति कपनारायणः। उचकुरश्च । तेरेवानपेदिति मदनरत्नादौ । कुण्डं हिरण्यगर्भेहेमपङ्क-जेति । अधोभागमध्यस्थिताऽष्ट्रदलहेमकमलयुतम् । त्रिभागेति । अष्टाचित्वारिशदङ्गलविस्तारम् । मुरजो मृदङ्गः । तदाकृति मध्ये किञ्चित्स्थूलिमिति उक्कुरः । मूलपव्याप्रेषु समामिति वाचस्पति-मिश्राः । दानसागरे तु तिस्तारमिसस्याग्रे आज्यक्षीराभिपूरित-तमिति पाठः । तत्र नुल्याभ्यामाज्यक्षीराभ्यामेकदेशे पूरितामिस-Sर्धः । अभिरभाग इसभेरेकदेशवाचित्वात । दशान्त्राणि सस्त्रा-नि दात्रं सुचीं तथैत च । हेमनालं सिपटकं बहिरादिससंयुते ॥ तथैवावरणं नाभेरुपवीतं च काञ्चनम्॥पार्वतः स्थापयेत्तद्वद्वैमं दण्डं क्रमण्डलम् । आन्त्राणि दशासण्डानि । अभ्राणीति वा पाठः । तत्र अभाकाराणि सुवर्णसण्डानीति हेमाहिः । अस्त्राणीति दामोदरः। तानि च तेत्रेव । खडुश्चकं दण्डः पादाः ध्वजः। गदा शुरुं परशुकुलिशाख्यानि दश । रत्नानि पञ्च मसिद्धानि । पिटकं मञ्जूषेति हेमाद्रिः।स्थलाकार उपेत्रशनपट्टइति दामोदरः। दात्रं नालच्छेदनार्थम्। सुची कर्णवेषार्था। नाभेरावरणं वस्नाकार-म् । जपवीतमुपनयनार्थम् । दण्डकमण्डल् समावर्त्तनार्थौ । एतानि दशाखण्डादीनि हैमानीति हेमाद्रिः । नालोपवीतदण्डा एव हैमाः। अन्यत्तु पक्ततमेव ग्राह्मामिति तु युक्तम्। स्त्रेषु सर्वेरथहैमत्वाङ्गीका-रातः । अत्रास्त्राणीयनेन स्त्रादिदशकमेवोच्यत इति दानसागरः । दशाक्त्रास्त्राणि चेति रूपनारायणः । दशान्तानीति भूपाछः। दशाद्धीनीति पाठे रत्नविशेषणं चेदम् । पञ्चरत्नानीत्वर्थ इति विद्याघरः । आदिससंयुतम् आदिसन्तिमायुतम् । तथा, पद्माकारं पिधानं स्यातः समन्तादङ्खलाधिकम् । मुक्तावलीसमोपेतं पद्मराग-दलान्त्रितम् ॥ तिलद्रोणोपारेगतं वेदीमध्ये ततोऽर्चयेद् ॥ पात्र-असादेकाङ्कुलेन समन्ताद्धिकमष्टदलकमलाकारं पिधानं स्याद् ।

द्रोणः परिभाषायां क्रेयः । कुण्डहेममानं तु यावता तदुक्तप्रमाणं पद्ये ताबद्गाह्यम् । लैङ्गे तु । कुर्यात् सहस्रकर्षेण अधःपात्रं हिरण्यतः। तदर्द्धेनार्द्धपात्रं तु सहस्रोण द्वयं तु वा ॥ त्रिपादं वार्द्धपादं वा स-पादं सार्द्धमेव वा। द्विगुणं वा पकर्त्तव्यं यथालाभं तु वा भवेत्॥ सद्भाजं वा तत कृत्वा स्वर्णपादैस्तु वेष्ट्रयोदाति हेममानमुक्तम्।ततो मङ्गळशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च । सर्वीषध्युदकेनैव स्नापितो वेद-पुङ्गवैः ॥ शुक्कमाल्याम्बरधरः सर्वोभरणभूषितः। इममुचारयेन्मन्त्रं पृहीतकुसुमाञ्जलिः । उचार्यामन्त्रणमन्त्राः प्रयोगे द्वेयाः । एव-मामन्त्र्य तन्मध्ये आविदयास्त उदङ्गुखः । मुष्टिभ्यां संपरिगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ। जानुमध्ये शिरः क्रत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम्॥ तथा, गर्भाधानं पुसवनं सीमन्तोत्रयनं तथा । कुर्युाईरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥ गर्भाधानादिग्रहणमनवल्लोभस्योपलक्षणम् । प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां सेवनं तत्र आचरेता दुर्वारसेन कर्त्तव्य व्याहृसा च घृतादुतिरिति हेमाद्रौ वातुलोक्तेः।गीतमङ्गलशब्देन गुरुरुत्थापये-त्ततः।जातकर्मादिकाः कुर्यात् क्रियाः षोडश चापराः॥जातकर्मादि-का अपराश्च क्रियाः कुर्यात।तेन षोडश सम्पद्यन्ते इत्पर्थः । एव-मेव हेमाद्रिरूपनारायणादीनाम आश्वयः । तेन गर्भाधानपुंसवन-सीमन्तोन्नयनानवलोभनानि गुर्वाद्यन्यतमः कुर्याद्याततो गुरूर्यजमान-मुत्थापयेत्। ततो जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणात्रपाशनचूडोपनयन-वेदवतचतुष्टयसमावर्त्तनोद्वाहाः कार्याः । हेमाद्रौ तु जातकर्मादिषु माजापसेन्द्राभेयसौम्यवतचतुष्ट्यगोदानसाहिसेनोद्वाहत्यागेनद्वादश-त्वमुक्तम् । जातकर्मादिषु विवाहापित्यज्ञप्रवेशनं च पोडश चापरा इति यथाश्रुतमेव योज्यमिति मदनदामीदरौ ॥

एते च जातकर्माद्याः संस्कारा यजमानशाखयेति तयोराद्यो भुरोः कर्त्तव्यत्वाचळाखयेति परः । युक्तं तु । समावर्षनोद्धाहः पञ्चयझा यजमानेनेव स्वशाखया कार्याः । इतरे तु गुरुणा यज-मानशास्त्रयेवेति । फलिशास्त्रेतिकर्त्तव्यत्येव तेषां फलजनकत्वस्य क्छप्तत्वातः । कर्मान्तरत्वे तु जातकर्मादीनां मानाभावः । सर्वेभ्यः कर्मभ्यो दर्शपूर्णमासावित्यत्र वाऽऽख्याताभावेन प्रकरणान्तरायो-गात्। त्रैथातवीया दीक्षणीयेतिवन्तु तान्येव जातकर्मादीनि दानाङ्गतया विनियुज्यन्ते । कर्मान्तरत्वेऽपि चैतेषां जातकर्मादिविक्वतित्वेन फलिशाखीयैव इतिकर्त्तन्यता प्राप्तीति, न गुरुशाखीया । तेन गुरुरेव यजमानशास्त्रीयो भवसस्मिन दाने । अध्ययनसिद्धन्नान-वन्त्रातः । अत्रेगुण्याय । सत्र इत्र समानकल्पा यजमानाः । ते च संस्कारास्तत्कर्मानुष्यानपूर्वे तत्तत्प्रधानमन्त्रपाठपात्रेण कार्याः । स्त्रीशुद्रकर्त्तेके मन्त्रवत्तदनुध्यानमात्रम् । तत्र स्त्रिया जातकर्मनाम-करणनिष्क्रमणात्रपात्रानचुडाकर्मविवाहारूयसंस्कारपट्कम् । तत्रा-ऽपि विवाहः समन्त्रकः। शुद्राणां तु एते पट् पञ्च महायज्ञाश्चेये-कादशातुष्यानक्ष्पा एवेति सर्वे निवन्धकृतः। शिष्टास्तु वैवर्णिक-कर्त्तृकेऽप्यमन्त्रकानुध्यानमेवाचरन्ति । युक्तमिव चेदम् । सर्व-पदार्थसारो मन्त्रमात्रपाठे मानाभावात् । आप्यं तु खरूपत एवा-Sनुष्ठानं सर्वेपाम । यत्तु दागोदरो गर्भाधानादीनां कुण्डे विवाहस्य चातत्कालेऽसम्भवाद समन्त्रकानुध्यानमेव कार्यामिति । तस्र । दुर्वारसेन कर्त्तव्यं सेचनं दक्षिणे पुटे । औदुम्बरफलैः सार्द्धमेक-विशत्क्रशान् सदा ॥ शक्ताय तावदेवात्र कुर्याद सीमन्तकर्भणि । अनुपाशनके विद्वान भोजयेत पायसादिभिः । एवं विश्वजिद-न्ताश्च गर्भावानादिकाः क्रियाः । शक्तिवीजेन कर्त्तव्या ब्राह्मणै-र्वेदपारगैरिति लिङ्गपुराणात् । दक्षिणपुटे अधःपात्रगतरन्त्रयो- . र्मध्ये दक्षिणरन्ध्रे । यत्तु हेमाद्रौ टोडरानन्दे च, उपरिपात्रगत-रन्त्रयोशित । तम । अत्रःपात्रे स्परेहिन्यां गुणत्रयसमन्त्रितामः 🕸

चतुर्विशातिकां देवीं ब्रह्मविष्णविष्णिम् ॥ अर्ध्वपात्रे गुणातीतं षट्त्रिशारूपमुमापतिम् । आत्मानं पुरुषं ध्यायेत् पञ्चविशकमन्त्र-जिमति ॥ छैङ्गे अधःपात्रस्यैव स्त्रीह्रपतोक्तेः । ताबदेवेसेवकारण अङ्गान्तरपरिनंख्या । अत्र होवावपन्तीतिवत् । तेन गृह्याग्नेरिप निष्टत्तिः । उद्रहेत कन्यकां कृत्वा त्रिशन्तिष्केण शोभनाम् अलं-कृत्य तथा हृत्वा शिवाय विनिवेदयेत ॥ अत्र चतुःसीवर्णिको निष्क इति केचित । पर्पञ्चाशदधिकद्विशतपणमित इति मास्क-राचार्याः । दीनारोऽपि च सुवर्णनिष्क इसमरः । सुवर्णपर्याय इत्यन्ये । तेषां शक्तया च्यवस्था ॥ दुर्वारसासेको यजगानस्य पितरौ तत्स्थानीयं वा मिथुनमानीय तथोरन्यतरेण कारयेहुरुः। कर्त्तारं भार्यया युक्तं सर्वालङ्कारशोभितम् । आनीय कुर्वात्तत्स्य-स्य गर्भाधानादिकाः क्रियाः ॥ भार्यादश्चपुटे दुर्वारससेचनमाचरे-त् । एकविंवातिसंख्यातानुदुम्बरफलान्वितान् ॥ कुशानानीय शक्तयाऽथं कुर्यात् सीमन्तकर्म चेति कामिकोक्तेः॥ प्रजावज्जीव-पुत्राभ्यां सेचनं तत आचरेत । दुर्वारसेन कर्त्तव्यं व्याहृत्या च घृताहुतिरिति हेमाद्रौ वातुलोक्तेश्च । प्रजावत-आ ते गर्भ इयादि। जीवपुत्रम् अग्निरेतु प्रथम इत्यादि । सत्यपि वा केषाञ्चिद-ऽसम्भवेन सर्वेषामनुष्यानमात्रं युक्तम् । यत्तु अन्नप्राशेन भुक्तवतः कर्पानुष्ठानविरोध इति । सोऽपि हविःशेषभोजनवद्विहितत्वाद्यपा-स्तः। किञ्च सर्वेरिप पयोगे न सर्वे संस्कारमन्त्रा उक्ताः। चौलादौ होंनमन्त्रा उक्ताः। अथ प्रधानकरणीभूता एव मन्त्रा अभिमेतास्ततो गर्भाधानेऽपनः शोशुचद्घमिति मुद्धीभिमशैनार्थसुक्ताचङ्गमन्त्रस्य समावर्त्तने होमसाधनस्य ममाउने वर्च इति सक्तस्य तत्रैव, स्मृतं च म इत्यादे छिखनं विवाहादौ च भार्यात्वोत्पादकप्रधानभूतहोषसप्तपदी-मन्त्राणामाळिखनमिति कथमिदं पूर्वापरविरुद्धं ममाणशुन्यमेतेषां

लिखनमाद चें व्यम्। अतः स्वरूपत एव कार्याः सर्वे। तत्र प्रवीदि कुण्डै-ध्वेत्र क्रवाद् ऋगादिशास्त्रीययजगानसंस्कारप्रधानहोमाः कार्याः। उद्घेखनोपलेपनेष्याऽऽधानाघाराज्यभागाः स्विष्टकुदायुत्तराङ्गानि च न कार्याणि । तद्वपकाराणां सिद्धत्वाद । पशुनन्त्राऽन्तःपाति-पुरोडाको प्रयाजानुयाजनानुष्ठानवतः । पाश्चकरैव तैरुपकार-सिद्धेः । अत्र गर्भाधानादित्रयनिष्क्रपणश्राद्धमहितपोहग्रसंस्कार-पक्षे निष्क्रमणश्राद्धयागेन पञ्चयज्ञसाहिसेनोनविंदातिपक्षे वा गर्भाधानसीयन्ते तावत्कर्भान्तरे यावदुक्ते । कामिकछैङ्गादिष्वनेक-गुणश्रुतेः। प्रधानवाधाच । पुंसवनं तु ध्यानमात्रेण कार्यम् । 📢-रूपानुष्टानवाधाश्मम्त्रपाठे मानाभावाच । तथा ऋक्ज्ञासीयै-श्रील एवाम आयुर्वीसाधाहतिचतुष्ट्यं कार्यं, नोपनयनवतचतुष्ट्य-समावर्चनविवाहेषु । चौलींयैरेवाद्यहैस्पकारसिद्धेः । लपनयने वि-बीषमाहात्वलायनः। अथोपेतपूर्वस्य कृताकृतं केशवपनं पेघाजननं वा निरुक्तम् । परिदानकालश्च तत्सवितुर्रेणीमह इति सावित्री पूर्वमुपेत ज्येतपूर्वस्तस्य पुनरुपनीयमानस्येति यावत् । कृता-Sकृतं वैकल्पिकम् । अनिरुक्तं वर्जितम् । परिदानकालावप्यनिरु-क्तौ । परिदानमादित्याय व्रतपतये बद्धं ते ददामीति । गायध्याः स्थाने सत्सवितुर्द्वणीमह इति ऋच उपदेशः । मनुश्च । अजिनं मेखला दण्डो मैक्ष्यचर्या ब्रतानि च । निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि इति ॥ अन्यदः कार्यम् । विवाहे सप्तपदीक्रमण-परिणयनयोर्निट्किः प्रतिमाया असम्भवात् । अन्येष्वपि संस्का-रेषु वाधितं लुप्यत इति दिक् ॥ षोडशिक्रयाभावात स्रीशुद्रयो-हिरण्यगर्भदाने अनिधकार इति केचित् । तन्न । नरो वा यदि वा नारी एवं ब्रह्मात्मसम्भवम् । यः करोति महापुण्यं तस्यापि श्रण् यत्फलमिति हेमाद्रौ हिरण्यगर्भपकरणे विष्णुप्रमेंकिः सीणा- मिषकारावगमाद । आत्मसम्भवं हिरण्यगर्भम् । स्वीस्ट्रास्तु सधर्माण इति वाक्याच स्ट्रस्येति । तथा, स्च्यादिकं च गुरवे
दरवा मन्वमिमं जपेत् । मन्त्रः मयोगे ह्वेयः । चतुर्भिः कळकौभूयस्ततस्ते द्विजपुङ्गयाः । स्नानं कुर्युः मसन्नाङ्गा दिव्याभरणभूषिताः ॥ देवस्य त्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने ॥ चतुर्भिः
कुण्डसमीपस्थैः कुर्युः कारयेयुः । मन्त्रः मयोगे । ततो हिरण्यगर्भै
च तेभ्यो दद्याद्विचल्लाः । अत्रापि सर्तिवगाचार्याणां दानद्रव्यविभागस्तुलापुरुषवद्वगन्तव्यः । ते पूज्याः सर्वभावेन वहवो वा
सदाङ्गया । तत्रोपकरणं सर्व गुरवे विनिवेदयेव ॥ पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् । ग्रामं वा विषयं वापि यचान्यदिषे
सम्भवेत् ॥ विषयो ग्रामसमृदः । अन्यद्रवादि । ग्रामादिकं च
बुलापुरुषवद् अत्रापि दक्षिणात्वेनान्वेति । अत्राप्यात्माऽलङ्कारं
सुरवे दद्यात् । इति हिरण्यगर्भदानविधिः ॥

अथैतत्ययोगः। देशकालौ सङ्कीर्यं सकलकलिकलुपनिष्टित्तिसम्भावितनरकानिमप्रापित्राऽऽदिपुरुषत्रातिविषयन्धुपुत्रपौत्राऽऽदिसमुद्धरणपूर्वक-सिद्धसंघसेवितत्वाऽप्सरोगणकरकलित्वामरमालाबीज्यमानत्वेकैकमन्वन्तरसमयाविक्विम्नपंज्ञोकपालपुरनिवासोत्तरकल्पकोदिश्वताविक्विम्नझलोकमहितत्वकामोऽहं श्वो हिरण्यगर्भदानं प्रतिपाद्यिष्ये इति प्रतिद्वाय तुलापुरुषयद् गोविन्दोमापितविनायकपूजाविपाद्वाश्रदणमात्पूजाभ्युद्यिकश्राद्य-पुण्याहवाचनगुर्वादिवरणमधुपर्कदानमण्डपपूजागुर्वादिविनयोगान्तं तुर्यात् ।
अत्र गुरुर्यजमानशास्त्राय एव। ततो गुरुर्वेद्यां पोडशोपिर स्थापिततिल्द्रोणोपिर प्रायुक्तहिरण्यगर्भपात्रम ऋत्विभिः सहानीय स्थाप्
प्रेत् । ततः कुण्डमध्ये हेमं पद्यं निधाय कुण्डैकदेशं वृतशीराभ्यां पृएयित्वा कुण्डस्य विद्धः पाश्वेयोदेशासण्डानि लुरिकां सूर्ची हेम्

नालम् उपवेशनपट्टम् आदिसमितिमां नाभेरावरणवस्त्रं हैमोपवीतंदण्डं कमण्डलुमिति स्थापयेत् ।ततः, ॐ हिरण्यगर्भायेति मापेधानं हिरण्य-गर्भ पूजवेत । कुण्डममीपस्थं कुम्भस्थापनग्रहस्थापनादिपुर्णाहुस-ऽभिषेकान्तं तुलापुरुषत्रत् । एवमभिषिक्तो यजमानः स्नातः युक्र-बस्रालङ्कारादियुक्तो गृहीतकुमुमाञ्चलिः माङ्मुखः पात्रमामन्त्र-येत । नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च । सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः॥ भूलींकपमुखालोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः। ब्रह्मादगस्तथा देवा नगस्ते विश्वधारिणे ॥ नगस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रयःनमो हिरण्यगर्भाष गर्भे यस्य पितामहः।यतस्त्वं भवभूतात्मा भूते भव्ये व्यवस्थितः । तस्मान्मामुद्धराद्मेषदुःख-संसारसागराव ॥ ततः पात्रे पुष्पाञ्जालं प्रक्षिप्य समङ्गलयोषं तत्र पविशेत । गुर्रीत्वजस्तु पात्रं पित्रानेनाच्छादयेयुः । यजमान-स्त तत्रोदङ्मुखो दक्षिणवाममुष्ट्योः क्रमाद्धर्मराजचतुर्भुखौ पृहीत्वा जान्त्रोः शिरः कृत्वोच्छ्वासपश्चकावच्छित्रसमयमासीत । ततो गुर्वादिर्यज्ञमानस्य पितरौ तत्स्थानीयमन्यद्वा मिथुनमानी-य तदद्वाराऽधःपात्रगतरन्ध्रयोर्भध्ये दक्षिणरन्ध्रे शक्तिवीजेन दुर्वारमं सेचयेदिति गर्भाधातम् । पुंसवनस्य ध्यानमात्रम् । सी-मन्ते गुर्वाद्यन्यतमः सोदुम्बरफलैरेकविंशतिकुशैरधःपात्रे काल्प-निकं सीमन्तं शक्तिवीजेनोत्रीय, अम् आ ते गर्भो योनिमिति पजावता सक्तेन, अनिरैत्वित जीवपुत्रेण च द्वीरसं पूर्वीक्ते रन्ध्र आसिच्य ऋक्शाखीयादियजमानक्रमेण मागादिकुण्डे समस्त-व्याहृतिभिरेकामाज्यादृतिं जुहुयादिति । इदमेनानवलोभनम्। सीयन्तोत्तरं व्यखस्तमुक्तमः । एवमुत्तरसंस्कारेष्वपि तत्र कुण्डेषु होमः । ततो गुरुः शुभलग्ने यजमानमुत्थाप्याश्वलायनयजमानस्य जातकर्मनामकरणाऽस्रपाशनचालोपनयनव्रतचतुष्ट्यानि क्रवीत् ।

तत्रात्रपाद्यने पायसभोजनम् ॥ चौछे मातुरुतसङ्गोपवेद्यनाभाव इति नारायणः । उपनयनेः, अग्ने आपूँषीयाद्याद्वतिचतुष्ट्यवपनमेषा-जननाऽऽदियाय वतपतये बदुं ते परिददामीतिपरिदानाजिनमेखला-दण्डभैक्षचर्यात्रताचरणाभावः। एवं महानाम्न्यादिवतसमावर्त्तन-विवाहेष्वाहुतिचतुष्टयाभावः । गायग्याः स्थाने तत्सवितुर्दणी-महे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वस्वधातमं तुरं भगस्य धीमहीति ऋच उपदेशः । अन्यत्तुल्यम् । समावर्त्तनविवाहौ स्वयं यज्ञमानः कुर्यातः । विवाहस्तु त्रिंशानिष्कमृल्यसुवर्णचदितप्रतिमया सह । तब्राग्निपरिणयनसप्तपदीक्रमणध्रुवारुन्धतीदर्शनानि निवर्त्तन्ते । ळाजाहोमस्तु स्रुचैव। अन्य चुरुषम्। श्राद्धं तु यजमान एव कुर्यात् । मदनदामोदरादयस्तु- पञ्चमहायज्ञाः कार्याः, न श्राद्धानवलोभन-मित्याहुः। यजुःशाखीयानां तु जातकर्मादिषु माजापत्यमैन्द्रमाग्नेयं सौम्यं चत्वारि वेद्वतानि निष्क्रमणं चोक्तम् । नामकरणं नोक्तमिति विशेषः । छन्दोगानां तु नामकरणमस्ति । अन्न-प्राचानं नास्ति । गोदानवतं केशान्तवतम् । चत्वारि वेदवतानि चिति । अथर्ववेदे जातकर्मनिष्क्रमान्नमाञ्चनगोदानोपनयनसावित्र-व्रतमेव सावित्रीव्रतम् । विसर्गसमावर्त्तनविवाहपश्चयहा उक्ताः । प्तेषामनुष्ठानप्रकारस्तत्तच्छाखया बोध्यः । शिष्टास्त् सर्वेषां संस्काराणामनुध्यानमात्रं कुर्वन्ति । ततो यजमानो दशाखण्डादि ग्रुरवेऽर्पयेव । नमो हिरण्यगर्भायेत्यादिमागुक्तमन्त्रद्वयेन नमस्कु-र्थात् । ततः कुण्डसमीपस्थकलशजलैर्देवस्य त्वेत्यादिना अद्यजाः तस्य तेऽङ्गानि अभिषेत्रयामहे वयम् । दिव्येनानेन वपुषा चिरञ्जीव मुखी भवेति च मन्त्रेण कनकासनस्थं यज्ञमानमभिषिश्चेयुः । ततो देशकाली सङ्कीर्त्य सकलेत्यादिमहितत्वकाम इत्यन्तमुक्ता तिल-द्रोणोपरिस्थमिदं हिरण्यगर्भपात्रं सवितानकं विष्णुदैवतं युष्पश्वं

षथोक्तमागन्यवस्थया संगददे, न ममेत्युक्ता, पुनस्तयैव देशका-लाखुक्तेत्तद्दानमतिष्ठासिद्धार्थीमदं सुवर्णादिदक्षिणां गुर्वादिभ्यः संगदद इत्युक्ता दीनानायेभ्योऽपि यथाशक्ति दत्वा पुण्पाइ-वाचनग्रहपूजाविसर्जनान्तं तुलापुरुषवद सर्व कृत्वाऽऽत्मालङ्कारा-दि गुरवे द्याद । इति हिर्ण्यगर्भपयोगः ॥

अथ ब्रह्माण्डम । मात्स्ये, अथातः संगवक्ष्यामि ब्रह्माण्डं विधिपूर्वकम् । यच्छेप्टं सर्वदानानां महापानकनावानम् ॥ पुण्यं दिनमथासाद्य त्रलापुरुषदानवत् । ऋत्वि अपण्डपसम्भारभूषणा-च्छादनादिकप् ॥ छोकेशाऽऽवाहनं तद्वदिधवासनकं तथा । कुर्या-द्विशत्पलाद्ध्त्रेपासहस्राच प्राक्तितः ॥ प्रकलद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः। शकलः सण्डः । उक्तं च ब्रह्माण्डे, कुम्भच्छायो भवेद्याहकु प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः । उदितः शुक्कपक्षादौ वपुरण्ड-स्य ताहशम् ॥ कुम्भच्छायो नाम ग्रीवाहीनकुम्भाभ इत्यर्थः । दिगाज। प्रकसंयुक्तं पहेदाङ्गसमन्वितम् । लोकपालाप्टकोपेतं मध्य-स्थितचतुर्भुजप् ॥ शिवाच्युतार्कशिखर्मुमाळक्ष्मीसमन्वितम् ।वस्वा-SSदिखमरुद्धर्भ महारब्रसमन्त्रितम् ॥ वितस्तेरङ्गलशतं यावदायाम-विस्तरम् । कौशैयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् । तथाष्टादश्चन धान्यानि समन्तात परिकल्पयेत् ॥ दिग्गजा ऐरावतपुण्डरीक-बामनकुमुदाऽअनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकाः । तञ्चसणमाहित्य-पुराणे, मुश्रीभश्च चतुर्दन्तः श्रीमानैरावतो मतः । पुष्पदन्तोः बृहत्सामा षह्दन्तः पुष्पदन्तवान् ॥ सामान्यगज्ञक्षेण शेषा टिक-करिणः स्मृताः ॥ पडङ्गानि, शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो क्योतिषामिति।तल्लक्षणं, सुक्तानि ब्रह्मणो छोके साक्षस्त्रा-णि तानि तु । द्विभुजानि श्वभास्यानि वामे दधति कुण्डिकाः ॥ क्वाण्डिकाः कमण्डल्य । अर्थादशसूत्राणि दक्षिणकरे । तानि च

पश्चिमे । चतुरो वेदा इति वाक्याद । अङ्गानि च वेदस्थाने, प्रवानं नीयमानं हि तत्राङ्गान्यपंकर्षतीति न्यायात् स्थाप्यानि । स्रोकपालकपाण्याह विश्वकर्मा- शतुर्दन्तगजाकरो बल्लपाणः पुरम्दरः । श्रचीपतिः पकर्त्तन्यो नानामरणमृषितः ॥ पिङ्गभ्रू-अम्भुकेशाक्षः पिङ्गाक्षो जठरोऽरुणः । छागस्यः साप्तसूत्रश्च सप्तार्चिः बक्तिथारकः॥ ईषत्पीतो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजान-ता । रक्तदक् पाश्चभव कुद्धो निर्ऋतिर्विकृताननः ॥ प्रंस्थितः सद्दगहस्तश्च भूतवानः राक्षसेष्टेतः । वरुणः पादाधुक् सौम्यः प्रती-च्यां मकराश्रयः ॥ भावद्धारिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः। द्वाक्रवरथगः सोमो गदापाणिर्वरप्रदः॥ पूर्वोत्तरे त्रिनेत्रश्च द्वप्य-स्यासिग्रुलध्कः । कपालपाणिश्चन्द्राकीभूषणः प्रमेक्चरः ॥ उमा-रूपं देवीपुराणे, चतुर्भुजा द्विवाहुर्वा द्विनेत्रा वा ब्रिळीचना । कुण्डलालङ्कृतार्देन्द्रशेखराऽऽभरणान्विता॥गोरोचनानिभा गौरी स्विस्तिका नवयोवना ॥ स्विस्तिका बाहुभ्यां कुचौ पिहितुं कृत-स्विस्तिकाकारेसर्थः । गौरी च शिववामभागे । हपनारायणीये तु अक्षस्त्रकमण्डलुत्रराऽभयहस्तेत्युक्तम् ।लक्ष्मीरूपं, पाद्माक्षमालिका-Sम्भोजस्रणिभिर्याम्यसौम्ययोः । पद्मासनस्थां कुर्वीत श्रियं त्रैछोक्यमातरम् ॥ गौरवर्णा सुरूर्णं च सर्वाछङ्कारभूषिताम् । रौ-क्मप्रमुकरव्यमां वरदां दक्षिणेन तु ॥ ऊर्ध्वदक्षिणकरे पाशाक्षमा-रु । जर्ध्ववामे पद्माङ्कुशौ ॥ अथोवामदाक्षणयोहैंनपद्मवर्मुद्रां दंधतीति चतुईसौनेति दामोदरः । बसुरूपं, प्रसन्नवदनाः सौम्या वरदाः शक्तिपाणयः । पद्मासनस्था द्विभुजाः कॅर्त्तव्या वरदाः सदा ॥ दामोदरीये निगमे, आयो धुवश्च सौम्यश्च चरश्चेवानिलो मलः । पत्यूंपश्च प्रभासश्च वसवो नापभिः स्मृता इति॥ पद्मासन- ४ स्था द्विभुजाः पद्मगर्भाभकान्तयः ॥ करादिस्कन्धपर्यन्तं नीळः

पक्रजधारिणः ॥ अधःसंस्थितमेवादिराद्ययः माहताङ्घिकाः ॥ मेपादिराशिक्षं दामोदरीये, मेपटपकर्कटसिंहदश्चिकमीनाः स्व-नामानुरूपाः। बाणाधरौ दम्पती मिथुनम् । करद्वयधृतसस्यमञ्जरी क्रमारी कन्या । तुलाहस्तो नरस्तुला।मृगास्योऽश्वजधनो मकरः । घटिकारा नरः कुम्भः । प्रादृताङ्घिकामोजाद्यान्छित्रचरणा इति दामोदरः । इन्द्राचा द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः। इन्द्रादिनामानि हरिवंशे । इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंऽशोऽर्थमा रविः ॥ पूषा मित्रो यमश्चैत्र पर्जन्यो द्वादश स्मृता इति ॥ मरुतस्तु धावत्क्रुष्णमृगाद्धद्वा वरदा ध्वजधारिणः ॥ ऊनपञ्चावात विावा-दिमतिमाः मागक्ताः । अष्टादश्यान्यानि मसेकं द्रोणपरि-मितानीति केचित्। पूर्वेणानन्तरायनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे * प्रकृतिं दक्षिणे देशे सङ्क्षणमतः परम् ॥ पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतः परम् । अग्निमुत्तरतो हैमं बामुदेवमतः परम् ॥समन्ताद् गुडपीठ-स्थानचेयेत काञ्चनान बुधः । स्थापयेद्रस्रतंत्रीतान पूर्णकुम्भान दशैव तु ॥ अनन्तवायनस्वरूपं विष्णुधर्मोत्तरे, देवदेवस्तु कर्त्तव्यः शेषस्रश्चतुर्भुजः । एकः पादोऽस्य कर्त्तव्यो छक्ष्म्युत्सङ्गातः म-भो ॥ तथा करश्च कर्त्तव्यः शेषभोगाङ्कसंस्थितः । एकः करो-Sस्य कर्त्तव्यस्तत्र जानौ पसारितः ॥ कर्त्तव्यो नाभिदेशस्यस्तथा तस्यापरः करः । नाभिसम्भृतकमले सुखासीनः पितामहः॥ नाल-लग्री तु कर्त्तच्यौ पद्मस्य मधुकैटभौ । शङ्कचक्रगदादीनि मुर्तानि परितो न्यसेत् ॥ पद्मन्नलक्षणं पञ्चरात्रादिषु, दक्षिणोर्ध्वकरे पद्मं दद्याच्छङ्कमधःकरे । चक्रमूध्वें तथा वामे गदां दद्यात्तथा बुधः ॥ चापेषुधृग्वा पद्मन्नो रूपवान् विश्वमोहक इति ॥ पक्रति-• र्यद्यप्यन्यक्तरूपिणी, तथापि तत्स्थाने छक्ष्मीप्रतिमा निवेश्या । तक्कं मार्कण्डेयपुराणे, सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रियणा परमेश्वरी। मात्रिक्षं गदां खेटं पानपात्रं च विश्वती ॥ नागं लिक्षं च योनि च विश्वती तृप मूर्द्धनि ॥ सङ्क्ष्पेणह्यं विष्णुयमीत्ररे, वासुरेवस्य रूपेण कार्यः सङ्कर्षणः मसुः । स तु शुक्तवपुः कार्यो नीलवासा यद्त्तमः ॥ गदास्थाने च मुश्छं चक्रस्थाने च छाङ्गछम् ॥ वेद-छक्षणं महाभूतघटे वक्ष्यते । तथा, कृष्णं चतुर्भुनं दक्षे शरखङ्गौ तथोत्तरे ॥ धतुः विटवरं वीरमनिरुद्धं प्रचल्लत इति नारदीये ॥ अग्निमतिमा पागुक्ता । वासुदेवपातिमाऽपि नारदीये । वासुदेवः शितः शान्तः तिताब्जस्यश्रतुर्भुजः । योगमूर्दार्दशङ्खश्र हृदेशा-Sिप्तइस्तकः ॥ धारयेदुत्तरे चक्रं करे वै दक्षिणे गदामिति । एताश्च प्रतिमाः प्रकृतदानशिरमाणात् पृथककार्याः । एतान् गुडपीठस्थानचेयत् । पूर्णकुम्मान् स्थापयेदिसत्र समन्तादि-त्यनुषञ्जनीयम् । तथा, दश्चेत्र धनतो देयाः सहमाम्बर-दौहनाः । पादुंकोपानइच्छत्रचामरासनदर्पणैः॥ भक्ष्यभोज्यान्न-दीपेक्षफलपाल्यानुलेपनैः । होगाधित्रासनान्ते च स्नापितो वेदपुद्भवैः । इममुचारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वाऽथ पदक्षिणम् ॥ सहेमाम्बरेति । हेमशृद्धाः सबस्ताः कांस्यदोहनाः । एताश्च दक्षिणार्थ-मुपकल्पाः । भविष्ये तु, सुवर्णमेव दक्षिणार्थमुपकल्पामित्युक्तम्। इम्भूचारपेदिति। ब्रह्माण्डं त्रिः पद्क्षिणीकृत्य मन्त्रं पठेत्। तत्र मन्त्रः प्रयोगे क्रेयः । एवं मणम्याऽमरविश्वगर्भं दद्याद्विजेश्यो दश्या विभन्न अ भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्यं समं भनेच्छेषमनुक्रमेण ॥ समं भजेच्छेपमिति । गुरोर्भागद्वयं प्रकल्पावशिष्टभागानामेकैकं भागं त्रेषा विभज्य चतुर्विशतिसंख्येभ्य ऋत्विगादिभ्यः सम दद्यात् । दानवान्यं तुलावदेव क्रेयम् । तथा, स्वल्पे च होमं गुरु-र्वेक एव कुर्याद्येकामिविधानयुक्तया * से एवं संपूज्यतमोऽल्प-वित्तेर्यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥ अत्र सहस्रपलपक्ष उत्तमस्तदर्द्धेनं मध्यमस्तद्रिंनाषमपक्षे स्वल्पत्वं क्षेयम् । विकातिपस्ननिर्मितं स्वल्पत्वमिसेके । एकाग्निविधाने मतीच्यां द्वतं कुण्डिमिति परिभान्धायामुक्तमः । एक एव ऋत्विग्रह्कं विनेसर्थः । इत्यं य एतद्रिष्ठं प्रक्षोऽत्र कुर्योद्वसाण्डदानमधिगम्य महद्विमानम् निर्भूतकल्पय-विश्वद्धतनुर्मुरारेरानन्दकृत्यद्मुपैति सहाप्तरोभिः ॥ सम्तार्यद्व पितृपितामहपुत्रपैत्रवन्धुभियातिथिकस्त्रत्रताष्ट्रकं यः । ब्रह्माण्डन्वानकर्शकृतपातकोऽयमानन्दयेच जननीकुरुपप्यशेषम् ॥ इति ब्रह्माण्डदानम् ॥

अथ प्रयोगः। यज्ञमानी देशकाली सङ्कीर्त्य सकलपातकश्चय-पितृपितामहपुत्रपौत्रवन्धुभियातिथिकछत्रपुरुषश्चताष्ट्रकतारणविछीन-सकलपातकावोषमातृकुलपातकौष्यकलीकरणसन्तारणानन्दपूर्वका-Sप्तरःसङ्क्तसहितविमानकरणकमुरारिपदमाप्तिकामोSहं श्रोब्रह्माण्ड-महादानं प्रतिपादिषष्य इति सङ्कल्प्य तुल्रापुरुषदानवद प्रार्थ्यो-पवासो गोविन्दादिपूजादिमण्डपपूजाचार्यादिविनियोगान्तं विद-ध्यात । तत आचार्यो वेदिरचितषोडशारचक्रोपरिस्थतिलद्रोणो-परि ब्रह्माण्डं स्थापयेत । एतत् प्रागादिदिश्च दिग्गजाष्ट्रकलोक-पालाष्ट्रकमतिमाः स्थापयित्वा पश्चिमायां वेदचतुष्ट्यतदङ्गपट्क-मतिमाःस्थापयेत।ब्रह्माण्डोपरिशिवोमां ऽच्युतलक्ष्मीसूर्यमतिमां मध्ये चतुर्भुखपतिमां मध्य एव समन्तादष्ट्वसुद्भादशादित्यमरुद्भणपतिमा नवरत्नानि चेति स्थापयित्वा कौशेयवस्त्रेण ब्रह्माण्डं वेष्ट्रयित्वा प्र-त्येकं द्रोणपरिमितान्यष्टादक्षधान्यानि परितो निधाय प्राच्यादि-दिश्च गुडपीठेष्त्रनन्तवयनमद्युम्नमञ्जतिसङ्कर्षणवेदचतुष्ट्यानिरुद्धा-Sिनवासुदेवमतिमाष्ट्रकं च निधाय स्थापितब्रह्माण्डादिमतिमाः क्रमेण नाममन्त्रेरावाह्याचियत्वा परितो दशपूर्णकुम्भानः सवस्त्रानः **₹**थापयेत्।ततः पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणभक्ष्यभोक्ष्यफळ-

मारुपदीपातुल्रेपनमन्त्रैः सह कांस्पदोहनादियुक्ता दश्वेनुरूपक-रूप ब्रह्माण्डोपरि वितानं ब्रशीयात् । ततः कुण्डसमीपस्यं कुम्भ-स्थापननवग्रहस्थापनादिपूर्णाहुसभिषेकान्तं तुलापुरुषवत् । एवम-Sभिषिक्तो यजमानः शुक्रवेषोऽअछि बद्ध्वा ब्रह्माण्डं त्रिः मद्क्षिणी-कृत्य, नमोSस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते । सप्तिषिळोक।ऽपरभूतळेश गर्भेण सार्द्ध वितराभिरक्षाम् ॥ ये दुःखि-तास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम् । त्वदान-शस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं ब्रजन्त्विति पठेत् । ततो यजमानः पश्चिमत उपविषय गोदशकेन सह ब्रह्माण्डं दशधा वि-भज्याचार्याय भागद्वयं भागाष्ट्रकम् ऋत्विग्भ्यो दद्यात् । अद्या-ऽमुककाळे सकलपातकसयकामइस्रन्तं सङ्करपवाक्यमुक्ता ब्रह्माण्ड-मेताबत्पलमितसुवर्णराचितं तिलद्रोणोपरि स्थापितमेतत्सर्वोपस्कर-युतं युष्पभ्यं गुर्रेत्विग्भ्यः संपदद इति गुर्वादिहस्तेषु जलं नि-क्षिपेद । ब्राह्मणाश्च ब्रह्माण्डं स्पृष्ट्वा प्रतिगृह्णीयुः । ततः कृतैतद्-ब्रह्माण्डदानप्रतिष्ठार्थिमदं हिरण्यमाग्नेयं ग्रामादि च गुरवे संपदद इति दद्यात । ऋत्विगादिभ्योऽपि यथाशक्ति हिरण्यं दद्यात । अल्पदेयद्रव्यत्वे गुरुरेव स्वशाख्या पश्चिमायां टत्तकुण्डे हवनादि कुर्वात् । ब्रह्मजापकादयोऽपि प्रयोगान्तरवत् कार्यान् ऋत्विजः। ततो ग्रहवेद्यां ग्रहादिपूजनादिविसर्जनान्तं गुरुः कुर्यात् । इसेका-Sध्वर्युपक्षः । इति ब्रह्माण्डदानप्रयोगः ॥

अथ करुपतरुदानम् । मारस्ये, करुपपादपदानाख्यम-तः परमनुत्तमम् । महादानं प्रवश्यामि सर्वपातकनाशनम् ॥ पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदाननत् । पुण्यादवाचनं कुर्या-ल्लोकेश्यऽऽवाहनं तथा॥ऋत्विज्यदपसम्भारमुषणाच्छादनादिकम् । काञ्चनात् कारयेद्वसात् नानाफलसमन्वितात् ॥ नानाविद्वस्न-

वस्त्राणि भूषणानि च कारयेत ॥ नानाफळानि स्त्रीपुरुषगोगजन वाजिमणिकनकरजनभङ्गफछादीनीति कोचित । फछान्येवेसन्ये । क्षाक्तितिस्त्रप्रादृध्वीमासहस्रात प्रकल्पयेत । अर्द्धे क्रुप्तसुवर्णस्य कारयेत करुपपादपम् ॥ करुपपादपदानार्थमुपक्छप्तसुवर्णस्यार्द्धेन ब्रह्मादिमतिमासहितं करपपादपं कुर्यात् । द्वितीयार्द्धं तु चतुर्द्धा विभज्येकैकभागेन स्वस्वदेवताप्रतिमासहितान सन्तानादीन कु-र्यात । गुडमस्थोपरिष्टाच सितवस्त्रयुगादृतम् । ब्रह्मविष्णुशिवो-पेतं पञ्चशाखं सभास्करम्॥मस्थो द्वात्रिंशत्पलः परिभाषायां दर्शि-तः। षोडशपलो वा। १० ब्रह्मादिमतिमाः माग्दार्शताः। काम-देवमधस्ताच सकलत्रं प्रकल्पयेत ॥ विष्णुधर्मीत्तरे, कामदेव-इतु कर्त्तव्यो रूपेणाऽप्रतिमो सुवि ॥ अष्टुबाहुः प्रकर्त्तव्यः शङ्कः पद्मविभूषितः॥ चापवाणकरश्चैत्र मदोदश्चितळोचनः॥ रातिः मीति-स्तथा शक्तिर्भेद्शक्तिस्तथोज्ज्वला । चतस्त्रस्तस्य कर्त्तव्याः पत्न्यो क्रवमनोहराः ॥ चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्यास्तनोवगाः । कतौ च मकरः कार्यः पञ्चवाणमुखो महान इति ॥ दामोदरीये तु- चापेषुधृक्कामदेवो रूपत्रान् विश्वमोहक इत्युक्तम् । अधस्तादिः ति ब्रह्मादिभिरप्यन्वेति । सन्तानं पूर्वतस्तद्वनुरीयांशेन कल्पयेत् । तुरीयों ऽशोऽपरार्द्धस्य वर्त्तिना गुड्यस्थोपरिगतत्वं सितवस्त्रयुम्य-शास्त्रापञ्चकफलान्वितत्वं चोक्तम्। मन्दारादिष्वापे वस्त्रयुग्माद्यस्वे-ति । मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सार्द्ध घृतोपरि । पश्चिमे पारि-जातं त सावित्र्या सहजीरके ॥ सुरभीसंयुतं तद्गीत्तलेषु हार-्चन्दनम् । तुरीयांशेन कुर्शित सौम्येन फलसंयुतम् ॥ तुरीयांशेनेन ति मन्दारपारिजाताभ्यामध्यन्वेति । पञ्चाप्येते दृक्षाः । क्रमान दक्तत्थनिम्बार्कपारिभद्रविल्वतरुतुल्याकाराः शिष्टाचाराद् इति ्दामोदरः । श्रीपतिमोक्ता हिरण्यमर्भदाने। सावित्री तु ब्रह्माण्डे ।

पद्मासना च सावित्री साक्षसूत्रकमण्डलुरिति उक्ता, सनत्सा धुरभी घेनुरागता प्रस्तुतस्तनीति धुरभीलक्षणम् । घृनादिकः मपि मस्थपरिमितं ग्राह्मम् । कौदीयवस्त्रसंवीतानिश्चमारयफला-Sन्वितान् । तथाष्ट्रौ पूर्णकछशान् पादुकासनभाजनम् ॥ दीपिको-पानइच्छत्रचामरासनसंयुतम् । फल्लगारययुतं तद्वदुपरिष्टाद्वितानः क्रमः ॥ तथाष्टादशधान्यानि समन्तादुपकरपयेतः ॥ अशनभाजनं भोज्यपूरितभाजनम् । धान्यानि प्रसेकं द्रोणपरिमितानि । होमा-Sिधवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः । त्रिः मदक्षिणमादस मन्त्रमेतमुदीरयेत । अधित्रासनान्ते प्रातः पूर्णादुसादिकर्मोत्तरं पुण्याहवाचने कृते कुण्डाभ्यासे कलकौः स्नापित इसर्थः । मन्त्रः मयांगे ज्ञेयः । एतमामन्त्र्यं तं दद्याद् गुरवे कल्पपादपपः। चतुभ्र्य-थापि ऋत्विग्भ्यः सन्तानादीन् मकल्पयेत् ॥ कुण्डचतुष्ट्यसम्ब-न्यिभ्योऽष्टभ्य ऋत्विग्भ्यः सन्तानादींश्रतुरो दद्यादिति मदनः । चतुर्णामेत्र ऋत्त्रिजां मन्त्रवरणिमति हेमाद्यादयः।जापकादिभ्यो-Sन्येत दक्षिणा देवा । स्त्रल्वे त्वेकावित्रत कुर्वाद् गुरोरेताभि-पूननम् । न वित्तशाट्यं कुर्शत न च विस्मयवातः भवेतः ॥ अनेन विधिना यस्तु पहादानं नित्रेदयेत् । सर्वपापत्रिनिर्मुक्तः सोऽक्तर-मेत्रफळं छमेत् ॥ अप्तरोभिः परिष्टतः तिद्धचारणिकन्नरैः । मू-तान भन्यांश्च मनुजान तारवेद्रोमसंमितानः॥ स्तूपमानो दिवःपृष्ठे धुत्रपौत्रवपौत्रवात् । विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलाकं स गच्छति ॥ दिवि कल्पन्नतं तिष्टेदाजराजो भवेत ततः ॥ नारायणवल्रोपेतो नारायणपरायणः । नारायणकथासक्तो नारायणपुरं ब्रजेदिति ॥ इतिकलपपादपदानविधिः॥

अथमयोगः । यजमानो देशकालोचारणान्ते सर्वपापक्षयपूर्वः क्राऽक्षमेधफलगाप्तिपितृपुत्रादिस्वरोमसंमितभूतमञ्यस्वकीयपुरुषः सन्तारणाप्तरं सिद्ध चारणिक सरसेवितत्वसर्वस्त्यमानत्वविशिष्टार्कं-वर्णविमानकरणकविष्णुपुरगमनपूर्वककलपशताविद्यन्नकालवैष्णव-स्वर्गछोकनिवासपूर्वक-नारायणपरायणत्व-नारायणतुल्यबङ्ख-नारायणकथासक्तत्वविश्विष्ट-भूछोकराजत्वाऽनन्तर-नारायणपुर-प्राप्तिकामः क्वः कल्पपाद्पमहादानं प्रतिपादिष्ठिय इति सञ्च-ल्प नारब्धोपनासो गोनिन्दादिमण्डपपूजाचार्यादिनियोगान्तं कुर्यात् । ततो गुरुः वोडशारयुतबद्धोपरिगुडमस्थं निधाय तद्वपरि ब्रह्मविष्णु शिवभास्करप्रतिमाभिः सह पञ्चशासं सितवस्त्रयुगाः Sन्वितं कल्पद्यक्षं पच्ये स्थापयित्वा गुडमस्थे सदारकामप्रतिमया सह निर्मितं सितवस्त्रयुगान्वितं सन्तानं पूर्ववतः स्थापयित्वा तथैव घ्तप्रस्थोपरि श्रीप्रतिमान्वितं मन्दारं दक्षिणतः स्थापयित्वा पश्चिमे जीरकपस्थोपरि सावित्रीपतिमान्त्रितं पूर्ववत पारिजातं स्थापयित्वोत्तरेतिल्प्यस्थोपरि सुरभीपतिमान्वितं हरिचन्दनं स्थाप-यित्वा सर्वेषु माल्यफछादि स्थापेयत् । तथा माच्याद्यष्टंदिश्च कौ-बायवस्त्रादियुक्तान् पूर्णकल्यान् स्थापियवा पादुकोपानन्छत्रादिकं स्थापियत्वा प्रसेकं द्रोणिमतधान्यान्यपि निधाय वेद्यां वितानं च बदध्वा मन्त्रेण पञ्च पादपान् क्रमेण मतिष्ठाप्य ब्रह्मविष्णुशिवा-Sर्कसहिताय करपपादपाय नमः । सदारकामसहिताय संतानाय, श्रीसहिताय मन्दाराय, सावित्रीसहिताय पारिजाताय, सुरभी-सहिताय हरिचन्दनायेसेवस्प्रकारेण यथासम्भवमावाहनाद्यपचारैः सम्पूज्य वितानं बश्लीयात् । ततः कुण्डसमीपकुम्भस्यापनग्रहादि-स्थापनमञ्जितपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं तुलापुरुषवद । एवमभिषिक्तो यजमानः शुक्रवेषो धृतपुष्पाञ्जालेः करुपपादपं त्रिः मदक्षिणीकुल तत्पश्चिमत उपविषय, नमस्ते कल्पदक्षाय चिन्तितार्थपदायिने । विक्तमभराय देवाय नमस्ते विक्तमूर्त्तये ॥ यस्पारवमेव विक्वात्मा

ब्रह्मा स्थाणुदिंबाकरः । मूर्तामूर्चे परं बीजमतः पाहि सनातन ॥ स्वमेवाऽसृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽन्ययः । सन्तानाधैरुपेतः सन् पाहि संसारसागरादित्युक्त्वा पुष्पाञ्जित्ति क्षिप्त्वा नत्वा वेदि-पश्चिमतः माङ्गुखोऽधेयाद्युक्त्वा सर्वपातकक्षयेत्यादिनारायणपुर-माप्तिकाम इत्यम्त उच्चरिते, अमुक्तगोत्रायेखादिविशेषणविशिष्ट-मुच्चार्य, तुभ्यं गुरव इमं कलपपादपं मूलदेशस्थापितब्रह्मविष्णु-भिवभास्करपतिमं गुडपस्थोपरिस्थितं सितवस्त्रयुगान्वितं कौशेप-संवीतं कलकाष्ट्रकेश्चमाल्यफलपादुकासनमाजनदीपिकोपानच्छत्रा-दिसहितं सवितानं सम्पद्दे इति गुरुहस्ते जलं क्षिपेत् । गुरुश्च स्वास्तिशब्दपूर्वकं, देवस्य त्वेति प्रतिग्रह्म कामस्तुर्ति पठेत् । तत एतत्मितिष्ठार्थिमिदं हिरण्यं ग्रामरत्नादिकं च दक्षिणां तुभ्यं गुरके सम्पद्द इति तानि दद्याद् । एवं पूर्वतो गुडमस्योपरिस्थितं सदारकामप्रतिमान्वितमिश्चमाल्यफळाद्युपकरणान्वितं सन्तानं तुभ्यं बहुँडचायर्तिंको सम्पदद इति । ततो दक्षिणतो घृतप्रस्थोपरिस्थं मन्दारं श्रीयुतं यजुविंदत्विजे पश्चिमायां जीरकस्यं सावित्रीमतिमा-Sन्वितं पारिजातं सामगाखिने । उत्तरतस्तिखमस्योपरिस्थितं मुळे सुरभीपतिमान्वितं हरिचन्दनमथर्वविदे दत्वा चतुभ्योऽपि सुवर्णग्रामरत्नादि शंत्तया दक्षिणां दद्याद । जापकादिभ्यः पृथग् द्याद । यद्वा गुर्वादीन सन्तोष्य तदनु इया उन्येभ्यो अप द्यात । तत आचार्यः पुण्याहवाचनान्ते पुनर्प्रहादिपूजाङ्कारियत्वा पीठा-दिवेषताविसर्गं कुर्यात ॥ इति कल्पपादपदानविधिः ॥

अथ गोसहस्रम् ॥ मान्स्ये, अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादान-मनुत्तमम् । गोसहस्रमदानारूपं सर्वपापहरं ग्रुभम् ॥ पुण्यां तिथि-मथासाद्य युगमन्वन्तरादिकम्। पयोद्यतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथा-इपि वा ॥ लोकेबाऽऽवाहनं कुर्याद तुलापुरुषदानवद । पुण्याह-

बाचनं कुर्याद्धौमः कार्यस्तथैव च ॥ ऋत्विङ्गण्डपसम्भारभूषणा-ऽऽच्छादनादिकम् । दृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधित्रासयेत् ॥ गोसहस्राद्विनिष्क्रम्य गर्ना दशकमेव वेखादि ॥ पयोत्रतं दानाद पूर्वप । दंषश्च पुष्टः सुद्धपो नीरुग् ग्राह्यः । यत्तु कैश्चिद्, उन्नत-स्कन्धककुद्मुज्ज्बलायतकम्बलिसादीनि ह्वोत्सर्गपकरणे मात्स्ये षेक्तानि लक्षणानीत्युक्तम् । तत्र मुलं मृग्यम् । गोसहस्राद्विनि-ष्क्रम्येति दशोत्तरगोसहस्रादिसर्थः । तथाच दशाधिकं गोसह-स्नादिस्पर्थः । तथाचं दशाधिकं गोसहस्रं ज्ञेयम् । तत्राप्यधिवान सनीयं गोदशकम् । सहस्रगोषु तु नावश्यं धेनुत्वादर इति विवेक इति केचित् । गोसहस्रं बाहः कुर्याद्रस्त्रमाल्यविभूषितम् । सुत्रर्ण-श्रृङ्गाभरणं रौष्यपादसमन्त्रितम् ॥ बाह्यः कुर्यान्मण्डपाद् बाहरासा-द्येत । अन्तः प्रवेदय द्वांकं वस्त्रपार्वैः प्रपूज्येत । सुवर्णघण्टिका-युक्तं ताम्रदोहनिकान्त्रितम् ॥ सुत्रणीतेलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्क-तम् । कौशेयवस्त्रमंत्रीतं माल्यगन्यविभूषितम् ॥ हेमरत्नयुतैः श्कुकेश्वामरैश्चापि शोभितम् । पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम्॥ सुवर्णघटिकेसत्र सुवर्णशब्दोऽशीतिगुआपरिमितहेमपरः । सक्चत् प्रयुक्तसुत्रर्णशब्दस्य तथैत प्रसिद्धेः ॥ अत्र श्रृङ्गे दशसौर्वाणके । खराः पञ्चपत्थाः । पञ्चांशात्पत्थं दोहनपात्रामिसन्यत्रोक्तं ग्राह्म-मिति केचित् । यथाशक्तीति परे । पादुकोपानहादिपञ्चकं प्रसेकं गीदशकसमीपे स्थाप्यम्। गर्वा दशकमध्ये स्यात काञ्चनो नन्दि-केंद्रवरः । कौद्रोयवस्त्रतंत्रीतो नानाभरणभूषितः ॥ स्रवणद्रोण-विालरे मारुवेश्चफलसंयुतः । ऊर्ध्वास्त्रनेत्रो द्विभुजः सौम्यास्यो र्नान्दिकेइंबरः ॥ वामे त्रिशूलभृदक्षे चाक्षमालासमन्वितः ॥ उर्ध्व इति स्थित इसर्थः । कुर्यात् पंखंदातादृष्ट्वं सर्वमेतदशेषतः। शक्ति-तः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु ॥ साभरणनन्दिकेक्तरानिर्माणाः

Sर्थमेतद्धेमात्ममिति हेमाद्रौ । गोभूषणाद्यप्येतन्मध्य इति दान-सागरादौ । गोशते वै दशांशेन सर्दमेतत् प्रकल्पयेत् । गोशताख्यं महादानं सप्तदशमिति दानसौख्ये ॥ पुण्यं दिनमथासाद्य गीत-मङ्गळनिस्वनैः।सर्वेषिध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः॥इनमुच्चा-रयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ मन्त्रः प्रयोगे द्वेषः । इसामन्त्रय ततो दद्याद् गुरवे नन्दिकेश्वरम् । सर्वोपकरणोपेतं गोयुगं च विचक्षणः ॥ ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेतः । गर्वा शतमधैकैकां तदर्द्धं वाऽथ वितिशम्॥दश् पश्चाऽथना दद्यादन्येभ्य-स्तद्नुज्ञया । अन्ये ऋत्त्रिज उदासीनाश्च विपाः । सर्वपक्षेषु द्विगुणा गुरवे देयाः । नैका बहुभ्यो दातच्या यतो दोषकरी भवेत । बह्वचस्त्वेकस्य दातच्याः श्रीमदारोग्यदृद्धये ॥ श्रावये-च्छ्रणुयाद्वाऽपि महादानानुकीर्त्तनम् । तदिने ब्रह्मचारी स्याद यदीच्छेद्विपुलां श्रियम् । अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रपदो भवेतः । सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः । विमानेनार्कवर्णेन किङ्कि-णीजालमालिना । सर्वेषां लोकपालानां लोके सम्पूज्यते नरैः । मतिमन्वन्तरं तिष्ठेत पुत्रपौत्रसमन्वितः । सप्तलोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं ब्रजेत् । शतमेकोत्तरं तद्वतं पितृणां तारयेद्वुधः । माता-महानां तद्रच पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ यावत्कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजौ भनेत्ततः । अक्त्रमेधकातं कुर्वाच्छित्रध्यानपरायणः ॥ वैष्णतं योग-मास्थाय ततो मुच्येत बन्धनादिति ॥ इति गोसहस्रदानविधिः ॥

अथ प्रयोगः । यज्ञमानोऽधिवासनिवनात पूर्व व्यहमेकाई हुम्बमात्राहारोऽधिवासनिदिनेऽद्येखाद्युक्काः सकलपापसयानन्तर-सिद्धचारणसेवितत्वार्कवर्णसुवर्णीकिङ्कणीजालमालिविमानारोहणो-परैकेकमन्वन्तराऽविक्लिन्द्रादिसकललोकपाललोकाऽधिकरणपुत्र-धौत्रसमन्वितिवासाऽमस्कर्तृकपूजापूर्वकसप्तलोकातिक्रमणोत्तरपुत्र-

पौत्रसमन्वितशिवाऽऽळयगमनैकोत्तरशतपितृपितामहकुलतारणकल्प-शतावञ्जिन्नशिवपुरानिवासानन्तरराजराजभवनाऽञ्चमेघशतकर्तृत्व-शिवध्यानपरस्वविष्णुसाद्दयापन्नयोगस्थानहेतुकसंसारमोचनकामो-Sहं गोसहस्रदानं क्वः प्रतिपादिषक्य इति संकल्प जपवास-गोविन्दादिपुनादिमण्डपपुनाचार्यादिविनियोगान्तं कुर्यात । ततो गुरुवेंदिमध्ये वोडशारं विलिख्प पुष्पैरवकीर्ध्य पूर्वोक्तं हवं घेतु-द्शकं च वस्नमाल्यसुवर्णघण्टासुवर्णतिलकसुवर्णशृङ्गरौप्यसुरदोहन-पात्रकौशेयवस्त्रपादुकोपानहच्छत्रचामराद्युपशोभितं वेद्याः परितः स्थापयेत् । मण्डपाद्धहिर्गोसहस्रं सुवर्णश्वङ्गादिसहितं वा अधि-. वासयेत् । ततः सदृषगोदशकमध्ये पोडशारस्थळळवणद्रोणोपरि कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्येश्चफलादिसंयुतं मागुक्तं नन्दिकेक्वरं स्था-प्येत् । पूजयेत् । उपरि वितानं बश्लीयाच । ततः कुण्डसमीपस्थ-कुम्भस्थापनग्रहस्थापनपृणाहुत्यभिषकान्तं तुलापुरुषवद । ततो यजमानः पश्चारिस्थत्वा पुष्पाण्यादाय सदृषं गोदशकं, नमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातुभ्य एव च * छोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः॥ गवामङ्गेषु तिष्ठान्ति भुवनान्येकविंशतिः। ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः॥गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावो मे हृदये निसं गवां मध्ये वसाम्यहम्॥ यस्मान्त्रं वृषक्ष्पेण धर्म एव सनातनः । अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन इत्यावाहयेद । ततो वेदिपश्चिमभागे उपविश्य कुशतिल-जलान्यादाय देशकालोचारणान्ते सकलपापक्षयानन्तरेखादिसंसार-मोचनकाम इत्यन्ते संकल्पे उचारिते, एताः सुवर्णश्रङ्गाद्यलङ्कृताः सष्टपलवणद्रोणोपरिस्थितनन्दिकेश्वरसहिताः पादुकोपानहच्छेत्र-चामरासनसंयुताः सवत्समुवर्णालङ्कतथेनुदशकसहिताः सहस्रं गाः वितानाद्युपस्कारसहिताः अमुकामुक्तशर्मभ्यो गुर्वुत्विग्भ्योऽहं सं-

पदद इति दद्यात । तेऽपि स्वस्तीत्युक्त्वा पुच्छेषु प्रतिगृह्य रुद्रायः गामित्याद्युक्ता स्वकामस्तुर्ति पठेयुः । दाता दानप्रतिष्ठार्थं तेषु दक्षिणां द्यात । सोपकरणनिद्वकेत्र्वरं प्रसक्षऋषमं धेनुद्रशका-त सोपकरणचेनुद्वयं गोसहस्राच शतद्वयं गुरवे द्यात । ऋत्विन्ध्य दशकान्तर्गतानामेकामेकां गां गोसहस्राच प्रत्येकं शतमिसेकः पक्षः। जापकादीनामन्येव दक्षिणा देया। ग्रामादिना सन्तोष्य यथेच्छं विभाग इति प्रागुक्तम । ततः पुण्याहवाचनान्ते ग्रहपूजनतद्विसर्जनादि सर्व प्रकृतिवद्भवेत । श्रीकामस्तिस्मन् दिने दुष्य-मात्राहारो ब्रह्मचारी च भवेत । कर्मसाहुण्यार्थं च यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ इति श्रीमीमांसकभद्दशङ्करात्मजभट्टनीलक्ष्यकृते दानमयुखे गोसहस्रदानविधिः ॥

अथ हिरण्यकामधेतुः । मारस्ये, अथातः संगवस्यामि काम-भेतुविधि परम्। सर्वकामभदं नृणां सर्वपातकनाकानम् ॥ लोकेकाा-SSवाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम् । तुलापुरुषवत् कुर्यात् कुण्ड-मण्डपवेदिकाः ॥ स्वरुपेष्वेकाग्निवतः कुर्याद्वरुपेत समाहितः ॥ कुण्डमण्डपेति गोविन्दपूजादिब्राह्मणभोजनान्तधर्माणामुप्लक्षणम् । गुरुरेवेत्यृत्विङ्गिषेयो, न जापकानाम् । काञ्चनस्यातिशुद्धस्य भेनुं वत्सं च कारयेत् । जत्तमा पल्लसाहक्षेत्तद्रद्धेन तु मध्यमा ॥ कनीयसी तद्रद्धेन कामभेतुः मकीत्तिता ॥ यद्यपि योवनादिवत् सहस्राणां गणः साहस्रम् । बहुवचनेन च तद्धहुत्वे उक्ते नवसहस्रं पल्लानिति भाति, तथापि कर्यतविष्यपक्षवदुःकर्योऽपि तुल्य एवो-चितः । जपनायनमितिवत् तु साहस्रमिति द्यानुरोधेन दैर्ध्यम् । पल्लपदस्यापि पूर्वनिपातेन पल्लसहस्र्गेणसर्थः । क्ष्यनारायण-दामोदरादयोऽप्येवम्।पलसहस्राणीति काचित्कः पाठोऽप्यमुमेवार्थे 'संबद्ति । क्षांकृतस्त्रप्रलाद्ध्वंमक्षकोऽपि हि कारयेतः । गुड्येन्दान दिषु चतुर्थाशेन वत्सः स्यादित्यभिषानातः । अत्रापि सप्तमुवर्णः चतुर्थांशेन बत्सः कार्य इति निबन्धकृतः । वेद्यां कृष्णानिनं न्य-ह्य गुडनस्थसमन्वितम् । न्यसेद्वारि तां धेतुं महारत्नेरलङ्कनाम् ॥ क्रम्भाष्ट्रकसमोपेतां नानाफलसमन्त्रिताम् ॥ तथाष्टादशधान्यानि समन्तात परिकल्पयेत ॥ इक्षुदण्डाष्ट्रकं तद्वनानाफलसमन्त्रितम् । भाजनं चासनं तद्वताम्रहोहनकं तथा ॥ भाजनं भोजनपात्रम् । कौशेयनखद्वयसंदताङ्गी दीपातपत्राभरणाभिरामाम अ सचामरा कुण्डलिनीं सवण्दां गणितिकापादुकरौष्यपादाम् ॥ रसैश्च सर्वैः पुरतोऽभिजुष्टां हरिद्रवा पुष्पफछैरनेकैः ॥ कुण्डिछनीं कर्णयोः क्कण्डलयुतामाअजाजिकस्तुम्बुरुशर्कराभिनितानकञ्चोपरि पञ्चवर्ण-म् । गणित्रिका अक्षमाळा । दामोदरीये तु गोलात्रेकोते पाटः । पाद्किङ्किणीति तद्धः । पाद्केति पाद्काः काष्ट्रमध्यः । रीप्यं रीप्यालङ्कारः । तह्वयमि पादेषु यस्याः सा । अजाजी जीरकम् । कुस्तुम्बुरुर्वान्याकम् । रसैर्मधुराम्छतिक्तकषायकद्द-छवणरसयुतैई न्यै: । स्नातस्ततो मङ्गळवेदघोषैः प्रदाक्षणीकृत्य स-पुष्पहस्तः अवाहयेत्रां गुडथेनुमन्त्रेद्विजाय दद्यादथ दर्भवाणिः॥ आमन्त्रय शीलकुलक्षपगुणान्विताय विभाग यः कनकधेनुमिमां पदचात । पामोति थाम स पुरन्दरदेवजुष्टं कन्यागणैः परिहतः पदिमन्द्रमाँछैः ॥ विषायेथेकवचनमेकामिपक्षे । जापकादिभ्योऽन्यै-व दक्षिणा । अनेकाग्निपक्षे तुलापुरुषवद पक्षत्रयमिति केचित । पश्चद्वेऽप्येकस्मै एव विशायति तु युक्तम् । आमन्त्रणमन्त्रास्तु प्रयोगे क्षेया इति ॥ हिरण्यकामधेनुदानविधिः ॥

अथ प्रयोगः । तत्र यजमानोऽधेखाद्युक्ता सर्वपापक्षयपूर्वक-रुद्रकन्यागणेन्द्रादिसेवितशिवपदमाप्तिकामः क्यो हिरण्यगर्भकाम-श्रेतुमहादानमहं प्रतिपादिषण्य इति संकल्प्य गोविन्दादिपूजादि- गुर्वादिनियोगान्तं तुलादानवत् कुर्यात् । गुरुवेद्यां षोडशारं विरच्य तदुपरि छुष्णाजिनं माग्ग्रीवसुत्तरलोमकं न्यस्य तदुपरि गुडमस्थं च न्यस्य तदुपरि तुलत्रयाधिकयथाशक्तिहैमीं कामधेतुं सा-Sलक्कारां निर्माय तत्तुरीयभागानिर्मितं वत्तं स्तनाभिमुखदक्षिणा-दिगवस्थितं विधाय पञ्चरज्ञालङ्कृतां कौशेयद्रव्यसंवीतां सीवर्ण-नृपुरद्रयप्रैवेयकसौवर्णकुण्डलद्रयघण्टापादकि।ङ्कणीकाष्ठपादुकाद्रय-रीप्यपादचतुष्ट्याभरणयुतां ताम्रदोहनान्त्रितां सचामराधेनुं स्थाप-यित्वा तत्समन्ताद्वारिपूर्णकुम्भाष्ट्रकं नानाफुळानि अष्टादशपान्यान नि इञ्चदण्डाष्टकं भोजनभाजनपीठदीपच्छत्रषड्रसद्रव्याणि हरिद्रां पुष्पाणि जीरकं धान्याकं शर्करादि स्थापयेत । ततो त्रितानं बन द्ध्या प्रतिष्ठापूर्वकं नाममन्त्रेण गथाशक्खपचारैः पूजयेत । उपरि वितानं च बध्नीयात् । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनपूर्णाहुस-न्तम् अभिषेकान्तं तुलापुरुषवत् । एवमभिषिक्तो यजमानो गृहीत-कुछुमाञ्जलिस्तां पदाक्षिणीकुख उपविषय, ॐ या लक्ष्मीः सर्व-लोकानां या च देवेष्त्रवास्थिता । धेनुक्रपेण सा देवी मम शानित मयच्छतु ॥ देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा मिया । धेनु-क्ष्पेण सा देवी ममपापं न्यपोहतु ॥विष्णोर्वक्षसि या छक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः । चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु साश्रिये॥ चतुर्मुखस्य या छङ्मीर्घा छङ्मीर्घनदस्य च । छङ्मीर्घा छोक-पाळानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे॥ स्वधा यापितुमुख्यानां स्वाहा यज्ञ-भुजाञ्च या। सर्वेषापहरा धेनुस्तस्माच्छान्ति प्रयच्छतु, इति गुडधेनु-मन्त्रेराबाह्य, ॐ त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता विश्वेश्वारे त्रिपथ-गोद्धिपर्वतानाम * त्वदानशस्त्रशक्तीकृतपातकौधः माप्तोऽस्मि निर्देतिमतीव परां नमामि ॥ लोके यथेष्तितफलानुविधापिनीं त्वामासाध को हि भवदुःखमुपैति मर्थः । संसारदुःखग्रमनाप यतस्यकामं त्वां कामधेनुरिति देवगणा वदन्ति, इस्यामन्त्र्याये-त्यादिकीर्त्तनान्ते सर्वपापस्यपूर्वकरुद्रकन्यागणेन्द्रादिसेवितादीव-पद्माप्तिकामः स्वर्गकाम ईश्वरप्राप्तिकामो वा गुरवे पूर्वोक्तवत्स-यवरबालक्काराद्ययेतामिमां कामधेनुं तुभ्यं सम्पदद इति दद्याद । ततः क्रतैतदानप्रतिष्ठार्थं प्रापरतादि हिरण्यं वा सम्पददे, न भमोते बदेत । ततः पुण्याहवाचनानन्तरं यजमानो ग्रहादि सम्पू-ज्य, यान्त्वियादिना विसर्जयेत । मण्डपाद्यपकरणं गुरवे निवेद-येत । कर्मसाङ्गतासिद्ध्यर्थं ब्राह्मणान् भोजयेत ॥ इति हिरण्य-कामधेनुप्रयोगः ॥

अथ हिरण्याञ्चदानम् । मात्स्ये, अथाऽतः सम्मवश्यामि हिरण्याऽक्वविधि परम् । यस्य मसादाद् भुवनमनन्तं फलमक्तुते ॥ पुण्यां तिथिपथासाच कुत्वा ब्राह्मणवाचनम् । लोकेशाऽऽवाहनं क्रुवीचुळापुरुषदानवद् ॥ ऋत्विङ्गण्डपसम्भारभूषणाच्छादना-SSदिकम् । स्वल्पेष्वेकाधिवत् कुर्याद्धेमवाजिमस्वं ततः ॥ स्थापये-द्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिल्लोपरि । कौशेयवस्त्रसंवीतं कारयेद्धेम-वाजिनम् ॥ शक्तितस्त्रिपछाद्ध्वेमासहस्रपछाद् बुधः । पादुको-पानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ॥ पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसं-युतम् । शय्यां सोपस्करां तद्वद्वेममार्त्तण्डसंयुताम् ॥ मार्त्तण्डसं-युतामिति दीर्घपाठः, शय्याया विशेषणं चेति दामोदराद्याः । ह्रस्वपाठेन अञ्चस्येति हेमाद्रिमदनौ । ततः सर्वीषधिस्नानस्नापितो वेदपुद्भवैः * ६ममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुपाञ्चलिः ॥ मन्त्रः म-योगे क्रेयः । एवसुच्चार्य गुरवे तमध्वं विनिवेदयेत् । गुरव इति ऋ त्विजामप्युपलक्षणमिति रत्नाकरपारिजातयोः । गुरव एवेति बाचस्पतिमिश्राः । युक्तं चेदम् । उपलक्षणे मानाभावात् । दत्वा पापक्षपाद्भानोर्लोकमभ्येति बाद्यतम् । गोभिविभवतः सार्द्धम्

ऋत्त्रिजः परिपूज्येद ॥ सर्वधान्योपकरणं ग्रुरवे विनिवेदयेद ॥ इमं हिरण्याद्यविधि करोति संबीज्यमानो दिविदेवतेन्द्रैः । विन् मुक्तपायः स पुरं मुरारेः मामोति सिद्धैरभिपूजितः सन्निति॥इति हिरण्याद्येदानविधिः ॥

अथ प्रयोगः। यजमानः, अञ्चत्याद्युत्त्वा सकलदुरितनिष्टत्ति-समनन्तर—शाब्वतसूर्यछोकपाप्तिपूर्वक—देवतेन्द्रपुरुयमानताविशिष्ट-स्वर्ळीकगमनोत्तरसिद्धपूजितत्वविधिष्ठविष्णुलोकपाप्तिकःमः द्रवो हिरण्याञ्चमहं प्रतिपादायिष्य इति सङ्कल्प्य गोविन्दादिपूजनादि-मण्डपपुजादिगुरीत्वगादिविनियोगान्तं सर्वे प्रकृतिवत कुर्यात । ततो गुरुः पोडशारचक्रं वेद्यां विख्रिख्य तटुपरि त्रिपछाधिकस-हस्रपञ्जपयन्तवात्त्वनुसारस्रुवर्णघटितं भास्करमतिमायुतं हेमवाजिनं कौदोयवस्त्रसंवीतं पाङ्मुखं स्थापयित्वा समन्ताच्च पूर्णकुम्भाष्टकं पाद्कोपानहच्छत्रचामरासनभोजनभाजनमास्येश्चफ्ठान्यऽष्टाद्श-धान्यानि च स्थापयित्वा सोपकरणां बाय्यां च सन्निधापयेत्। बाट्योपकरणानि च त्लिकोपघानभच्छादपटफल्रपुष्पकुङ्कुमक-र्पूरागरुचन्दनताम्बूळद्पेणकङ्कातेकाचामरव्यजनासनासिपुात्रेकाः दीपिकोपानत्ताम्रघण्टिकाजलपात्रवितानाद्यानि । ततो भास्करा-ऽधिष्ठिताय हिरण्यास्वाय नम इति प्रतिष्ठापूर्वकं यथासम्भवोपचा-रैरभ्यच्योपिर वितानं बन्नीयात । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भ-स्थापनपूर्णादुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिबदेवमभिषिक्तो यजमानो गृहीत-कुमुमाआछिर्हिरण्याक्त्रं त्रिः परिक्रम्योपनिक्य, नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणछम्पट । वाजिन्हपेण मामस्मात पाहि संसारसागरात् ॥ त्वमेव सप्तथा मूत्वा छन्दोक्ष्पेण भास्कर । यस्माद् भावयसे ळोकानतः पाहि सनातनेत्यामन्त्र्य नमस्क्रस अद्येति सक्छेत्यादि-प्रागुक्तसङ्करुपान्ते इमं हिरण्याञ्त्रं क्रुष्णाजिनोपरिन्यस्ताते**छद्रोणोप**- रि स्थितं कौरोपवस्त्रसंगीतसुपर्याक्टमार्चण्डमतिमंशस्यामाल्ये द्व-फलादिपूर्णकुम्भाष्टकसर्वोपस्करसुतमसुकगोत्राय सुरवे सम्पददं इति तद्धस्ते जलं क्षिपेत । दानमतिष्ठार्थं सुवर्णदक्षिणां सम्पददं इति दक्षिणां दत्ता ऋत्विगादिभ्यो गाः शस्याद्यपकरणं च सुरवे दत्वा पुण्याद्वाचनादिग्रहिमर्जनाद्यन्तं छत्वा ब्राह्मणान् भोज-यत् ॥ इति हिरण्याद्वमयोगः ॥

अथ हिरण्याद्वत्थदानम् । मात्स्ये, अथातः सम्प्रवस्थामि महादानमनुत्तमम् । पुण्यमञ्बर्थं नाम महापातकनाशनम् ॥ पुण्यं दिनमथासाग्र कुत्वा ब्राह्मणवाचनम् । लोकेशाऽऽवाहनं तद्भव तुळापुरुषदानवतः ॥ ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभृषणाच्छादनादिकमः । क्रुष्णाजिने तिलान् कृत्वा काश्चनं कारयेद्रथम् ॥ अष्टाद्यं चतु-**१**३वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम् । ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजक्ष्पेण सं-युतम् ॥ लोकपालाष्ट्रकोपेतं पद्मरामदलाऽन्त्रितम् । तिला द्रोण-मिताः । आभारात्रिपलादृर्ध्व शक्तितः कारयेद् बुघः ॥ भारः पलसहस्रद्वयम् । स्त्रियां तुला पलशतं भारः स्याद्विशतिस्तुला इसभिधानात् । एतच सुर्वणमानकूवरध्वजपुरुषलोकपालाञ्जचक-रक्षकप्तहितस्येति निवन्यकृतः । कूवरो युगाधारकाष्ट्रम् । स्रोकन पाललक्षणं ब्रह्माण्डे उक्तम् । चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टा-द्दीव तु । कौद्रेयवस्त्रसंत्रीतसुपरिष्टाद्वितानकम् ॥ माल्येस्रुफल-संयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् पुरुषेणेष्टदेवतात्रतिमया समन्वितम-धिष्ठितम् । छत्रचामरकौक्षेयनस्त्रोपानहपादुकाः । गोभिर्विभवतः सार्द्धं दद्याच्चशयनादिकम् ॥ अव्याष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथवाजि-भिः । द्वाभ्यामथ युतं दद्याद्धेमसिहध्वजान्त्रितम् ॥ अष्टाऽइतं चतुरक्वं वेति काञ्चनाक्वपरम् । अष्टाक्वकेनेसादि तु पसक्षाक्वपर-मिति भेदः । तत्राञ्बद्वयपक्षे हेममयसिंहाङ्कितध्वजयुक्तस्य इक्षि

अथ प्रयोगः । यजमानोऽद्येत्याद्युक्ता सकलकल्लुष्पटल्लिसुक्तिभवभन्याभावपूर्वकिपनाकपाणिपरमपदमाप्तिकामो देदीप्यमानस्वयपुःप्रभाविजितचन्द्रमण्डलाक्रमणसिद्धाऽङ्गनानयनपट्पद्पेपीयमानवदनाम्बुजन्वपूर्वकिचरकाल्ल्ल्यसहवासकामो वा द्वी
हिरण्याद्वरथमहादानमहं प्रतिपाद्यिष्य इति सङ्कल्प्य गोविन्दादिपूजागुर्वादिविनियोगान्तं प्रकृतिवत कुर्यात् । ततो गुरुर्वेद्यां षोडबारचक्रादि विरच्य तत्र न्यस्तक्रण्णाजिने द्रोणपरिमितान् तिलान स्थापयित्वा तदुपरि पागुक्तक्र्वरथ्यपुरुष्विमिर्ष्टिमिश्चलिनवाऽद्येः सह यथा सुवर्णदाटितं चतुश्चक्रमिन्द्रनील्यमपहेमध्वज्यतं,
प्रसक्षाद्वयपक्षे, हेमसिहाङ्कितस्वनसंयुर्वं प्रागादिदिगष्टकस्थितल्यकः

पाळाऽष्टकपतिमायुतं पद्मरागद्छं सौवर्णस्वेष्टदेवताप्रतिमाऽिषष्टितं चक्रसमीपस्थादवाद्ववचक्ररक्षकादिवनीकुमारप्रतिमाद्वययुतं प्रागुक्त-कुम्भवान्याद्युपेतं सवितानकं यथाशांकि क्छप्तगवीभिर्धुतं प्रससै-रष्टाभिश्चतुर्भित्रीश्वद्वीभ्यां वा प्रसप्तादनाभ्यां युतं रथं स्थापयेत । ततो हिरण्याञ्चरथाय नम इति सम्पूज्योपरि वितानं बध्नीयात । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । एवमभिषिक्तो यजमानो गृहीतकुमुमाञ्जलिस्तं विः पदक्षिणीकुस, नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय * धाम्ना-मधीशायभवाय जेत्रे पापायदावानल देहि शान्तिम् ॥ वस्वष्टका-SSदिसमस्द्गणानां त्वमेव धातां परमं निधानम्। यतस्ततो मे हृदयं प्रयात धर्मेकतानत्वमघौघनाशाद, इति मन्त्रमुक्का पुष्पाअछि मक्षिप्य नमस्कृत्य उपविषयाद्येत्याद्युक्ता सकलकलुषेत्यादिसङ्क-स्पान्ते गुर्वत्विग्भ्यो ब्राह्मणेभ्य इमं हिरण्यादवरथं हैमाष्टादवं हैम-चत्रकं वा सर्वीपस्करसहितमहं सम्प्रददे न ममेति तद्धस्ते पुन-र्जें क्षिपेत् । क्रुतैतदानमतिष्ठार्थमेतात् सुत्रणीत् सुष्मभ्यमहं सम्पद्द इति बदेत् । अत्राप्यस्पद्रव्यत्वे एकाग्निविधानादिकं क्केयम् । ततः पुण्याहवाचनदेवताविसर्जनान्तं कृत्वा प्रकृतिवद् ब्राह्मणान् भोजपेत् ॥ इति हिरण्याक्तरथदानम् ॥

अथ हेमहस्तिरथदानम् ॥ मारस्ये, अथातः सम्मवस्थामि हेमहस्तिरथं ग्रुभम् । यस्य मसादाद्धतननं वैष्णतं याति मानवः ॥ पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवतः । विमवाचितकं कुर्यान् लोकेशाऽऽवाहनं बुषः ॥ ऋत्विङ्गण्डपसम्भारभूपणाच्छादनः दिक्षम् । अत्राप्युपोषितस्तद्वद्वाह्मणैः सह भोजनम् ॥ कुर्यात पुष्य-रथाकारं काञ्चनं मणिमण्डलम् ॥ वलभीभिविरच्य इति सङ्कर्ण्यं गोविन्दादिपुनादि मण्डपपूजादि गुर्वादिविनियोगानतं तुलादान-

वत कुर्यात । गुरुर्वेद्यां पोडशारं त्रिभिश्रकसमन्वितम् # लोक-पालाष्टकोपेतं शिवार्कब्रह्मसंयुतम् ॥ मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मी-प्राष्ट्रिसमन्त्रितम् । क्रुष्णाजिने तिलद्रीणं क्रत्या संस्थापयेद्रथम् ॥ तथाऽष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः । दीपिकोपानहच्छत्र-दर्पणं पादुकान्त्रितम्॥ध्वजे तु गरुडं कुर्याद कूबराग्रे विनायकम्। नानाफलतमायुक्तमुपरिष्टाद् वितानकम् ॥ कौशेयं पञ्चवर्णं च अम्लानकुसुमान्वितम् । चतुर्भिः कल्बौः सार्द्धं गोभिरष्टाभिरन्वित-म ॥ चतुर्भिहेंनमातङ्गेर्भुक्तादामविभूषितैः । स्वरूपतः कारेभ्यां च युक्तं कृत्वा निवेदये र ॥ कुर्यात पञ्चपछादुःवीमाभारादिष शाक्तितः । तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥ त्रिः प्रदक्षिण-माद्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः । इममुचारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो नि-वेदयेत् ।। मन्त्रः प्रयोगे द्वेयः । इत्थं प्रणम्य कनकेन रथप्रधानं यः कारयेत सकलपापविमुक्तदेहः * विद्याधरा Sमरमुनीन्द्रगणा-Sभिजुष्टं मामोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौछेरिति॥ पुष्परथः क्रीडा-रथः । स चोपर्याच्छादितो भवति । वलभ्यां लोकपालाश्रयाः । खपरितनलघुग्रहाणीति दामोदरः । लोकपालशिवार्कब्रह्मलक्षणा-नि पागुक्तानि । नारायणपतिमा नारदपश्चरात्रे । नारायणं चतुर्वाहुं शङ्खचक्रे तथोत्तरे। दक्षिणे तु गदापद्मं नीलजीमृतसन्निभ-म् ॥ वामे श्रीर्वे छकी हस्ता पुष्टिः पद्मकरा परे ॥ उत्तरे बाङ्क-मधः । उपरि चक्रम् । दक्षिणे उपरि गदा, पद्ममध इति । वामे-वामभागे । अपरे दक्षिणे भागे । गरुडस्तु । जपेन्द्रस्याग्रतः पक्षी गुडाकेशः क्रुताञ्जलिः । सन्यजानुगतो भृमौ मूर्द्धा च फणमण्डि-तः ॥ पक्षिजङ्गो नरग्रीवस्तुङ्गनासो नराङ्गकः । द्विवाहुपक्षपुच्छश्च कर्त्तव्यो विनतासुत इति ॥ विनायकोऽपि, चतुर्भुजिस्त्रनेत्रश्च कर्त्तच्योऽत्र गजाननः । नागयद्गोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः ॥ दन्तं दक्षकरे दद्याद्वितीये चाझसूत्रकम् । तृतीये परशं दद्याचतुर्थे मोदकं तथेत्युक्त इसर्थः ॥ पञ्चपलादिसुवर्णपरिमाणं ध्वज-गरुडविनायकादिपतिपासहितस्य रथस्य । अत्राऽधिवासनं हेम-हस्तिसाहितस्थस्येव । स्वरूपहस्तिनोस्तु बहिरेव स्थापनम् ॥ अय प्रयोगः ॥ यजपानो देशकाली सङ्कीत्र्य सर्वपापक्षयानन्तरसम्भा-वितनरकनिवासयातनाऽभितप्तत्रासादिसकलबन्धूद्धरणपूर्वकविष्णु-श्यनसमनन्तरस्वविष्णुपद्याप्तिपूर्वकविद्याधराऽमेरन्द्रादिसेवितेन्द्र-मौलिपदमाप्तिकामः क्वो हेमहस्तिमहादानमहं प्रतिपादिषक्य इति संकल्प प्रकृतिवद् गोविन्दादिपूजामण्डपपूजागुर्वादिविनियोगान्तं सर्वे कुर्यात । ततो गुरुर्वेद्यां षोडशारं विरच्य तदास्तीर्णकृष्णा-डजिनन्यस्ततिल्रद्रोणोपरिपलपञ्चकादाभारान्तं यथाशक्ति सुवर्णेन गजध्यज्ञेकपाल्योत्रवार्कब्रह्मनारायणादिप्रतिमाभिः सह निर्मितं हेमहस्तिचतुष्ट्ययुतं गरूडाऽधिष्ठितध्वजाग्रन्थिवनायकाधिष्ठित-कूबरं पारेतःस्थापितधान्याद्यपस्करं प्रत्यक्षगजद्वयोपेतं सवितानकं रथं स्थापयित्वा । ॐ हेमहस्तिरथाय नम इति सम्पूज्योपरि वितानं बञ्जीयात् । ततः कुण्डसमीपस्यकुम्भस्थापनादिपूर्णाहुत्य-ऽभिषेकान्तं मकृतिवतः । एवमभिषिक्तो यजमानः सपुष्पाञ्जलिहः पद्क्षिणं प्रक्रम्य, नमो नमः शङ्करपञ्चजार्कलोकेश-विद्याधरवासु-देवैः * त्वं सेन्यसे वेदपुराणयज्ञतेजोमय स्यन्दन पाहि तस्मात् ॥ यत्तत्पदं परमगुद्धतमं मुरारेरानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमन्तः। योगैक-मानसद्द्यो सुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथेन ऋढः॥ यस्मात्त्वमेत्र भवसागरसम्प्लुतानामानन्दभाण्डभृतमध्वरपारमात्रम् । तस्मादबौबक्षमनेन कुरु प्रसादं चाभीकरेभरथमाधवसम्पदानाट इति पन्त्रेरावाह्य पुष्पाणि मक्षिष्य नमस्कुस वेदिपश्चिमभागे उप-विक्य प्रामुक्तद्रानसङ्कल्पमुचार्य गुर्देन्विग्भ्य इमं हस्तिरथं प्रामुक्त- सकले।परकरसिंहतं प्रत्यक्षगजद्भययुक्तं युष्पभ्यमहं सम्पदद इति
युर्वोदिभ्यो दत्वा सुवर्णं दक्षिणां दद्यात । विभागः पाक्कृतः ।
स्वस्त्यादिवाचनादिविषमोजनान्तं पाक्कृतम् । द्रव्यात्यत्वेन
एकाग्निविधानमिति केचित् । इति हेमहस्तिरथदानम् ॥

अथ पञ्चलाङ्गलदानम् । मात्स्ये, अथातः संप्रवक्ष्यामि महा-दानमनुत्तमम् । पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनावानम् ॥ पुण्यां तिथिमथासाच युगादिग्रहणादिकीम । भूभिदानं नरो दद्यात् पञ्चलाङ्गलकान्वितम् ॥ खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यज्ञालिन-म् । निवर्त्तनशतं वाऽपि तदर्द्धं वाऽपि शक्तितः ॥ सारदारुपयान् कृत्वा इलान् पञ्च विचक्षणः । सर्वोपकरणैर्धुक्ताँस्तथान्यान् पञ्च काननात् ॥ कुर्यात् पञ्चपलाद्ध्वेमासहस्रपलावधि । दृषान् छक्षणयुक्तांश्च दशैव च धुरन्धराव ॥ सुवर्णशृङ्गाभरणान् मुक्ता-लाङ्गलभाषितान । रौष्यपादाग्रतिलकान रक्तकौद्रोयभूषणान् ॥ स्रग्दामचन्दनयुतान् बालायामधिवासयेत् । पर्जन्यादिसहद्रेभ्यः पायसं निर्ववेचरुम् ॥ एकस्मिन्नेव कुण्डे तु गुरुर्यस्मै निवेदयेत् ॥ पाळाशसिमधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिळाँस्तथा । तुळापुरुषवत् कुर्या-ह्योकेशाऽऽवाहनं ततः ॥ ततो मङ्गलशब्देन सहमाल्याम्बरो बुधः । आहूय द्विजदाम्पसं हेमसुत्राङ्गुलीयकैः ॥ कौक्षेयवस्त्रकटकै-र्मिणिभिश्चापि पूजयेत् । ततः मद्क्षिणं कुर्याद्व्रहीतकुसुमाञ्जलिः॥ इम्मुचारयेन्मन्त्रमथ सर्व निवेदयेव ॥ मन्त्रः प्रयोगे क्वेयः । सप्त-हस्तेन दण्डेन त्रिशदण्डानि वर्त्तनम् । त्रिभागहीनं गोचर्म मान-माइ मजापतिः॥मानेनानेन यो दद्यानिवर्त्तनशतं बुधः। विधिना-डनेन तस्याश क्षीयते पापसंहतिः ॥ तदर्खपि यो दद्यादि गो-चर्ममात्रकम् । भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ खर्वटा-दिलक्षणं मार्कण्डेये ! सोत्सेधवममाकारं माकारं खातकादतम् । योजनार्द्धिविष्कम्भमष्ठभागायतं पुरम् ॥ तद्देंन तथा खेटं तत्पादोनं च खर्वटम् ॥ तथा शुद्रजनमापं सुसमृद्धकृषीत्रलम् । क्षेत्रोन्
पभोगभूमध्ये वसतिग्रामसंक्षिता ॥ यावन्ति लाङ्कलविभागमुखानि भूमेभीसांपतेर्दुहितरं गजरोनकाणि । तावन्ति शङ्करपुरे स समा
हि तिष्ठेद् भूमिमदानमिइ यः कुरुते मनुष्य इति ॥

अय प्रयोगः । यजगानो ऽचेत्यादि सकलपातकश्चयानन्तर-गन्धर्वकिन्नरसुरासुरसिद्धसङ्घतेवितावधूतचामरविमानाधिष्ठानपूर्व-कस्वीयामरनायकत्त्रपूर्वकिपतृषितामहादिवन्धुसाहितश्रमभुपुरगमना-नन्तरैतदेयभूळाङ्गमुखोस्कीर्णरजःसहितहळसम्बद्धदृषरोमसंख्यवर्षा-**ऽबच्छिन्नशम्भुपुरनिवासकामःक्वःपञ्चलाङ्गलमहादानंपतिपादिय**ष्य इति कृतसंकल्पः प्रकृतिवद् गोविन्दादिपूजादिमण्डपपूजादिशुर्वी-दिवि नियोगान्तं सर्वे कुर्याद । ततो गुरुः षोडशारे सारदारुमया-नि पश्चहळानि युगपोत्ररज्जुफाळतोदाद्युपाकरणयुगानि काञ्चनो-पकरणसहितानि काञ्चननिर्मितानि पञ्चहलानि तुलीताम्बृलाद्युप-करणसहिनां शय्यां गामेकां दोग्धीं परितोऽष्टादशधान्यानि मण्ड-पार्द्रगोसहस्रोक्तलक्षणान् द्यान् सालङ्कारान् सोपस्करान् अधि-वास्य वेद्युपरि वितानं बद्ध्या, हलेभ्यो नम इति मन्त्रेण संपूज्य क्कण्डाभ्यासे कलशस्थापनादिवनस्पतिपर्यन्तप्रधानहोगान्तं संपाद-येत । ततो गुर्वाज्ञया चतुर्णामन्यतम ऋत्विक स्वकीये कुण्डे पर्जन्यायाSSदिसंभ्यो रुद्राय जुष्टं निर्वपामीति तत्तदेवतायै प्रसेकं चर्छ निरूप्य पयसि अपियत्वा तेन पालाशसमिद्धिः प्रणवाज्येन इयामतिलेश्च पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यस्तिल्लिङ्गकैर्मन्त्रैः प्रत्येकमष्टाविद्याति-र्ज्ञह्यात् । तत्र ऋग्वेदिनाम् अत्था वदेति पर्ज्जन्यमन्त्रः । एवं यजुर्वेदिनां शक्तो वातः पवताम । सामगानां पर्जन्यः पिता महि-षस्येति । आथर्वणानामभिक्रन्दत् मनपाद्रथोदधीति । आदिस-

स्द्रयोस्तु मन्त्रास्तत्तच्छाखीयाः सामान्यप्रयोगे पृत्रेमुक्ताः । ततः स्विष्टक्कदाद्यभिषेकान्तपः । ततो यजमानः सपुष्पछाङ्गछानि तिः प्रदक्षिणीकृतः, यस्मादेवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च । घुर-ध्याङ्गतेत मम तस्माद्रक्तिः शिवाऽस्तु मे ॥ यस्मात्त्वद्रभूमिदानस्य कळां नाईनित षोढशीम् । दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धमे एव दृद्धा भवेदिरयुक्ता पुष्पाणि इलेषु क्षिप्ता च वेदिपश्चिमत उपविश्व सपत्रविक्तं गुरुमुपवेश्याद्येसादि प्रधानसंकल्पकीर्चनान्तेऽमुकगुरवे सुभ्यं भूमिसहितानि धुरन्धरदयश्चयादिसर्वोपस्करसहितानि सु-धर्णसारदारुमयान्युभयविधानि हलानि सम्पदद इति द्याद । दक्षिणां च । ऋत्विग्भ्योऽन्या दक्षिणा । स्वरपेष्वेकाग्निविधान-मिति केचिद । पुनः पुण्याह्वाचनानन्तरपृजादेवताविसर्जनविम-भोजनानि ॥ इति पञ्चलाङ्गलदानप्रयोगः ॥

अथ घरादानं पारस्ये । अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुभागः । पापक्षयकरं नृणाममञ्जल्यिनाज्ञानमः ॥ कारयेत् पृथिवीं
हैर्मी जम्बूद्वीपानुकारिणीमः। मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेहसमन्वितामः ॥ लोकपालाष्टकापेतां नववर्षसमन्वितामः । नदीनदसमोवेतामन्ते सागरवेष्टितामः ॥ महारत्नसमाकीर्णा वसुरुद्रार्कसंसुनामः ॥ हेन्तः पलसहस्रेण तदर्देनाथ शक्तितः । कातत्रयेण
वा कुर्याद द्विशतेन शतेन वा ॥ कुर्याद पञ्चपलदृष्ट्यमहाकोऽपि
विचल्लणः ॥ पलसहस्रादिमानं मतिमादिसहितायाः प्रथिन्याः ।
सुलाप्रक्षवत् कुर्याल्लोकेशाऽऽवाहनं ततः। ऋत्विष्टमण्डपसम्भारमूषणाच्छादानादिकमः । वेद्यां सुष्टणाजिनं स्नुत्वा तिलानसुपरि
म्यसेतः ॥ तथाष्टादश धान्यानि रसाँश्च लवणादिकानः । तथाष्टी
पूर्णकलशानः समन्ताद परिकल्पयेतः ॥ वितानकं च कौशेषं
फलानि विविधानि च । इसेवं रचित्वा तामधिवासनपूर्वकमः ॥

पुण्यं कालमथासाद्य ॥ मन्त्राः पयोगे द्वेषाः । एवमुचार्यतां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत । घरार्द्धं वा चतुर्भागं गुरवे विनिवेदयेत ॥ दोषं चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्राणिपत्य विसर्जयोदिति ॥ एकहस्तेन कर्त्तव्या चतुरस्रा सुशोभनेति हेमाद्रिरूपनारायणादिभिश्चतुरस्रो-क्ता । त्रिकोणा दानसौरूये दामोदरीये च । परिमण्डलेयन्ये । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम् । पुण्यकाल्ठे तु सं-प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम् ॥ विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजाल-माछिना । नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमसौ रमेत् ॥ पुत्रपौत्रप्र-पौत्राश्च तारयेदेकविकातिमिति ॥ पृथिवीं हैमीं कुर्यादित्युक्ते सप्त-द्वीपत्रसाः करणप्रसङ्गे, जम्बुद्वीपानुकारिणीामिति विशेषणम् । जम्बूद्वीपानुसाद्ययेऽपि नानापर्वतसरोवराद्यान्वतानुकारित्वपनङ्के मर्यादापर्वतवतीमित्युक्तम् । तावता मेरोरकरणप्रसङ्गे मध्ये मेरुसम-न्वितामित्युक्तम् । जम्बूद्वीपलक्षणं विष्णुपुराणे । नववर्षे तु मैत्रेय जम्बृद्वीपिमिदं मया । छक्षयोजनिवस्तारं सङ्क्षेपात् कथितं तत्र ॥ जम्बृद्धीपं समाद्यस छक्षयोजनविस्तरः । मैत्रेय वछयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्वहिः ॥ जम्बृद्धीपं समस्तानां द्वीपानां मध्यतः स्थितम् । तस्यापि मेरुमेंत्रेय मध्ये कनकिनिर्मतः ॥ चतुराद्यीतिसाहस्त्रे-र्योजनैरस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडबाायस्तादृद्रात्रिक्षनमृश्चि विस्तृ-तः ॥ मूळे पोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः ॥ तथा, मेरी-श्रुतुर्दिशं तत्र नवसाहस्मविस्तृतः । इलातृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥ विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायतविस्तृताः ॥ पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः। वैभ्राजः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्व-श्रोत्तरे स्मृतः ॥ मर्यादापर्वतास्तु ब्रह्माण्डे । जाठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिश्चि पर्वतौ । तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिपथायतौ ॥ कैलासो हिमत्रांश्चेव दक्षिणे वर्षपर्वतौ । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवाः क्तव्यंवस्थितौ ॥ त्रिश्वङ्को जारिषश्चिव उत्तरे वर्षपर्वतौ । पूर्वपश्चायतावतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ निषधः पारिजातश्च पश्चिमे वर्षपर्वतौ । तौ दक्षिणोत्तरायामावानील्याविधायतौ॥इलादतस्योभयपार्श्ववर्षिनौ नील्यनिषधौ द्वौ पर्वतौ दैरुर्वेण लक्षयोजनौ ।
वर्षाण्यप्युक्तानि ब्रह्माण्डे । उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चेव
दक्षिणे । एतद्वै भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ भारतं प्रथमं
वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवार्थ्यं मेरोर्व्किणतो
द्विज ॥ रम्यकं चोत्तरे वर्षं तस्य चानु हिर्ण्ययम। उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥ मेरोः पूर्वेण भद्राक्वं केतुमालं तु
पश्चिमे । वर्षे द्वे तु समाल्याते तथोर्मध्यामिलादतम् ॥ नवसाहस्नमेतेषामेकैकं द्विजसत्तम् ॥

अय प्रयोगः । कर्ताऽयेत्यायुक्ता सर्वपापाऽमङ्गलिन्दिनिपितृपुत्रायेकविंदातिस्त्रपुरुषोद्धारणपूर्वक—किङ्किणीजालमालि—
सौवर्णविमानकरणक—नारायणपुरगमनानन्तरकल्पत्रयाऽविञ्चननारायणपुरिनवासकामः क्वो घरामहादानमहं प्रतिपादिषण्य इति
प्रयानसङ्कल्पादिषोडकारिलिखनान्तं प्रकृतिवत् । तहुपिर कृष्णाऽजिनमास्तिर्थं तत्र द्रोणिमताँस्तिलानासाय तहुपिर पागुक्तलक्षणो
मेरोरुपिर पूर्वादिक्रमेण लोकपालाष्टकोपेतां महारत्नयुतां वसुरुद्दादिस्त्रतिमोपेतां घरां स्थापयेत् । तस्याश्च परितः प्रागुक्तधान्यकुम्भाष्टकोपेतनानाविषकलवासःप्रभृतीन् स्थापयेत् । घराये
नम इति पूर्वयेदुपिर वितानं वध्नीयाच्च ॥ ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । एवमभिषिक्तो
यजमानस्तां तिः मदक्षिणीकृत्यपुष्पाण्यादाय । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । नमस्ते सर्वभृतानां स्वमेव भवनं यतः।धात्री च सर्वभृतानामतः पाहि वसुन्थरे॥

वसु घारयसे यस्माद्वसु चातीव निर्मलम । वरुन्धरा ततो जाता तस्मातः पाहि भयादलम् ॥ चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवा-Sचले। अन्नतायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकईमात्॥ त्वमेव लक्ष्मी-गोंविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता । गायत्री ब्रह्मणः पार्के ज्योतस्ना चेन्दौ रवौ प्रभा॥बुद्धिर्बृहस्पतौ रूपाता मेथा मुनिषु संस्थिता।विश्वं प्राप्य स्थितायस्मात्ततो विश्वस्भरा समृता ॥धृतिः स्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा । एताभिर्मृत्तिभिः पाहि देवि संसारसागरा-दिसभिमन्त्रय पुष्पाणि पक्षिप्य नत्वोदङ्मुखान ब्राह्मणान् उप-बेक्याऽचे बाद्यक्त्वा सर्वपापेयादि नारायणपुरनिवासकाम इसन्तं प्रतिज्ञावद् उचार्य इमां कृष्णाजिनन्यस्ततिस्रोपरिविन्यस्तां पञ्च-पछाऽधिकयथाशक्तिहेमसपरिकरनिर्मितां जम्बुद्रीपाऽनुकारिर्णी मर्यादापर्वतमध्यमेरूनवर्वछोकपाछाष्ट्रकनदीनदशतसुतां सप्तसागर-वेष्टितां फलघान्यवस्वादिपतिमाद्यपेतां घरां विष्णुदैवतां युष्मभ्य-महं सम्पदद इति दद्यात् । अर्द्धे तुरीयांशं वाSSचार्याय शिष्टम ऋत्विग्भ्यः । प्रकृतिवद्विभाग इति केचित् । नृपकर्त्तके दाने ग्रामादिदक्षिणा । अन्यकर्त्तृके तु यथाशक्ति सुवर्णमः स्वरूपे त्वेकाग्निविधानमिति केचित् । ब्राह्मणवाचनदेवतापूजनविसर्जन-विप्रभोजनानि प्रकृतिवद् ॥ इति धरादानप्रयोगः ॥

अथ विश्वचक्रदानम् । मारस्ये। अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महा-दानमनुत्तमम् । निश्वचक्रमिति ख्यातं सर्वपापमणादानम् ॥ तप-नीयस्य गुद्धस्य विषुत्रादिषु कारयेत् । श्रेष्ठं पलसहस्रेण तद्रद्धेन तु मध्यमम् ॥ तस्यार्द्धेन कानिष्ठं स्याद्वित्त्वक्रमुदाहृतम् । अन्य-द्विधपलाद्ध्वमञ्चकोऽपि निनेदयेत् ॥ वक्ष्यमाणवित्रवादिप्रतिमा-सहितस्य विश्वचक्रस्येदं मानम्॥ पोडशारं ततश्चकं स्रमन्नेम्यष्टका-७ऽदृतम् ॥ अरा नाभिन्ष्रष्टमुला नेमिन्ष्रुष्टाग्राः शलाकाः । स्रम्- न्तीनां वलयाकाराणां नेमीनां चक्रावयवानामष्टकेनावृतं वेष्टित-मित्यर्थः । नाभिपबे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् । नाभि-पद्मे नाभिरूपाष्ट्रदलपद्मकाणिकायामिसर्थः। अष्टमु दलेषु आवरण-रूपदेवताष्ट्रकस्य सिन्नवेशात् । शङ्खचकेऽस्य पार्थे तु देव्यष्टक-समायुतम् । योगार्ढढं हृत्पदेशावस्थितसम्पुटाकारहस्तद्वयम् । अष्टी देव्योऽपि पञ्चरात्रे । विमलोत्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगा तथैत च । मही ससा तथेशाना अष्टी च परितो हरे: ॥ वरदा दश्गहस्तेन वामहस्तपृतायुधाः । पशस्ततरुणीस्त्वा अष्टी देन्यः मुक्तीिताः ॥ दक्षा दक्षिण आयुधं चक्रमिति दामोदरः । द्विती-यावरणे तद्वतः पूर्वतो जलकाायिनमः अविर्धृगुर्वेसिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च ॥ मत्स्यः कूर्यो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः । रामो रामश्र कृष्णश्र बुद्धः कल्की च ते क्रमातः । तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता । चतुर्थे द्वाद्शादित्या वेदाश्चत्वार एव च ॥ पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकाद्शैव तु । छोकपाछाष्ट्रकं पष्टे दिङ्गातङ्गास्तथैन च ॥ सप्तमेऽख्नाणि सर्वाणि माङ्गलानि च कारयेत । अन्तरान्तरतो देवान विन्यसेदष्टमे पुनः ॥ तुलापुरुष-बच्छेषं समन्तात परिकल्पयेत । कृष्णाजिने तिलादीनि धान्य-वासःफलानि च ॥ होमाधिवासनान्ते तु पृहीतकुसुमाञ्जलिः॥होम इसादि । चक्राधिष्ठितविष्ण्यादिदैवसहोमविषानार्थः ।

स च होमस्त चन्मन्त्रेनीममन्त्रेती पाछतग्रहादिहोमोचरं कार्यः । आगन्त् तामन्ते निवेश इति केचित् । तस्त्र । एतस्य पाछतहोमा-ऽनुवादकतयाऽधिष्ठापंकत्वाभावात्। इममुच्चारपेन्मन्त्रं त्रिः छत्वा-ऽथ प्रदक्षिणम् । मन्त्रः प्रयोगे द्वेयः । इसामन्त्र्य तु यो दद्याद् विश्वचर्क्रं विमत्सरम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुळोके महीयते॥ वैक्कुण्ठळोकपासाद्य चतुर्वाद्दुः सनातनः । सेन्यतेऽध्सरसां सङ्कु- स्तिष्ठेत् कल्पधातत्रयम् ॥ प्रणमेद्वा स्वयं कुत्वा विश्वचन्नं दिने दिने । तस्यायुर्वर्द्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुष्ठा भवेत्।। इति सकल-सुरासुराधिवासं वितरति यस्तपनीयपोडशारप 🛪 इरिमवनसुपा-गतः स सिद्धैश्चिरमधिगम्य नमस्यते शिरोभिरिति ॥ जलशायी ब्रह्माण्डदाने उक्तः । ऋषिक्षं पञ्चरात्रे । जटिलाः व्मश्रुलाः शान्ताः कृशा धर्मानेसन्तताः । कुण्डिकाक्षधराः कार्या ऋषयो द्विभुजाः सदा ॥ घर्मानः ज्ञिरा । कुण्डिका कमण्डलुः । अक्षो-Sक्षमाला । मत्स्यादयः पञ्चरात्रे । बामे शङ्कं गदां दक्षे द्विभुजो मत्स्यक्रपपृक् । नराङ्गिव्रर्भस्यक्रपोऽघो मत्स्यक्रपी जनाईनः ॥ अघोऽङ्ग्रौ मत्स्यक्षं वेति विकल्पः । दामोदरस्तु उक्तायुघकर-चरणादियुतपुरुषाकारेण केवलमस्याकारेण च विकल्पमाह । कुर्मस्त कच्छपाकारात्मत्स्यक्रपोक्तक्ष्पवान् ॥ मधुपिङ्गलवर्णं च चतुर्वाह्वायुर्धेर्दतम् ॥ नराङ्गं श्रुकरास्यं च मनाक्पीनं सुभीषणम् । श्रीवीमकूर्परस्था तु घरानन्तौ पदानुमौ ॥ एतद्भूपघरं देवं वराहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ कूपेरं दंष्ट्राग्रमिति दामोदरः । ज्वलदिमिनमा-कारं सिद्दवक्त्रं नराङ्गकम् । दंष्ट्राकराख्वद्नं खळाजिह्नं सुभी-षणम् ॥ दृत्तास्यं जटिलं ऋद्धमालीदं पीनवक्षसम् । अभेद्यतीक्ष्ण-नखरमात्मसंहतदानवम् ॥तद्वक्षोदारयन्तं च कराभ्यां नखरैर्धश्रम्। गदाचक्रघरं द्वाभ्यां नरसिंहं जगत्मभुम्॥कुण्डीखत्रघरो द्विदीवीमनः परिकीर्त्तितः । क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्रहत् परशुं करे ॥ जामदग्न्यश्च कर्त्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः॥ युवा पसन्तवदनः सिहस्कन्धो महा-बल्ठः।आजातुवाद्दः कर्त्तव्यो रामो वाणधतुर्द्धरः॥मद्यपात्रं च सीरं च वामदक्षिणयोः क्रमातः । गदामुसलवजं च हली रामः मकी-र्तितः ॥ मुसल्रह्षं वज्रमियर्थः । दक्षिणोध्वीधःकरयोर्भद्यपात्र-सीरे । वामयोर्गदामुसले इति चतुर्वाहु रामः । शङ्खचक्रधरः अपामो द्विभुजः कृष्णसंक्षकः ॥ काषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धसंसक्त-चीवरः।पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी बुद्धःप्रकीर्त्तितः॥स्त्र्योद्यत-करः कुद्धो हयाऽऽक्द्दो महावलः । म्लेच्छोच्छेदकरः कल्की द्विभुजः परिकीर्त्तितः ॥

अथ विश्वचक्रपयोगः। अधिवासनदिने यजमान उपविश्या-**डचेसादिकीर्त्तनान्ते सकल्पापक्षयानन्तरविष्णुलोकमहीयमानःव-**विभिष्टनैकुष्ठलोकासादनपूर्वकचतुर्वोद्दृत्वसनातनत्वाप्सरःसङ्घसेच्य-मानतानिशिष्टकल्पत्रयाऽवधिकतद्धिकरणकस्थितिकामोऽहं क्वो विश्वचक्रमहादानं प्रतिपादयिष्य इतिकृतसङ्करपः प्रकृतिवद्गीविन्दा-दिपूजादिमण्डपपूजादिगुर्वादिविनियोगान्तं सर्व कुर्याद । ततो गुरुर्वेद्यां षोडशारचक्रन्यस्तक्रष्णाजिने स्थापितद्रोणमितितिस्रोन परि विक्वचक्रं संस्थाप्य तस्याष्ट्दलक्षणिकायां विष्णुपूर्वादि-दलेषु विमला उत्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगा मही ससा ईशाना इसष्टी । द्वितीयावरणे षोडशकोष्ठेषु जलशाय्यत्रिमृगुविसष्ठ-ब्रह्मकश्यपमस्याचवतारदशकमिति मतिमाषोडशकम् । तृतीया-SSबरणे, गौरी ब्रह्माणी रौद्री कौमारी बैष्णवी वाराधीन्द्राणी कौशिकीत्पष्टी,ध्रुवाध्वरसोमाऽऽप्यानिलनलप्रत्यूषप्रभासाख्यानष्टी बसुन् । चतुर्थावरणे धात्रर्थममित्रवरुणांश्वभगेन्द्रविवस्वत्पृषपर्जन्य-त्वष्टृविष्ण्वारूयद्वादशादिसान् वेदचतुष्ट्यं च । पश्चमे पश्चभृतानि पृथिवीवरुणवह्निवायुविनायकाऽऽत्मकानि वीरभद्रशम्भुगिरिशा-ऽजैकपादिहर्बध्न्यपिनािकभुवनाऽधीक्वरकपाछिविशाम्पतिस्थाणु-भगाख्यान एकादश रुद्राध । पष्टे यथाक्रमतो छोकपालाष्ट्रकप् वेरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाऽअनपुष्पदन्तसर्विभौमसुप्रतीक इति दिगाजाष्ट्रकम्। सप्तेमे खड्गचक्रवाकिपाबाध्वजगदाशुलबङ्गकौस्तुभ-चामरच्छत्रपूर्णकुम्भदीपद्यभक्षपाणि स्वर्णखण्डानि।अष्ट्रमे विष्णु- देच्यऽष्टकजलक्षाय्यऽत्रिभृगुवसिष्ठत्रह्मकदयपमस्यप्रतिमापोडकार्क स्थापयेत । चकस्य समन्ताद् धान्यससद्रव्यपूर्णकुम्भाष्टकवस्त्र-मारुपेक्षुफलरत्नादीनि वितानकं च बश्लीयात । ततो विश्वचक्राय नम इति पूजयेत् । ततः कुण्डसमीपे कलशस्थापनादिपूर्णादृस्य-भिषेकान्तं प्रकृतिवत् । पाकृतग्रहादिहोमोत्तरं चक्राधिष्ठितविष्ण्या-दिभ्यस्तत्तन्मन्त्रेनीममन्त्रेर्वाऽष्टाविश्वसादिसंख्यया होमः कार्य इति केचित् । ततोऽभिषिक्तो यजमानो विक्वचक्रं विः प्रदक्षिणी-क्रुस, नमो विक्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः । परमानन्दरूपा त्वं पाहि नः पापकईमात् ॥ तेजोमयमिदं यस्मातः सदा पश्यन्ति योगिनः । हृदि तत्त्वं गुणातीतं विकायकं नमाम्यहम् ॥ बामुदेवं स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः । अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताबिह ॥ विक्यचक्रमिदं यस्मात् सर्वेषापहरं परम् । आयुर्वं चाधित्रासश्च भतादुद्धर मामत इति मन्त्रेरामन्त्र्य पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत वेदिपश्चिमत उपविषय पूर्वोक्तं सकलेत्यादि-महासङ्करपमुक्ता इमं विश्वचन्नं विष्ण्यादिदेवताऽधिष्ठितं विष्णु-देवत्यं युष्मभ्यमहं संमदद इति दद्यात । दानमतिष्ठार्थं सुवर्णम् दक्षिणाविभागः पाक्कुतः । स्वल्पेष्वेकाग्निविधानिमिति कोचित् । षुण्याहवाचनदेवताविसर्जनबाह्मणमोजनानि कुर्यात्॥ इति विक्व-चक्रदानम् ॥

अथ महाकल्पळतादानम् । मात्स्ये । अथातः संप्रवश्यामि
महादानमनुत्तमम् । महाकल्पळता नाम महापातकनावानम् ॥
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य छत्वा ब्राह्मणवाचनम् । ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ तुळापुरुषवत कुर्याछोकेशाऽऽवाहनादिकम्।चामीकरमयीः कुर्याद्यकल्पळताः स्रुभाः॥ चामीकरं हेम । नानापुष्पफळोपेता नानास्यक्रविभृषिताः ॥ पुष्पफळां-

धुकानि स्वरूपत इति कोचित्। हैमानीखपरे। हैमलतायां स्वरूपतः पुष्पफलानां यागासम्भवात्तानि हैपानि । अंग्रुकानि त कार्पासा-दीन्येव । हैमोपादाने तत्पदे छक्षणापत्तेरितित युक्तं मतीमः । अत्र फछान्याऽऽम्राकाराणीति रूपनारायणः । कामनया पश्च-पुत्रादिरूपाणीति दामोदरस्त्राकराऽऽदयः । विद्याधरस्रवर्णा-नां पिथुनैरुपशोभिताः * हारानादित्स्रभिः तिद्धैः फलानि च विहङ्गमैः ॥ सिद्धाः पक्षिमुखाः किन्नराः । विहङ्गमाः पक्षिणो वेति दामोदरः । लोकपालानुसारिण्यः कर्त्तव्यासासु देवताः । ब्राह्मीमनन्तराक्ति च छवणस्योपरि न्यसेत् ॥ अधसाछतयो-र्मध्ये पद्मशङ्ख्यरे उमे । इभासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुछिन्ना-SSयुधा ॥ रजन्यजस्थिताग्नेयी स्हवपाणिरथानले । याम्ये च महिषारूढा गदिनी तन्दुछोपरि ॥ घृते च नैर्ऋती स्थाप्या खड्गा च दक्षिणाऽपरे । वारुणी वारुणीक्षीरे दृषस्था नागपाशिनी ॥ पताकिनी च वायव्ये मृगस्था क्षकरोपरि । सौम्या तिलेषु सं-स्थाप्या शङ्किनी निधिसंस्थिता ॥ माहेश्वरी त्रपाक्रहा नवमी च त्रिशुलिनी । मौलिन्यो वरदास्तद्वतः कर्त्तव्या बालकान्विताः॥ मध्ये द्वे छते । अष्टदिक्ष्त्रष्टौ । मध्ययोरघो ब्राह्मयनन्तज्ञक्ती । अन्यासामधो लोकपालशक्तयः । इभ ऐरावतः। रजन्यजो हरिद्वा-छागः । निधिः कलशाकारः । बालकान्विताः क्रोडस्थवालाः । शक्तया पञ्चपलाद्रक्ष्मासहस्रात प्रकल्पयेत । सप्रतिमादीनामेत-न्मानम् । सर्वासामुपरिष्टाच पश्चवर्णवितानकम् । धेनवो दश्च-कुम्भाश्च बस्नयुग्मानि चैव हि ॥ मध्यमे द्वे तु गुरवे ऋत्विग्भ्यो-Sन्यास्त्येव च II ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्काम्बराहतः । त्रिः पदक्षिणपाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । मन्त्रः पयोगे क्वेयः । इति मकलदिगङ्गनापदानं भवभयसुदनकारि यः करोति कं आभमतः फल्ट्देशनागलोके वसित पितामहवत्सराणि श्रिशतः ॥ पितृशत-मथ तारयेज्ञवान्धेर्भवदुरितौष्यविनाशखद्भेदः । सुरपितवनिता-सहस्रसंख्यैः परिज्ञतमम्बुजसंसदाभियन्य इति ॥

अय मयोगः । अद्येखादि सकलपापक्षयविशुद्धदेहत्वपूर्वकः देवगणसहस्रपरिष्टतब्रह्माभिनन्यपितृशतभवाव्यिसन्तारणाऽनन्तर-**ब्रह्मत्रिंशद्वत्सरा**ऽविषकामितफलदनागलोकिनिवासकामःइवःकल्प-ल्ठतामहादानं प्रतिपादायिष्य इति सङ्करूप्य प्रक्तित्रद्रोविन्दादिपूजा-मण्डपपुजागुर्वादिविनियोगान्तं सर्वे कुर्यात । ततो वेदिलिखितचक्र-न्यस्तल्यणक्टोपरि एकांलतौ स्थापियत्वा तन्मुले ब्राह्मी न्यसेत् । छत्रणञ्जर एवाऽपरां छतां स्थापयित्वा तन्मूछदेशे आनन्तीं शक्ति षूर्वीदिक्रमात् गुडहरिद्राछ।गतन्दुलघृतसीरशर्करातिलनवनीतस्था-Sष्टळतामूळेषु ऐन्य्रादिशक्तीः संस्थाप्य परितो दश पूर्णकुम्भानः दश धेनूर्दश वस्त्रयुगानि फलमाल्यधान्यादीनि च विन्यस्य लता-सहिताः बक्तीः पतिष्ठापूर्वकं पूजियत्वा ततः कुण्डसमीपस्थकल्रश-स्थापनादिपूर्णादुसभिषेकान्तं पञ्चतित्रत्। एवमभिषिक्तो यज्ञमानः कल्पल्रतास्त्रः मदक्षिणमादृत्य, नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माऽण्डलोकेव्यरमालिनीभ्यः **क्ष** आर्द्यासताधिक्यफलपदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावघूभ्यः ॥ इमं मन्त्रमुचार्य पुष्पाणि प्रक्षिष्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उपविश्य महासङ्कृत्यमुक्त्वा यथा-सम्भवं विशेषणवैशिष्ट्यमुचार्य दद्यात्।स्वरुपद्रव्यत्वपक्षे एकाम्नि-विधानमिति केचित । पुण्याहवाचनदेवतापूजनविसर्जनमण्डपादि-मतिपादनबाह्मणभोजनादीनि । इति कल्पलतादानम् ॥

अय सप्तसागरदानविधिः । मात्स्ये । अथातः सम्प्रवस्थामि
महादानमञ्ज्ञमम् । सप्तसागरकं नाम सर्वपातकनाज्ञनम् ॥ कारयेद सप्तकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः । मादेशमात्राणि तथा

रविमात्राणि वा पुनः ॥ कुर्याद सप्तपलाद्ध्वमासहस्राच्च शक्ति-तः । संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिछोपरि ॥ प्रथमं पूरवेत कुण्डं छवणेनं विचक्षणः । द्वितीयं पयसा तद्वतं तृतीयं सर्पिषा पुनः ॥ चतुर्थे तु गुडेनैव दश्ला पंश्रमपेव च । षष्टं शर्कः-रया तद्ववः सप्तमं तीर्थवारिणाः ॥ स्थापयेल्लवणस्यान्तर्बेद्याणं काञ्चनं श्रुमम् । केरातं शीरमध्ये च घृतमध्ये महेक्तरम् ॥ मास्करं गुडमध्ये च द्धिमध्ये सुराधिपम् ॥ शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जल-मध्ये च पार्वतीम् ॥ सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च सपन्ततः । तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत् ॥ ततो वारुणहोमान्ते स्ना-पितो वैदेषुंङ्गवैः । त्रिः पद्क्षिणमाष्ट्य मन्त्रानेतानुदीरयेव ॥ मन्त्राः मयोगे क्वेयाः ॥ इति ददाति रसाध्यतसंयुतान सुचिर-ऽविस्मयवानिह सागरान् * अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ पद्मुपैति हरेरमरार्चितः॥ सकलपापविधौतविराजितः पितृपितामहपुत्रकलत्र-कम् 🗱 । पुत्रदातत्रयमिति वाचस्पतिमिश्रः पपाउ । पुत्रकलत्रकः मिति रत्नाकरदामीदरादयः । नरकलोकसमाकुलमप्ययं झटिति सोऽपि नयेच्छिवमन्दिरम् * इंसादि । प्रादेशान्तिकमात्राणीति तिर्यग्र्र्ध्तम् ॥ रत्निरङ्गुष्ठपर्वाणि प्रादेशः परिकीत्तितः । सार्द्धः दशाङ्ग्रेखः पादेश इति कल्पतसः । ब्रह्मादिपतिमा ब्रह्माण्ड-दानादी दर्शिताः॥

अथ प्रयोगः । यजमानोऽधित्यादि कंद्धवंश्वसम्भावितनरकः निवासिषद्विषतामद्दुत्रकलन्नशिवमन्दिरनयनपूर्वकाऽमराऽमृतत्व— विशिष्टस्वीयद्दरिषद्द्याप्तिकामः व्वः सप्तसागरमद्दादानमदं प्रतिपा-द्यिष्य इति सङ्करूप्य गोविन्दादिपूजादिमण्डपपूजागुर्वादिविनि-योगान्तं पञ्चतिवद् । ततश्चक्रांसादितकृष्णाजिनन्यस्ततिलद्वीणे हैमानि सप्तकुण्डानि संस्थाप्य क्रमेण लवणदुग्यघृतगुडद्धिशर्कराः तीर्थवारिभिः पूरियत्वा तेषु ब्रह्मकेशनमहेश्वरभास्करमुराषिप-क्रमीपार्वतीप्रतिमाः स्थापयेत्। परितोऽष्टादश घान्यानि वितानकं चोपरि सब्रह्मादीन सागरान पुजयेच। ततः कुण्डसमीपस्थकल्या-स्थापनादिवनस्पतिहोमान्तं मतिकुण्डमष्टाविशसष्टोत्तरशताष्टोत्तर-सहस्रान्यतमसंख्यया स्वस्वशाखीयैर्वारुणेर्मन्त्रीस्तळात् हुत्वा स्विष्ट-कुदादिपूर्णाहुसभिषेकान्तं पाक्ततं कुर्युः । एवमभिषिक्तो यज-मानः सागरानः त्रिः पदक्षिणीकृत्य, नमो वः सर्वितिन्ध्रनामा-थारेभ्यः सनातनाः । जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नगः ॥ क्षीरोदकाSSज्यद्धिमाधुरलावणेखुरसाSमृतेन सुवनत्रयजीव-संघान * आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्तस्तरमान्ममा-उप्यचिवचातमळं विघध्तम् ॥ यहमातः समस्तभुतनेषु भवन्त एव तीर्थाऽपरासुरस्रबद्धमणिपदानम् । पापक्षयोऽसृतविलेपनमूषणाय लोकस्य विभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीरिति मन्त्रेरनुपन्त्य पुष्पा-णि मिक्षण्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उपविश्य देशकालकीर्त्तना-न्ते सकलकलुषसपेत्यादिमहासङ्करपमुक्ता सप्तसागरान् ब्रह्मादि-भातिमासहितान सोपस्करान विष्णुदैवतान तुलापुरुषमत्स्यपुरा-णीयभागव्यवस्थया युष्मभ्यमहं संगददे न ममेति सुवर्णदक्षिणां दद्याद । स्वल्पे त्वेकामिरिति केचित् । ततः प्रण्याहवाचनप्रहादि-पुजाविसर्जनब्राह्मणभोजनानि कुर्यात्।इति सप्तसागरदानविधिः॥

अथ रत्रधेनुदानिविधिः ॥ मात्स्ये, अथातः सम्मवस्यामि महादानमनुत्तमम् । रत्नधेनुरिति ख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥ पुण्यां तिथिमथासाध तुलापुरुषदानवत् । लोकेशाऽऽवाहनं तद्व-त्ताे धेनुं पकल्पयेत् ॥ भूमौ कृष्णानिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयु-तम् । धेनुं रत्नमर्थी कृत्वा सङ्कल्पविधिपूर्वकम् ॥ स्थापयेत् प्रा-रागणमेकाशीतिमुले विधिः । पुष्परामशतं तद्वद् घोणायां परि-

करनयेत् ॥ खळाढे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं हशोः ॥ श्रूयुमे विद्रवशतं शक्ती कर्णद्वयोः स्थिते॥ काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो बज्रशतात्मकम्। ग्रीवायां नेत्रपटकं गोमेदकशतात्मकम् ॥ इन्द्र-नीलशतं पृष्ठे वैद्वर्यशतपार्श्वके । स्फाटिकैरुदरं तदत्सीगन्धिकशतात कटिः ॥ सौगन्धिकं पद्मरागः । सौगन्धिकं तु कह्कारे पद्मरागे च कत्तृण इति वैजयन्तीकोशाद ॥ खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् असूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दनम् ॥ कुङ्कमानि च रोमाणि रौष्यां नामि च कारयेदः । गारुत्पतशतं त-द्वदपाने परिकरपयेत ॥ अथान्यानि च स्त्रानि स्थापयेत सर्व-सन्धिषु । कुर्याच्छर्करया जिहां गोमयं च गुडात्मकष ॥ गोमूत्र-माज्येन तथा द्यादुग्धं स्वरूपतः । पुच्छाग्रे चामरं दद्यात् समीपे ताम्रदोहनम् ॥ क्रुण्डलानि च हैमानि भृषणानि च शाक्तितः । कारयेदेवमेत्रं त चतुर्थाश्चेन वत्सकम् ॥ तथा सर्वाणि घान्यानि पादाश्चेक्षुनयाः स्मृताः । नानाफलानि सर्वाणि पञ्चनणै विता-नकम् ॥ एवं विरचनं कृत्वा तद्बद्धोगाधिवासनम् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुपापन्त्रयेद्ध्यः ॥ गुढ्येनुवदापन्त्र्य इदं चोदाहरेत्ततः ॥ मन्त्रः प्रयोगे क्षेत्रः। आमन्त्र्य चेत्थमभितः परिष्टस भक्तो दद्याद् द्विजाय गुरवे जलपूर्वकां ताम * यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोप-वासः पापैतिमुक्ततनुरेति पदं सुरारेः॥ इतिसकलविधिज्ञो रत्नधेनु-मदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम्। सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः सह मद्नसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोरिति ॥

अथ प्रयोगः।अधेत्यादि सकलकलुप्तयमदनस्वरूपत्वपूर्वक-बन्धुवर्गपुत्रपोत्रादिसहितवरविमानारोहणपूर्वकगोलोकप्राप्तिकास्-स्तद्वच्छम्अपद्रपाप्तिकामस्तद्वद्वरिपद्रमाप्तिकामो वा श्वो रत्नघेतु-महादानमदं मातिपादायिष्य इति संकल्प्य मक्कतिवहोविन्दादिपूजाः

मण्डवपूजागुर्वादिवियोगान्तं कृत्वा मुहः शोडशारे कृष्णाजिनं प्रसार्य तद्वार छवणं द्रोणामितं प्रसार्य तद्वार रेखामयां प्राङ्मुखीं गामुदक्पादामालिख्य स्वैरङ्गानि कुर्याद । तन्न एका-Sभीतिपद्मरागैर्मुखम् । पुष्परागश्चतेन नासाग्रम् । छछाटं हेम-तिलकम् । पञ्चाशन्मुक्ताफलैः पत्येकं दशौ । विद्रुपश्तेन विभज्य भ्रयुगम् । शुक्तिभ्यां कर्णौ । काञ्चने शृङ्गे हीरकशतेन शिरः । गोमेद्कशतान्वितेन नेत्रनामकपटेन ग्रीवाम् । वैदूर्यशतेन पाइवें । क्ष्फटिकशतेनोदरम् । पद्मरागशतेन कटिम् । शक्तितो हेम्ना खुरान्।सूर्यकान्तकपूराभ्यां दक्षिणब्राणपुटम्।चन्द्रकान्तचन्द्ना-भ्यां वामघाणपुटम । कुङ्कुमेन रोमाणि । इप्येण नामिम्। गारुत्मतशतेनाऽपानम् । रत्नान्तरैः सर्वसन्धीन् । शर्करया जिह्वाः म् । गुडो गोमये । आज्यं मुत्रे । चामरं पुच्छाग्रे । स्वद्भपतो द्धिद्ग्धे सिन्ने ताम्रपदोहनं सीवर्णकुण्डलग्रैवेयकादीनि स्था-प्यानि । एवं घेतुसाधनद्रव्यचतुर्थीक्षेत्र धेनोरुत्तरतः प्राङ्गुसुख-मुद्दक्पादं वत्सं वरयेव।दाधदुग्धदोहनानि च बत्से न सम्भवन्ति। समन्तादष्टादश धान्यानि फलपुष्पत्रस्त्रादीनि चासाद्य रत्नधेनवे सवत्सायै नम इति पूजायित्वा वितानं बद्वीयात्।ततः कुण्डसमीप-स्वकल्यास्यापनादिमक्कतिवदः । एवमभिषिक्तो यजगानो रस्त-धेनुं त्रिः पदक्षिणमाद्योपतिष्ठेत् । मन्त्रास्तु । मा छक्ष्मीः सर्वभू-तानां या च देवे व्यवस्थिता । घेनुक्षेण सा देवी मम शानित प्रयच्छतु ॥ देहस्था या रुद्राणी शङ्करस्य च या प्रिया। धेनुक्ष्येण सा देवी मम पापं न्यपोहतु ॥ विष्णोर्वक्षांस या छक्ष्मीः स्वाहा मा च विभासौ । चन्द्रार्कशक्रशक्तियी धेनुक्पा च सा श्रिये॥ चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । लक्ष्मीर्या लोकपालाना ह्या बेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥ खथा या पितृमुख्यानां स्वाहा यश्मुजां

च या । सर्वपापहरा धेतुस्तस्माच्छान्ति मयच्छ मे ॥ त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पदन्ति रुद्देन्द्रकम्छासनवास्रदेवाः । तस्मात्
समस्तभुवनवयदेवयुक्ते मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानमिति ॥
ततः पुष्पाणि प्रसिन्य नमस्कुस वेदिपश्चिमत उपविक्याचेत्यादिमहासंकल्पमुच्छा इसां रत्नधेतुं पश्चरागमुखां पुष्परागद्योणां सुवर्णातेलकालङ्कुनां सुक्ताफलादिरचितनयनाऽऽद्यवयवोपेतां धेतुः
साधनपद्यरागादिद्रव्यचतुर्थीकोन् रचितवत्ससहितां परितः स्थापितधान्यपुष्पफलादिम् ति विष्णुदैवतां सुरवेऽहं समदद इति । एवं
दद्यादिति भूपालरत्नाकरादयः । हेमाद्यादयस्तु एकाधिविधान
धकस्मै, अनेकाधिपसे तु तुलापुरुषवदिभाग इत्यादुः । सुवर्णदिस्त्रणां द्याद् । ततः स्वस्त्यादिवाचनग्रहादिपूजनविसर्जनव्याद्मणां द्याद । ततः स्वस्त्यादिवाचनग्रहादिपूजनविसर्जनव्याद्मणां नादि पूर्ववद ॥ इति रत्नधेतुदानमयोगः ॥

अथ महाभृतघटदानिषिः । मात्स्ये । अथातः संमवस्थापि
महादानमनुत्तमम् । महाभृतघटं नाम् महापातकनाञ्चनम् ॥ पुण्यं
दिनमथासाय कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। ऋत्विष्युण्डपसम्भारभृष्णाम्ब्रादनादिक्मः ॥ तुलापुरुववतं कुर्याङ्गोक्षेताऽऽवाहनं तथा ।
कारयेत काश्चनं कुम्मं महारत्नचितं तुवः ॥ महारत्नानि ब्रह्मोक्रानि । मादेशादङ्गुल्यातं यावरकुर्यात्ममाणतः । क्षीराष्ट्रपृजितं
तद्वत्करपरक्षसमन्वितम् ॥ पद्मासनगतांस्ततः ब्रह्मावेण्युमहेक्यरातः ।
क्रोकपालातः सहेन्द्राश्च स्ववाहनसमन्वितानः ॥ वसहेण् धृतां तद्वतः
कृत्वा पृथ्वी सपङ्कनाम् । वस्णं चासनगतं काश्चनं मकरोपिः ॥
हृताशनं मेवगतं वायुं कृतमृगासनम् । क्र्यवेदस्याक्षस्त्रं स्याद्
यजुर्वेदस्य पुत्रः सुक्सुवौ दक्षिणे करे ॥ पुराणवेदो वरदः।
साक्षस्त्रक्रमण्डलः ॥ अत्र कल्परक्षम्तिमामादेशादिपरिमाण्याः

हितयदसंपादकसुवर्णमानमाधिकम् । पारेतः सर्वधान्यानि चामरा-ऽऽसनद्र्पणम् । पादुकोपानहच्छत्रभृषणाच्छादनादिकम्॥क्षट्यां च जलकुम्भाँश्च पश्चत्रणं वितानकम् ॥ जलकुम्भाः षोढरा । स्नात्वा-ऽधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतसुदीरयेत् ॥ मन्त्रः प्रयोगे क्रेपः । इत्युचार्य महाभृतयदं यो विनिवेदयेत् । सर्वपापविनिर्सुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ विमानेनार्कवर्णेन पितृवन्धुसमन्वितः । स्तूप-मानो वरस्वीभिः पदं प्राप्नोति वैष्णवम् ॥ पोढशैतानि यः कुर्यान् नमहादानानि मानवः । न तस्य पुनराष्टिचरिह छोकेऽभिजायत इति॥

अथ प्रयोगः । अद्येखादि सकलपापश्चपूर्वकिपत्रादिसकल-बन्धुजनसद्धिताऽपरस्त्रीसैच्यमानाऽकेवर्णविमानकरणक-विष्णुपद-शाप्तिकामः क्त्रो महाभूतघटमहादानमहं मतिपादियष्य इति सङ्कल्प्य मकुतिवद्गोविनदादिपूजामण्डपपूजागुर्वीदिविनियोगान्तं कुर्याद । गुरुः षोडशारे चज्रमौक्तिकमाणिक्यनीलमरकताख्यमहारत्नान्वितं तुल्याभ्यां गव्यदुरधञ्चताभ्यां पूर्णं मध्यस्थापितकल्पद्यसं घटाकारं महाभूतवरं स्थापयेत।वटमध्ये ब्रह्मादिमतिमाः स्थापयित्वा चतुर्दिश्च अष्टादश धान्यानि छत्रचामरभूषणशय्यादीनि षोडशजलकुम्भाँश्च सिवापयेव।ततो,महाभूतघटाय नम इति सम्प्रज्य वितानंबध्नीयात्। ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । एवमभिषिक्तो यजमानो महाभूतघटं त्रिः पदक्षिणमाहत्य, नमी वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे । महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्त शिवं मम।। यस्मान्न किश्चिद्प्यास्ति महाभूतैविना कृतम् । ब्रह्माण्डे सर्वभृतेषु तस्माच्छीरक्षयाऽस्तु मे इत्युपस्थाय पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत वेदिपश्चिमत उपविष्याद्येत्वाद्युक्ता महासङ्कलपमुचार्य इमं महाभूतघटं महारत्नचितमन्तःस्थितसीवर्णकल्पटक्षादिपुराण-बेदान्तमतिमासदितं परितःस्थापिताऽष्टादशयान्यखन्नवामरासन् धारपापुणेकुम्मादिसहितं विष्णुदेवतं तुलापुरुषवत् त्रेषा । ततः युण्याहवाचनग्रहादिपूजन-विसर्जनगण्डपादिमातेपादन-वाह्मण-भोजनाशीर्वादग्रहणमङ्गलाचारादीनि॥इति महामृत्यटमहादानम्॥ इति श्रीमीमांसकमद्दशङ्करात्मजमह्ननीलकण्डक्वतेदानमयूखे पोडश-महादानानि ॥

अथ दश महादानानि । कौर्म, कनकाऽक्वतिला नागा दासी रथमही गृहाः। कन्या च किपला धेनुर्महादानानि वै दश।। बहिपुराणे । राम उनाच । क्रोधादिकं मया कर्म कृतं मुनिवरी-श्वमाः । कथं तस्माद्विमुच्येऽहं पापात् प्राणित्रधादिकात् ॥ इत्यु-क्का धर्मतत्त्वज्ञाः पापानां पावनं परम् ॥ दानं चेट छुवर्णस्य ते तमुचुर्पहर्षयः ॥ व्यासः । सर्वान् कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छ-न्ति काञ्चनम् । एतद्धि भगवानन्निः पितामहसुतोऽन्नवीत् ॥ नन्दिपुराणे । तस्मात् स्वशक्तया दातव्यं काञ्चनं मानवैर्भुवि । नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनम् ॥ सुत्रर्णस्य सुत्रर्णस्य स्वर्णे यः पयञ्छति । सर्वेपापविनिर्भुक्तः स्वर्गेलोके महीपते ॥ आद्यसुवर्णशब्देन हिरण्यसुक्तम् । द्वितीयेन च शोभनवर्णत्वम् । त्त्रीयेन परिमाणविशेषः । सुवर्णद्वितयं दत्वा अक्षयां गतिमाप्तु-यात् । दत्त्रा सुवर्णस्य शतं द्विजेश्यः श्रद्धपाडन्त्रितः । ब्रह्मछोक-मनुपाप्य ब्रह्मणा सह मोदते ॥ सक्चदुचरितसुवर्णशब्दस्य वोडश-मापनिशिष्टहेमनाचितेति पागुक्तम् । सुनर्णदाने देवसुनर्णस्य तृतीयश्चतुर्थो वांशो दक्षिणेति पूर्व परिभाषायामुक्तम् । रजतमिति केचित् । दानमन्त्रः । हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलद्मतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ कोमें । पलैकं द्विग्णं बाऽपि त्रिगुणं शक्तयनुक्रमात । कनकं स्यात सुवर्णेन द्वाभ्यां त्रिभिः सद्क्षिणम् ॥ यस्नाद्धो वा तत् कुर्यादक्षिणा स्याद् यथारुचि ॥ इति सुवर्णदानम् ॥

आदित्यपुराणे । आदिसोदयसम्प्राप्ती विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । ददाति काश्चनं यो वै दुःस्वप्तं प्रतिहन्ति सः ॥ ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाष्मा विलीयते ॥ वायुपुराणे । गुञ्जा गुञ्जार्द्धमात्रं वा नियतः प्रतिवासरम् । कनकं न्यस्य लिङ्गं तु ब्रजेत्तत्पदसुत्तमम् ॥

ब्रह्माण्डे । श्रृणुष्वाविहतो दानं ब्रवीमि तव नार्रेद । शत-मानमिति प्रोक्तं सर्वपापपणाश्चानम् ॥ आयुष्यं श्रीकरं पुण्यम् आरोग्यं सन्ततिप्रदम् । भ्राक्तमुक्तिपदं स्वर्ग्यं सर्वमङ्गलकारणम् ॥ पुण्यकालेषु सर्वेषु चन्द्रस्यंग्रद्दादिषु । नित्यं वा कारयेद् दानं जन्मक्षेषु विशेषतः ॥ पुण्यदेशेषु सर्वेषु यहे देवालयेषु च । यश्च साधनसम्पत्तिस्तत्र दानं समाचरेत् ॥ तथा, गन्येन भूमिशकृता जलेन आलिख्य मध्ये सिततन्दुलश्चिश्च सरोहहं सुन्दरकेसराद्यं सक्णिकं चाष्ट्रदलं विलिख्य ॥ तस्मित् हिर्ण्यं शतमानपात्रं निधाय तस्योपितं विचिन्य । ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमाराध्यगन्था-दिभिरादरेणं ॥ विमं तथा वेदविदाविरिष्ठं विचिन्य बुद्धा तु स-मर्चियत्वा । दद्यात् सुवर्णं शतमानमस्य सम्मीयतामात्मभूरित्युदी-ध्यं । शतमानं शतकृष्णलमाषाद्युन्मतम् ॥ इति शतमानदानम् ॥

अध रजतदानम् ॥ स्कान्दे । यः प्रयच्छति विपाय रजतं चाऽपि निर्मेळम् । स विधूयाऽऽधु पापानि स्वर्गलोके महीयते ॥ इपवान सुभगः श्रीमानिह लोकेषु जायत, इति रजतदानम् ॥

अथाश्वदानं स्कान्दे । अश्वं यस्तु प्रयच्छेद्वे हेमचित्रं सुलक्ष-णम् । स तेन कर्मणा देवि गान्धर्वं लोकमञ्जुते ॥ थारते । सर्वोप-करणोपेतं सुवानं दोषवर्जितम् । योऽश्वं ददाति विभाय स्वर्ग-स्रोके महीयते ॥ तथा, यावन्ति रोमाणि हये भवन्ति हि नरेश्वर। सावतो वाजिदा लोकान् पाप्तुवन्तीह पुष्कलान् ॥ कालिकान पुराणे । अध्वं वा यदि वा युग्यं सोभने चाऽथ पादुके । ददाति यः प्रधानं वे ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः ॥ तस्य दिन्यानि यानानि स्थाध्वजपताकिनः । दुष्टः पंन्था नचैतेह भविष्याते कदाचन ॥ अत्रं दिन्ययानस्य दुष्ट्पंथविरहसम्पत्तिर्ययाक्रमं प्रत्येकं फर्छं क्षेयम् । कौर्म । अदंव तन्मृल्यमथवा कनीयो मध्यमोत्तमम् । दद्याद् वित्तानुसारेणं तारागणपरिच्छंदम् ॥ शक्तः पञ्चप्रे रौष्यैः सुवर्णाळङ्कृतं क्रमाव । सदक्षिणं सबस्रं च ब्राह्मणायागिनहोतिन्षे ॥ तारागणस्तारानुकार्यळङ्कारः । दानमन्त्रः— उच्चैःअवा-स्त्यम्थानां राज्ञां विजयकारकः । सूर्यवाह नमस्तुभ्यमतः शान्ति प्रयच्छ पे ॥

अथ श्वताक्वदानम् ॥ गारुडे । अक्ष्वमेधमर्खं यस्तु कली कर्तुमनीक्ष्वरः । अक्ष्वदानं तु तेनेह् कर्त्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ विधि
तस्य प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ क्ष्वेतम्ब्यं शुभं तात हेमपर्याणभूषितम् । रूप्येस्तु कटकैः शुद्धैः करिदन्तोपशोभितम् ।
बज्जनेत्रं खुरैस्तान्नैः सौमपुच्छं सुवाससम् । शुभ्रेण पटकेनैव संदर्तं
स्वायुपान्वितम् ॥ धान्यरत्नोपरिस्यं तु बद्धकसं सुपट्टकम् । एवं
सुतेजसं चाक्षं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ मन्वादियुगाद्ययनविधुवोपरागादिषु दानम् ॥

अथ पृजामन्त्रः । मार्चण्डाय सुवैगाय काश्यपाय त्रिमूर्चये। जगद्वाहाय सूर्याय त्रिवेदाय नमोऽस्तु ते ॥ एवं समुचरेन्मन्त्रं कर्णे द्याचिलोदकम् ॥ दानवावयम्, ॐपअधेसादिअमुक्तगोत्राया-ऽमुक्तवार्मणे ब्राह्मणायेममन्त्रं सुवर्णातेलकालङ्कार्यमुक्तललाटं ग्रैवेयक-सुवर्षाणान्त्रितं रीष्यकटकरत्नोपशोभितं वज्रनेत्रं ताम्रखुरं सौम-पुळं सुवाससं शुत्रपर्वसंसंदतं स्वायुधान्त्रितं धान्यरत्नोपरिस्थितं बद्धकसं सुवृहगन्धपुष्पाद्यवितं सकलब्रह्महत्यादिपापनार्श्वकाम् सुभ्यमहं सम्पद्दे न ममेति स्वावधिकत्रिवाःपूर्वित्रवात्परावर्षियु-द्धरणकाम इति वा, सूर्यछोकत्रजनकाम इति वा यथाकाममृत्ध-म । महार्णवे समुःचन्न उचैःश्रवसपुत्रक । मया त्वं विममुख्या-य दत्तो हय सुस्ति भव ॥ इमं विम नमस्तुभ्यमश्वं ते मितिपादि-तम । प्रतिगृत्तीच्व विभेन्द्र मया दत्तं तु शोभनिमिति दानयन्त्र-सुचार्य, कर्णे समर्पणं कृत्वा विभहस्ते जल्लं क्षिपेद । ततः सुवर्ण दद्याद । पश्चाद्वत्रपुरो गच्छेत पादानां सप्तमप्तिम । भास्करं मनिस च्यात्वा आलोक्य स्वगृहं त्रजेद ॥ श्वेतमञ्बं तु यो दद्या-द फल्लं दश्याणं भवेद । वडवां च तथा दत्वा तुल्यमेव फल्लं ल-भेद॥एवं कृते नरच्यान्न सूर्यलोकं त्रजेन्नरः ॥ इति श्वेताश्वदानम् ॥

वैद्याख्यां पौर्णमास्यां वा तिलात सौंद्रेण संयुतान * यः प्रंयच्छेद्विजाग्न्येभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ज्येष्ठे मासि तिलात दल्खा पौर्णमास्यां विद्येषतः । अद्यमेषस्य यहस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ माये मासि तिलात यस्तु व्याह्मणेभ्यः प्रयच्छति । सर्व-सर्वसमार्कीणं नरकं नं स पद्यति॥वसिष्ठः । निबद्दाता तिलानां यो नरः स्वर्गे महीयते॥महाभारते । ददतो जुहतश्चेत्र हरतः प्रति-धृत्वतः । तिले तिले तिले द्रोणः सौवर्णानां युधिष्ठिर ॥ तथा, सर्वेषामेवे दानानां तिलद्दानं परं स्मृतम् । सर्वपापहरं तिष्ठ्यं पत्रित्रं स्वर्यमेव च ॥विष्णुपमींचरे । तिला गाधो हिरण्यं च अत्रं कृष्या वसुन्यरा । दचान्येतानि विधिवचारयन्ति महाभयातः ॥ त्या, तिलोदती । तिलदाताः च भोक्ता च पद्तिलाः पापनावानाः ॥ असक्तृत् पद्तिली भूत्या सर्वपापविवर्णनतः । विद्यहपेसहस्वाणि स्वर्गलोको महीयते ॥ कोर्भे, इष्टण्णाजिने तिलात् कृत्वा सुवर्णं मधुप्तिपिपी । द्रोणेकं वाससा-55 छत्वं त्रिया तद्भत सद्दिष्णम् ॥ आहिताऽप्रौ द्विजे दत्वा सर्व

तरित दुष्कृतम् ॥ वित्रेति हीनमध्यमोत्तमभेदतः । द्रोणैकं द्रोणद्रयं, द्रोणित्रयं चेति । तद्भत् सदिक्षणं क्रमादेकद्वित्रिम्रवर्णसिहतम् ॥ अत्रेत्थं दाननाक्यम्— अद्येशादि अमुकसगोवाय्
बाह्मणाय एवं कृष्णाजिनस्थं सुनर्णमधुसर्पिर्धुतं वस्रक्षत्रं तिल्ह्रोणं
सर्वपापक्षयकामस्तुभ्यमहं सम्पद्दे न मम ॥ कृतैतित्तिल्ह्यानप्रतिष्ठान्
सिद्ध्यर्थम् इदं सुनर्णं दक्षिणां तुभ्यमहं सम्पद्दे न मम ॥ इति
तिल्ह्यानम् ॥ यमः । तिल्पात्रं तु यो दद्यात् प्रसहं वाऽथ पवेणि । सदक्षिणं सत्त्वभावाद्वि कृत्वा जनाईनम् । नाशयेत्रिन्
विश्रं पापं धर्मस्य वचनं यथा ॥ स्कान्दे त्वऽमायां दत्तं तत्
पितृतारकामित्युक्तम् । ब्राह्मे, तास्रपात्रं तिल्हेः पूर्णं प्रस्थमात्रैदिंजाय तु । सहिरण्यं च यो दद्याच्छद्वावित्तानुसारतः ॥ सर्वपापित्युद्धात्मा ल्यने परमां गतिम् ॥

दानवाक्यन्तु – अधेसादि इदं ताम्रपात्रं तिल्लपूर्णं ससुवर्णमशेष-पापश्चयकामस्तुभ्ययहं सम्प्रददे न मम। सुवर्णं दक्षिणां च द्यात्॥

अथ महातिल्यात्रम् । ताम्रपात्रे तिलान् कृत्वा पल्योडवा-काल्यिनम् । सिहरण्यं स्वरात्तया वा विभाय मितपादयेत् ॥ ना-द्यायेश्विविषं पापं वाङ्गनःकायसम्भवम् ॥ कौर्मे, तिल्पूणं ताम्र-पात्रं सिहरण्यं द्विजातये । मातर्दत्वा तु विधिवद् दुःस्वग्नं विनिह-न्ति सः॥ तिल्पात्रं त्रिया मोक्तं किनिष्ठोत्तममध्यम्। ताम्रपात्रंदवा-पल्ञं जवन्यं परिकीर्तितम्॥द्विगुणं मध्यमं मोक्तं त्रिगुणं चोत्तमं स्वतम्। स्वर्णयेकं जवन्ये तु द्विगुणं मध्यमे क्षिपेत्॥त्रिगुणं चोत्तमं तद्वत् सुवर्णं परिकीर्तितम् । सुवर्णं दक्षिणां कर्ज् यदि शक्तिने विद्यते ॥ महा-सरस्तथा वार्षां कूषं कर्ज् च दीर्धिकाम् । एवं कृते मातृऋणा-स्मुक्तो भवति मानवः ॥ सदक्षिणं कांस्यपात्रम्य दत्वा ममुच्यते शुद्धकांस्यस्य पात्रस्य ममाणं पश्चविवातिः ॥ पळानामत्नं निर्दिश्चं तिलानां मस्थसप्तकम् ॥ सुवर्णमावांश्रद्धारः पाबोपिर विधारयेत । विश्वेत् पात्रं प्रधानेन सुभक्तितः ॥ स्नानं कृत्वा निम्नगादौ पितृन् देवांश्र तर्पयेत । ततोऽभिपृजयेच्छम्धुं शङ्कां हरिमेव वा ॥ गोमयेनाथ संलिष्य ग्रहमध्यं च सर्वतः । लिखेत पद्मं द्वाद्मारं कुङ्कुभेनाथ चन्दनैः ॥ ततो विह्नं स्थापित्वा होमं कुर्याद् यवैस्तिलैः। तत्र पात्रं प्रतिष्ठाप्य पूजयेद्रक्तिभावतः॥ततो ब्राह्मणमाह्न्य वहुभुखं सुसंयतम् । पादौ प्रक्षाच्य विधिवन्मातृश्राद्धं सम्माचरेत ॥ अलङ्कुत्य यथाशक्त्या माध्यां वा सृतवासरे । ग्रहणे रिवसोपाभ्यां संक्तान्तिषु युगादिषु ॥ तथाऽन्यदिष यद्दनं पाध्यासुद्दिश्य मातरम् । तदक्षयफ्लं सर्वं पुरा प्राह् महेश्वरः ॥ जीवन्तीं सूवयेद्वव्य्वीर्भिष्टयेरपि विभूवणैः ॥ दत्वा विभस्य पात्रं तु होमं कुर्यात प्रयत्नतः । सोपस्करं सताम्बूलं क्षमाप्य विभं विसर्जयेत ॥ अन्येषामपि विभाणां भोजनानि प्रदाययेदित्यादि ॥

अथास्य प्रयोगः । मातृमृतवासरे नद्यादौ वाष्यादौ वा यजमानो कृतस्नानो ग्रहमध्ये उपिल्कप्तदेशे कुङ्कमचन्दनाभ्यां द्वादशदछं पश्चं विरचस्य तत्र पञ्चविंशतिपछमितं कांस्यपात्रं तिल्प्यस्थसप्तकपूरितसुपस्थापितस्वर्णमाषचतुष्ट्यं च वरवस्त्रवेष्टितं स्थापित्वा
तत्समीपे हरिं शङ्करं चाऽऽवाहनाद्युपचारेरभ्यच्यं पुरतोऽिनं स्थापित्वा स्वसूत्रविधिना घृताक्तिस्तिर्ह्यवश्च विष्णुमन्त्रेण शिवमन्त्रेण वाऽष्टोचरशताद्वतिर्द्वा मातृसयाहश्चेन्मातृश्चादं कृत्वा
जीवन्यां मातरि तां वस्त्रादिभिः सत्कृत्य दानपात्रं तथैवाभ्यच्योंदङ्गुखमुपवेश्याद्येयादि उक्काऽमुकगोत्राय बाह्मणायेदं पल्पञ्चविश्वतिमितं कांस्यपात्रं प्रस्थसमुक्रमिततिलपूरितं सुवर्णवरवस्त्रवेष्टितं समन्ताद स्थापितसप्तथान्यफलादिसहितं मातुरानृण्यकामः
दुश्यमदं संपददे न ममोति दद्याद। मन्त्रास्तु, कास्यपात्रं मया दक्षं

मातुरानृण्यकाङ्क्ष्या । भगवन् वचनाचुभ्यं यथा शक्तिस्तथा वद् ॥ दश्ममासांश्च उदरे जनन्या संस्थितस्य मे । क्वेशिता बाळभावेन स्तनपानाद् द्विजोत्तम ॥ पूयमूत्रादिमळेपिळप्ताया च क्रतामया । भवतो वचनाद्य मम सुक्तिभेवेद ऋणाद ॥ कांस्यपात्रं सुवर्णं च तिळात् वस्तादिदाक्षणाम् । सप्तधान्यं मया दत्तम् ऋणान्सुक्तिभेवेन्मम ॥ कांस्यपात्रपदानेन तत्त्वज्ञानं शरीरकमः । तथा हेमप्रदानेन परमात्मानम्वयपम् ॥ आच्छादनं तु ब्रह्माण्डं गुक्षमेतद् सदक्षिणम् । विश्वाच्छादनदानेन परमात्मा सुपूजितः ॥ तिळसंख्याछतं दुःसं जनन्या मम सेवितम् । तिळपात्रपदानेन कृतमुक्तो भवान्यहमिति ॥ ततः शक्तम्या हिरण्यं दक्षिणां द्याद् । पात्रदानेन जननीसम्भवादणाद् त्वं सुक्त इति विभो ब्रूयाद्। पुनर्व्याहृतिभिन्हों कृत्वा विमं विस्तृत्व यथाशक्ति ब्राह्मणाद् भोजयेद् ॥ इति कांस्यपात्रप्रयोगः ॥

अय तिलकुम्भदानम् । वायवीये । तिलकुम्भमयो वक्ष्ये कुम्भे पूर्ववदास्थिते । वारुणे मण्डले देवं वरुणाकारमर्चयेत् ॥ इवेतैः पुष्पैः फर्लेशन्यैः कर्पूरेण तु पूजयेत् ॥ वरुणलक्षणं ब्रह्माण्डदाने । वारुणं मण्डलं स्थाप्यं, तचार्द्धचन्द्राकारं कार्यम् ॥ वरुपल्यत्य परितो न्यस्य ततो मन्त्रमिमं जपेत् ॥ नमो वरुणल्पाय ससाम्बुपतये नमः । रसवारिनिमित्तानि यान्तु नावामघानि मे ॥ तिलकुम्भमदानेन मसीद पर्मेश्वर । इति द्वे विनश्यन्ति पापानि जलवारिणाम् ॥ हिंसोज्जवानि स्नानेषु पानके वाऽवगाहने । स्सो यदा न भक्ष्याणामपेयानां च वाञ्चया ॥ औषधं वाऽपि देवेश सर्च मेथ्यं भविष्यति ॥ विवलोके वसेत् कल्पात् वातपञ्चद्वावन् हान् ॥ इति तिलकुम्भदानम् ॥

अथ तिलक्तरकदानम् ॥ वायवीये, करकं तिलसम्पूर्णी

मण्डले विहिदेवतम् । शिवं विहिवदाराध्य पूज्येत करवीरकैः। रक्त-चन्दनमन्धेन निर्यासेन च धूपयेत् ॥ विहिदेवतं त्रिकोणं मण्डल-मिस्रर्थः । शिवं विहिवदिति विहिस्तरूपं शिवमित्पर्थः । तचोक्तं ब्रह्माण्डदाने । निर्यासः सर्जरसः । आदर्शं च ततो दद्यादीपा-नां च चतुष्ट्यम् । विहिरूपपितः शम्भुवीहरूपी तिलाश्रयः॥तेजो-रूपक्वतंपापं चाक्षुपं च न्यपोहतु॥इति दत्तेऽस्य नक्यन्तिपापान्यग्नि-क्वतानि च। पाकहोमेषु काष्ट्रेषु हिंस्यन्ते यानि विहिना ॥ अगारवन-दाहादिसंभवानि च यानि वैविरुद्धकरणोत्थानि रूपयोगो ज्ववानि च परदारपरद्रव्यपुत्रदर्शनजानि च । शवादिदर्शनोत्थानि नेत्रदोष-क्रतानि च ॥ य एवं कुरुते दानं शिवभक्तया यतव्रतः । शिवलो-के वसेद् भूयः करपत्रयमशिक्कतः ॥ इति तिल्करकदानम् ॥

अथ गजदानम् । कौर्म । दद्याद् गजं पुराणोक्तं मृत्यं पश्चश्वतानि च । विचानुसाराचत्रापि कानिष्टोत्तममध्यमम् । स्वक्पतो
गजदानमुत्तमः पक्षः । तन्मृत्यं हेममापञ्चतपश्चकं मध्यमः । शतद्वयमधम इति कोचित् । पश्चञ्ञतमापास्तदर्द्धं तद्द्धिमत्यन्ये । तादश्वाः मुवर्णा हत्यपरे । रूप्यस्थुणालङ्करणं स्वर्णताराविभूपणम् अः
सदक्षिणं विचशक्त्या दत्वा शिवपुरं व्रजेतः ॥ स्थुणारज्जुः ।
तारागणो मौक्तिकजालात्मको गजालङ्कारविश्वेषः । तथा, यथालाभोपपन्नं वा यः मयच्छति दन्तिनम्। व्राह्मणाय दिष्ट्राय स्वर्गलोके महीयते ॥ कर्मश्चयादिहागस महाराजो गजाधिपः । सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते नात्र संश्चयः ॥ हस्त्यश्वशक्यादिदानफलं
भारते । पष्टिवर्षसहस्राणि पष्टिवर्षशतानि च।भोगान् भुक्त्वाऽमरपुरे राजा कालक्षयादिहेति ॥ अत्र दानवाक्यम् । अद्यसाद्युक्त्वा पद्पष्टिवर्षसहस्राऽवधिकाऽमरपुरभोगोत्तरमहाराजस्वकामोऽद्दममुकगोत्राय ब्राह्मणायेमं हस्तिनं कक्षारज्जस्थिरातनसिर्हतं

काश्चनपालादिकीणं चामरगन्धपुष्पालङ्कृतं प्रजापतिदैवतं तुभ्य-महं सम्पददे न ममेति करं धृत्वा दद्यात् । सुवर्णं दक्षिणां तुभ्य-महं सम्पददे न ममेति ॥ इति हस्तिदानम् ॥

निवेदयति मातङ्गं भक्त्या स्वर्णाद्यळङ्क्रतम् । दिवाय पर्व-दिवसे तस्य पुण्यफळं श्रुण्विखादिना विवयर्भादौ विवाय गज-दानसुक्तम् ॥

अथ दासीदानम् ॥ बहिषुराणे, स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सौम्ये सौम्यप्रहान्विते । दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्वणि वा पुनः ॥ अलंक्कस यथाशक्तया वासोभिर्भृपणेस्तथा । ब्राह्मणाय प्रदातव्या मन्त्रेणानेन शास्त्रितः ॥ इयं दासी मया तुभ्यं श्रीवत्स पातिपादि-ता । सर्वकामकरी भोग्या यथेष्ठं भद्रमस्तु ते ॥ पश्चवर्षाधिका सा तु चत्वारिशत्समावधि । दासी द्विजाय दातव्या दासदानेऽप्ययं विधिरिसादि ॥ अत्र दानवाक्यम् अमुकसगोत्रायमां दासी सुवर्णालक्कारवर्ती पुष्पाद्यावितामक्षय्यस्त्रसमात्रिकामस्तुभ्यमहं सम्पददे न ममेति शिरासि धृत्वा दद्यात् सुवर्ण दक्षिणां च दत्वा क्षमापयेत् पश्चाद् ब्राह्मणं वस्नुकाश्चनैः। अतु गत्वा सीमायां द्विजं विसर्जयेत्तद इत्यादि ॥

अश्वमेधफलञातगुणफलकामः शिवाय दासीं विनिवेदयेदि-ति शिवाय दासीदानमप्युक्तम् ॥ इति दासीदानम् ॥

अथ रथदानम् । कौर्मे, रथं चतुर्वछीवर्दछ्ढं धान्याद्यतं तथा। विचातुसारातः सर्वेश्व रथोपकरणेष्टुतम् ॥ सदक्षिणं च विमायः दत्वा ज्ञितपुरं त्रजेत । धान्याद्यतमृष्टादशधान्याद्यतम् ॥ रथोपकरणानि सुगयोक्त्रतोत्रवरत्रादीनि । धान्याद्यतं त्रिधेति वा पाटः । त्रिद्वेषकसुवर्णदक्षिणा च शत उत्तममध्यमकनिष्ठभेदतश्च त्रैविध्य-मिति हेमाद्रिः । दानवाक्यम् । अमुकसगोत्रायः वाह्मणायः चतुः

बंछीवईयुक्तमष्टाद्रश्चान्यपरित्ततं सर्वोपकरणयुत्तमेतं रथं विश्व-कमिदैवतम् । अक्षय्यस्वर्गादिसुख्कामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममे-ति । मन्त्रस्तु, रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्मणे । विश्वरूपाय नाथाय अरुणाऽय नमो नम इति सुवर्ण दक्षिणां च दद्यात । गारुढे, गर्न्त्रां तुरङ्गसंयुक्तां यो ददाति द्विजातये । सर्वकाम-समद्धात्मा स राजा जायते सुवीति । गन्त्री रथविशेषः । सां च चतुर्भिरद्वेश्वर्षेभैजैवोंपेता द्वाभ्यां वोपेता । गन्त्रीमिमां प्रयच्छामि विश्वकर्माधिदैवताम् । दानेनानेन भगवान् मीयतां मे परः पुमा-निति गन्त्रीद्वाने मन्त्रः ॥ इति रथदानम् ॥

मार्गग्रुक्कैकाद्द्रयां माघफाल्गुनयोवां वैद्याखे वा हिर्ण्ययं हरिमभ्यर्च्यं जागरं च कृत्वा मातः विविकतं ब्राह्मणाय दत्वा तस्य वर्षाद्यनं विविकत्वाहकानां च वर्षाहमन्नं कल्पयित्वाऽतिवि-पुरुभोगानन्तरं विष्णुसायुज्यभाग्भवति।एतन्मुलं हेमाद्रौ वह्निपुराणे॥

अथ महीदानम् । कीर्मे, गोचर्ममात्रं भूखण्डमधिकं वा स्वशक्तितः । त्रिया सदिक्षणां छत्वा दत्वा शिवपुरं ब्रजेत् ॥
त्रिद्वयेकसुवर्णक्षा दक्षिणा त्रिधेसर्थः। बृहस्पितः। अपि गोचर्ममात्रेण सम्यग्दत्तेन पानवः । योतपापो विश्रद्धात्मा स्वगंठोके
महीयते ॥ दशहस्तेन दण्डेन त्रिश्चरण्डा निवर्त्तनम् । त्रिभागहीनं
गोचर्ममानमाह मजापितः ॥ मानेनानेन यो दद्यान्त्रिवर्त्तनशां तुष्प
हित ॥ तथा, गवां शतं दृषश्चैको यत्रं तिष्ठेदयन्त्रितः। तिद्धः
गोचर्ममात्रं तु माहुर्वेदविदो जनाः ॥ अत्र नानागोचर्ममकारेषु
जत्तममध्यमाधमभविन व्यवस्था ह्रेया। तथा । पष्टिवर्षमहस्ताणि
स्वर्गे वसंति भूमिदः । अञ्छिना चातुमन्ता च तावन्ति नरकं
वसेत् ॥ तत्र पुराणभेदान्नानाफलश्रवणेऽपि स्वकामितमेव फल्लमुल्लेष्म् । मन्त्रोऽपि— यथा भूमिमदानस्य कलां नाऽईनित

षीडवीम् । दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवस्विह ॥ अमुक-ब्राह्मणायामुककामः षद्वाष्टिसहस्रवर्षमितस्वर्भवासकामः, शिव-पुरमाप्तिकामो वा सर्वपापक्षयकामो वा, भूमि तुभ्यमहं सम्पद्दे न ममेति सपुष्यं कुशतिलोदकं ब्राह्मणहस्ते निक्षिपेत । ब्राह्मणः समीपस्थां भूमि पदाक्षणीक्रस प्रतिगृह्णीयाद । विप्रकृष्टां तु मनसा मदक्षिणीक्तस । न हि भूमेः परं वस्तु गोः सुवर्णाच कि-ञ्चन 🗱 अतो भूमिगवि पांजैः सुवर्ण दक्षिणा मतेति माण्डच्य-वचनादत्र सुवर्णमेव दक्षिणा । विश्वामित्रः, ग्रामं वा नगरं वाऽपि विषेश्यो यः गयच्छति । क्षेत्रं वा सस्यसम्पन्नं सर्वपापैः प्रमुच्य-ते ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच वसुन्धराम् । स विष्ठायां किमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ तथा, अपि पापकृतां राज्ञां भतिगृह्णान्ति साधतः । पृथितीं नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ चेऽपि सङ्कीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः। तेभ्यः पवित्रमारूयेयं भूमिदानमनुत्तमम् ॥ किमत्र चित्रं दातारं यद समुद्धरते धरा । प्रतिग्रहग्रहीतारमपि तारयते द्विजिमत्यपि हेमाद्रौ ॥ शिवधर्मे शिवाय भूमिदानमुक्तम् ॥ इति महीदानविधिः ॥

अथ गृहदानम् ॥ कीर्मे— शक्तितः सर्वविचेन पूर्णं गृहमपि विभा । सदिविचेन दत्या ब्रह्मछोकं ब्रजेन्नरः ॥ सर्वविचेन दासीदासगोवछीवर्दकांस्यताम्रपात्रादिसोपस्करशय्यासर्वधान्यवृत-गृहशकरादिरूपेण । गारुहे, ऐष्टकं दारवं वापि मृन्ययं वा स्व-शक्तितः । सर्वोपकरणोपेतं यो दद्याद्विपुछं गृहम् ॥ ब्राह्मणाय दिरद्वाय विदुषे च कुटुम्बिने । क्रीडित्वा मुचिरं काछं मानुष्यं छोकमागतः ॥ भवसप्यहतैश्वर्यः सर्वकाममन्वितः ॥ ब्रह्मवैवर्चे, न गार्हस्थ्यादं परो धर्मे नैव दानं गृहाद परम् । नानृताद्धिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणाद परः॥ तथा, कारायित्वा गृहान् रम्याद्धं

ऋतुवद् स्वर्गसंख्यया । भुवनाष्ट्रादश्च तथा तस्वनक्षत्रसंख्यया ॥ शत्तया तहिगुणान्येव अतं यावत्सहस्रकम् । कुड्यस्तम्भगवाक्षा-द्यान विचित्रबहुभूमिकान् इति ॥ मात्स्ये, देवतापञ्चकं तत्र चत्वारिंशत्समाद्यतम्।पूजियत्वा यथान्यायं ततो दद्याद् ग्रहं ग्रही॥ एकाशीतिपदं कृत्वा रेणुभिः कनकेन वा। पश्चात पिण्डेनानुलिम्पेत् सुत्रेणाद्यन्तु सर्वतः ॥ दश पूर्वापरा लेखा दश चैत्रोत्तरायताः । सर्वे वास्तुविभागेन विज्ञेया नवकी नव ॥ एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तुवित सर्ववास्तुषु।पदस्थानः पूजयेदेवानः विद्यात्पञ्चद्दीव तु ॥ द्वात्रिवाद्वाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश । मध्ये नवपदस्त्वेक-श्चत्वारिस्त्रपदाः स्पृताः ॥ विंशतिस्त्वेकपदिकास्तावन्तौ द्विपदाः स्मताः । एवं प्रतिष्रिता देवाश्चत्वारिंशच पञ्च च ॥ नामतस्तान मवस्यामि स्थानानि च निबोधत । ईशकोणादिषु सुरान् पूज-येक्समशो नव ॥ ईशानादी, शिखी चैत्र तु पर्जन्यो जयन्तः कुलिकाायुषः । सूर्यः सत्यो भृषाश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥ पूषा च वितथश्चेव गृहस्रतयमावुभौ । गन्धवों भृङ्गराजश्च ग्रुगः पित-गणास्तथा॥दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः। असुरः शोकपापौ च रोगोऽहिर्मुख्य एव च ॥ भछाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिश्च वै । बहिद्रिनिवंशदेते तु तदन्तश्चतुरः शृणु ॥ आपश्चेनाथ सानित्रो जयो रुद्रस्तथैन च । अर्थमा सनिता चैन विवस्तान विबुधाधियः ॥ मित्रोऽय राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमातः । अष्टमस्वापनत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥ आप-श्चेनापनत्मश्च पर्जन्योऽमिदितिस्तथा । पदिकानां तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः ॥ तन्मध्ये तु बहिर्विशिद्विपदास्ते तु सर्वतः । एत-त्पूर्व ग्रहारम्भं कुर्योद्वास्तुविचक्षणः ॥ वास्तौ परीक्षिते तस्मिन् बास्तुदेहे विचल्लणः । वास्तुपशमनं कुर्यातः समिद्भिर्वलिकर्म च 🛭

जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा च नववेश्मिन । नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्त्तने ॥द्वाराभिवर्त्तने तद्भुद प्रासादेषु गृहेषु च।वास्तप्रधामनं कुर्याद पूर्वमेव विचक्षणः ॥ एकं शान्तिपदं छिल्व वास्तुमध्ये तु पिष्टकः । होमिक्समेखले कार्यः कुण्डे हस्तममाणके ॥
यदैः कुण्णतिल्लेश्चेव समिद्धिः क्षीरहक्षजेः । पालाशैः खादिरैश्चाऽपामार्गोद्धम्बरसम्भवैः ॥ कुशद्वादलेवाऽपि मधुसपिंःसमन्वितेः ।
कार्यस्तु पञ्चभिवित्ववित्वविजेरथापि च ॥ होमान्ते भक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुदेहे बल्टि हरेत् । तद्वद्विशेषनैवेद्यमिदं दद्याक्रमेण तु ॥
एवं सम्पूजिता देवाः शान्ति कुर्वन्ति ते सदा । सर्वेषां काञ्चनं
द्याद्वद्याद्वराणे गां पयस्विनीमिति ॥

अथ गृहवास्तुशान्तिपयोगः ॥ यजमानो मासपक्षाद्युष्ठिख्याऽस्य वास्तोः ग्रुभतासिद्ध्यर्थं वास्तुशार्ति करिष्य इति सङ्कुल्प्य गणेशपूजास्विस्तिवाचनमातृपूजाभ्युद्यिकश्राद्धाऽऽचार्यब्रह्मार्त्वंवरणानि
कुर्यात ॥ तत आचार्यो, यदत्र संस्थितम्, अपक्रामन्त्विद्येताभ्यां,
भूतमेतिपशाचाद्या अपक्रामन्तु राक्षसाः । स्थानादस्माद् ब्रजन्त्वन्यद् स्वीकरोभि सुवं त्विमामिस्रनेन च सर्वपाद विकीर्ध्य पश्चगव्येन, श्रुची वो हव्या इति त्चेन, एतोन्विन्द्रमिति च तृचेन गृहं
सम्मोक्ष्य गृहे पाच्यामीश्वान्यां वा चतुरङ्कुलोचं इस्तमितं स्थण्डिलं
कृत्वा तस्य ईशानादिकोणचतुष्ट्ये चतुरो लोहकीलान्, विश्वन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वशः असमन गृहे च तिष्ठन्तु
आयुर्वलकराः सदिति मन्त्रेण निखनेत् । पतिकीलं मन्त्राद्यत्तिः ।
तत ईशानादिक्रमेणैव चतुर्षु कोणेषु अग्निभ्योऽप्यथ सर्वभ्यो ये
स्वन्ये तत्समाश्रिताः । तेभ्यो बिलं प्रयक्तामि पुण्यमोदनसुत्तममिति मन्त्रेण माषभक्तादिवलीन् दत्वा स्थण्डिलोपरि, ॐ शान्ताये नमः, यशोवस्ते, कान्ताये, विशालाये, पाणवाहिन्ये सैस्,

सुमत्ये, नन्दाये, सुभद्राये, सुरथाये इति प्रणवाद्येनमोऽन्तैर्दशभि-र्गन्त्रेः कुङ्कुमादिना हेमरूप्यादिशलाकया माक्पश्चादायताः भागन्ता उदकस्या द्यङ्कलान्तरा दशरेखाः कृत्वा,हिरण्यायै, सुत्रता-ये, छक्ष्म्ये, विभूसे, विमछाये, पियाये, विजवाये, बाछाये, विशोकायै, इडायै इति दक्षिणोत्तरायता उदक्संस्था दशरेखाः कुर्यातः । एत्रमेकाशीतिपदं मण्डलं सम्पद्यते । तत्र मध्यस्यनव-कोष्ठरेखामार्जनेनैकीकुर्यात् । एतन्नवपदं ब्रह्मस्थानन्तस्य चतु-र्दिश्च चत्वारि त्रिपदानि । विदिश्च शृङ्ख्ळाऽऽकाराणि द्वादश्च-कोणवाचैश्चतुर्ध्वन्तैर्नमोऽन्तैर्वस्यमाणनामभिर्देवता आवाह्य स्थापः येत । तत्र ईशानकोणपदे वास्तोः शिरसि शिखिने नम इति शिखिनम् । तद्दक्षिणैकपदे दक्षिणे नेत्रे पर्जन्ये तद्दक्षिणे ततोऽपि पश्चिम इति द्विपदे दक्षिणश्चोत्रे जयन्तम् । तद्दक्षिणद्विपदे तद्दक्षिणां-श्रे कुलिशायुषाय । तहिं सणिद्विपदे दिक्षणवाहीं सूर्याय । त-इक्षिणद्विपदे दक्षिणबाहावेव सत्याय । तद्दक्षिणद्विपदे दक्षिण-कूपरे भृताय । तद्दक्षिणेऽन्यपङ्किगतैकपदे दाक्षणवाहौ आकाशा-य । आग्नेयकोणपदे दक्षिणप्रवाहानेव वायने । तत्पश्चिमैक-पदे दक्षिणमणिबन्धे पूष्णे । तत्पश्चिमे ततोऽप्युत्तर इति द्वि-पदे दक्षिणपाक्षें वितथाय । तत्पश्चिमद्विपदे दक्षिणपाक्षं एव ग्रहस्रताय । तत्पश्चिमे द्विपदे दक्षिणोरौ यमाय । तत्पश्चिमे द्विपदे दक्षिणजानौ गन्धर्वाय । तत्पश्चिमे द्विपदे दक्षिणजानौ मुङ्ग-राजाय । तत्पश्चिमे वाह्ये दक्षिणगतैकपदे दक्षिणस्पिचि मृगाय । नैर्ऋसकोणपदे पादयोः पितृभ्यः । तदुत्तरैकपदे वामस्फिचि दौवारिकाय। तदुत्तरे ततोऽपि माचि चेति द्विपदे वामजङ्घायां मु-क्रीवाय । तदुत्तरे द्विपदे वांमजानी पुष्पदन्ताय । तदुत्तरे द्विपदे बामारी जकाविपाय । तदुत्तरे द्विपदे वामपार्क्वे असुराय । तदु-

त्तरे द्विपदे वामपार्थ एव शोषाय।तदुत्तरे वाह्यपङ्किगतैकपदे वाम-मणिवन्ये पापाय । वायव्यां कोणपदे वामप्रवाहौ रोगाय । तत्नाच्येकपदे वामपार्क्व एव अहये । तत्नाचि ततो दक्षिणे चेति द्विपदे वामकूपरे मुख्याय । तत्पाचि द्विपदे वामवाहौ भक्षाटाय । तत्पाचि द्विपदे वामबाहावेव सोमाय । तत्पाचि द्विपदे वामांसे सर्पाय । तत्त्राचि द्विपदे वामश्रोत्रे अदितये । तत्पाचि बाह्यपङ्किगतैकपदे वामनेत्रे दितये । तद्दक्षिणे ईशान-कोणपदाधःपदे मुखे आपाय नमः । आग्नेयकोणपदाधःकोणपदे दक्षिणहस्ते सावित्राय । नैर्ऋत्यकोणपदाधःकोणपदे मेहे जया-य । वायच्यकोणपदाघःकोणपदे वामहस्ते रुद्राय । मध्यम-प्राग्गते कोष्ठकब्रह्मपदसंख्ये पाग्गते त्रिपदे दक्षिणस्तने अर्थम्णे । तद्दक्षिणेपदे दक्षिणहस्ते सवित्रे । तत्पश्चिमे ब्रह्मपदसंख्ये त्रि-पदे जठरदक्षिणभागे विवस्त्रते । तत्पश्चिमैकपदे दृषणयोर्विबुधा-ऽधिपाय। तदुत्तरे ब्रह्मद्पसंछग्नत्रिपदे जठरवामभागे मित्राय। तदु-त्तरैकपदे वामहस्ते राजयक्ष्मणे । तत्र्याचि त्रिपदे वामस्तने पृथ्वी-भराय । तत्प्रागेकपदे उरिस आपवत्साय । मध्ये नवपदे इन्ना-भ्यो ब्रह्मणे तदुत्तरे वास्तोष्पते प्रतिजानीहीति दृषवास्तुं सुव-र्णादिमतिमायां मण्डलाद्धहिरीशानादिकोणेषु चरकी १ विदारी २ पूतनां ३ पापराक्षसीं, पूर्वादिषु स्कन्दम १ अर्थमणं २ जम्भकं ३ पिलिपिच्छम् ४, पाच्याष्ट्रदिश्च इन्द्रादीनावाह्य सर्वान् सम्पूज्य मण्डलादीशान्यां कलशं संत्स्थाप्य तत्र वरुणं संपूच्य कुण्डे स्थाण्डले वा अर्थि संस्थाप्य तदीशान्यां ग्रहानावाह्य सम्पूज्य तदीशान्यां ग्रहकलको संस्थाप्य तत्र वरुणं सम्पूज्याSन्वाधाने चक्षुषी-आज्येनेत्युक्ता ग्रहादीनमुकसंख्यया समिचर्वाज्येः, शिली-पर्जन्यजयन्तकुलिशायुधसूर्यसत्यम्गाकाशवायुपूषवितथगृहस्तवयम् गन्धर्वभृङ्गराजमृगपितृदौवारिक—सुग्रीवपुष्पदन्त-जलाऽधिपासुर-बोाषपापरोगाहिमुख्यभन्छाटसोमसपीदितिदिखायसावित्रजयरुदा-ऽर्यमसवित्रविवस्वद्विबुधाधिपमित्रराजयक्ष्मपृथ्वीधरापवत्सनाप्ताणो यवतिलसिदाज्यपायसैरमुकसंख्यया, वास्तोष्पतिमेतैरेव द्रव्यै-रमुकसंख्यया पञ्चविल्वैस्तद्वीजैर्वा चरकीविदारीपूर्वनापापराक्षसी-स्कन्दार्यमजम्भकपिछिपिच्छान् इन्द्रादींश्च तैरेव द्रव्यैरम्कसंख्यया यक्ष्य इत्युक्त्वाऽशेषेणेत्यादि आज्यभागान्ते ग्रहहोमं कृत्वा यत्र-तिलसमिदाज्यपायसैः शिख्यादिदेवताभ्यो नाममन्त्रैः मसेकमष्टा-वष्टाविश्वतिमष्टोत्तरश्चर्तं वा दुत्वा, वास्तोष्पतये एतान्येव द्रव्याणि अष्टोत्तरक्षतमेतैश्चतुर्भिर्वास्तोष्पते ध्रुवा स्यूणानि च पञ्चविंकातिः पञ्च वा विल्वफलानि तद्धीजानि वा जुहुयुः । तत्राचार्यः स्विष्टकु-दादिहोमशेषं समापयेत् । यजमानस्तु लोकपालेभ्यो ग्रहपीठदेव-ताभ्यश्च बर्छि दत्वा पूर्णोद्वर्ति दुत्वा शिष्यादिपञ्चचत्वारिंशदेव-ताभ्यः पायसादिना विंछ दत्वा ईशानादिक्रमेण चरकीविदारी-पूतनापापराक्षसीभ्यो लोकपालेभ्यश्च बलि दत्वा शिष्यादिपीतये काञ्चनं द्विजेश्यो ब्रह्मभीतये धेनुं च द्याद । ततः शान्तिकलशी-दकेन ऋत्विग्भिरभिषिक्तो यजमान ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्वा बाय्वादिपूर्वकं रक्षोध्नपावमानमन्त्रेपृहं सुत्रेण पदक्षिणं वेष्ट्रियत्वा समन्ताज्जलवारां शीरघारां च दत्वा मध्यनवपदे सुद्धपां पृथ्वीं ध्यात्वा पृथव्ये नम इति सम्पूज्य सर्वदेवमयं बास्तु सर्वदेव-मयं परिमिति पठित्वा गृहस्यामेयं आकाशपदे जानुमात्रं गत्ती बात्वा गोमयेनानुलिप्य युभ्रचन्दनपुष्पाक्षतरळङ्कुस सप्तवीजा-नि दध्योदनं च क्षिप्ता नवं जलपूर्णकलशं शक्लेकपुष्पयुतं गन्धाः द्यांचितमादाय जातुभ्यां भुत्रं गत्वा तज्जन्नं शिषेत्, ॐ नमो बरुणायेति मन्त्रेण । जले प्रदक्षिणावर्त्ते पुष्पे चौर्ध्वमुखे श्वभम् #। ततोऽपकप्रत्पेटिकायां सप्तवीनं दण्योदने शैवालफलपुष्पाणि क्षिप्ता सत्वियोपं पूर्वस्थापितां द्यवास्तुमतिमामानीय पेटिकायां संस्थाप्य पेटिकां पित्राय पठेत । पूजितोऽसि मया वास्तो होमाधै-रचैनैः शुभैः । मसीद पाहि विक्वेश देहि मे ग्रहनं सुखमा। वास्तु-पुरुष नमसेऽस्तु भूशय्याभिरत मभो । मद्गृहं भनवान्यादि-समृदं कुरु सर्वदेति ॥ ततो स्रत्पेटिकागतं संस्थाप्य, सञ्चलसाग्रां प्रथिवीं यथा वहिस मुद्धिन । तथा मां वह कल्याण सम्पत्त-सन्तिभिः सहेति सम्मार्थ्य, तयैव सदा गर्च पूर्येत । सृद्ध आधिवयेऽधिकफलम् । साम्ये समम् । न्यूनत्वे न्यूनम् । गर्चोपिरे गोमयेनालिप्य गन्यपुष्पाक्षतादि क्षिप्त्वा आचार्यव्रह्मार्द्वजः संपूष्य तेभ्यो दक्षिणां च दत्वा ग्रहपीठवास्तुपीठदेवताः सम्पूष्य जिन्छ ब्रह्मणस्पते, यान्तु देवगणा इति विस्त्व्याचार्याय दत्वा ब्रह्मशिख्याचुदेशेन विमान्त सम्भोज्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा सुहृद्यतो सुक्षीत । इति ग्रहवास्तुशान्तिमयोगः ॥

अथ ग्रहदानप्रयोगः ॥ ग्रहमध्ये दक्षिणभागे पद्यं विलिख्य तहुपि प्रस्थमात्रान् तिलान् तहुपि वाय्यां स्थापियता शय्यो-पि सौवर्णशय्योपि सौवर्णल्यः नित्रान् तहुपि शय्यां स्थापियता शय्यो-पि सौवर्णश्यमात्रान् तिलान् प्रतिन्त्रात् स्थापियता सम्पूल्य पति-ग्रहीतारं सपत्नीकं प्रतिग्रहार्थं कृत्वा तं करे ग्रहीत्वा समङ्गल्यां वृक्ष्यमाणमन्त्रेग्रेहं प्रवेशयेत्।ते च मन्त्राः— एह्येहि नारायण दिल्य-द्य सर्वाऽमर्थवित्त्त्त्पादपञ्च * श्रुभाश्यभानन्दश्चामधीश लक्ष्यी-ग्रुतस्वं च ग्रहं ग्रहाण ॥ नमः कौस्तुभनाथाय हिरण्यकच्याय च क्षीरोदार्णवस्रुसाय जगदात्रे नमो नमः ॥ नमो हिरण्यगर्भाय विश्वनामाय वै नमः ॥ स्थाजस्य च नमः ॥ स्थाजस्य च लादात्रे नमो नमः ॥ नमो हिरण्यगर्भाय विश्वनामाय वे नमः ॥ स्थाजस्य च लादात्रे न्यावस्त्रम्य जगतो ग्रहभूताय वे नमः ॥ स्थाजस्य लोकास्त्र देहे न्यवस्थिताः।नन्दन्ति यावस्कल्यान्तं सुधाऽस्मिन् भवने ग्रही ॥ त्वत्प्रसादेन देवेश पुत्रपौत्रेधुतो ग्रहे ॥

पञ्चयज्ञक्रियायुक्तो वसेदाचन्द्रतारकम्॥ ततस्तं पूर्वस्थापितशय्यो-पर्ध्युदङ्गुखमुपवेदय स्वयमासने प्राङ्गमुख उपविदय देवाकाल-कीर्त्तनोत्तरममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणायेदं ग्रहं पकेष्टकादि-रचितं यथोपपत्तिसम्पादितं कांस्यताम्रादिभाजनसर्वधान्यलवणः धृतगुडक्षर्करागोब्छीवईदासमञ्चत् छिकावितानादिसर्वोपकरणयुतं सदीपप्रभोदद्योतं सर्वदैवतं गृहं सर्वपापश्चयपूर्वककलपकोष्टिश-ताऽवधिनारायणसमीपे श्लीराणविनिवासकाम इति।मृन्मयगृहे दान एकैकपन्वन्तरावच्छिन्नपातिलोकपालपुरनिवासकाम इति।यदा सर्वत्र विष्णुपीतिकामः । ततः प्रार्थना । इदं ग्रहं ग्रहाण त्वं सर्वोपस्कर-संयुतम् । तव वित्र मसादेन ममास्वतिनवं गृहम्॥ गृहं मम विभूः सर्थं ग्रहाण त्वं द्विजोत्तम । शीयतां मे जगद्योनिर्वास्तुक्षपी जना-ईन इति ॥ ततः प्रतिग्रहीता देवस्य त्वेति यजुषा प्रतिगृह्य ॐ स्वस्तीत्युक्ता कामस्तुति पठेव । दक्षिणा तु स्वर्णसहस्रमारभ्येक-सुवर्णपर्यन्तवास्त्या दर्शिता ।ततः पाद्कोपानहच्छत्रचामरादिकं पुन-देत्वा सम्पन्नं वाप्यसम्पन्नं गृहोपस्करभूषणम् । सर्वे सम्पूर्णमेत्रा-ऽस्तु त्वत्मसादाद्विजोत्तमेति प्रार्थयेत् । एतत्फलमपि मात्स्ये, य एवं सर्वसम्पन्नं पक्कंष्टं विनिर्वेदयेत । कल्पकोटिशतं यावहृह्य-लोके महीयते ॥ शैलजं दारुजं वाऽपि यो दद्याद्विधपूर्वकम् । वसेत क्षीरार्णवे रम्ये नारायणसमीपतः ॥ मृण्ययं चाऽपि यो द्याद् गृहं चोपस्करान्वितम् । पुरेषु लोकपालानां मतिमन्बन्तरं वसेदिति ॥ एतच वास्तुपूजनन् । अनेन विधिना यस्तु प्रति-संवत्सरं बुधः । यहे चायतने कुर्यान्न स दृःखमवाष्नुयादित्यु-क्का प्रतिसंवत्सरं कर्त्तव्यम् । अत्र वास्तदेवतानां विशेषनैवेद्या-दीनि । शिखिने घृतात्रम् । पर्जन्याय सोत्पछं घृतौदनम् । जय-न्ताय पीतध्वजं पिष्टमयं कुर्चं च । कुलिशायुधाय पञ्चरत्नानि ।

पैष्टं कुलिशं च । सूर्याय वितानकं घूपं सक्तुं च । सत्याय घृत-गोधूमम् । भृशाय मत्स्यान् । अन्तरिक्षाय शब्कुलीः । वायवे स-क्तून । पूष्णे लाजाः । वितथाय चणकोदनम् । घृतझताय मध्य-**ऽसम् । यमाय पिशितोदनम् । मन्धर्याय गन्धौदनम् । मृङ्गराजाय** मेषजिहिकाम्। मृगाय यावकम् । पित्रभ्यः कुसरम् । दौवारिकाय दन्तकाष्ट्रं, पेष्टं कृष्णविलं च । सुग्रीवायाऽपूरम् । पुष्पदन्ताय पायसम् । वरुणाय कुशस्तम्बसहितं पद्मम् । असुराय पेष्टं हिरण्य-यं सुरा च । शोवाय घृतोदनम् । पापाय गोधाम् । रोगाय घृत-लड्डकान् । अहये फलान्त्रितं पुष्पम् । मुख्याय सर्पिः । भक्काटाय गुडौदनम् सोमाय मधुपायसम् । सर्पेभ्यः शालिपिष्टम् । अदितये पोलिकाम् । दितये पूरिकाम् । आपाय क्षीरम् । आप-वत्साय दिथ । साविवाय छड्डकान । सगरीचं कुशोदकम । सवित्रे गुडापूरम् । जयाय वृतचन्दनम् । वित्रस्वते रक्तचन्दनं षायसम् । राजयक्ष्मणे आमं पकं च मांसम् । इन्द्राय हरितालोदनं घुतसंयुतम् । गुडोद्नं तु मित्राय रुद्राय घृतपायसम् । पृथ्वी-धराय मांतानि कूष्पाण्डानि च । अर्थम्णे शर्करापायसम् । पञ्चगन्यं यवांश्चेत्र तिलक्षतहितश्चह्नत् अ भस्यं भोज्यं च विवि-धं ब्रह्मणे विनिवेदयेदिति ॥ राक्षसीनां तु, चरक्यै मांसोदनं घृतं पद्मकेसरं हविषान्वितम् । आग्नेये विदार्थे सरुधिरमांसौदनं हरिद्रौ-दनं च । नैर्ऋते पूतनायै सरुधिरं दथ्योदनं पत्स्यखण्डैश्च सं-युतम् । पीतरक्तं च बिंछ वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरा-सवप् । सर्वत्र पायसं वा द्यात् । इति गृहदानप्रयोगः ॥

कृत्वा मश्चं पयत्नेन शयनासनसंयुतम् अपुण्यकाले द्विजेभ्यो-ऽय यतिभ्यो वा निवेदयेवः ॥ सर्वानः कामानवामोति निष्कामो मोक्षमाष्नुयादिति स्कान्दोक्तमः ॥ मठदानं कार्यं, मार्कण्डेये-कुर्यात्मितिश्रयग्रहं पथिकानां हिता-ऽऽवहम् । निजगेहैकदेशं वा साधूनां यो निवेदयेद ॥ अक्षयं पुण्य-मुद्दिष्टं तस्य स्वर्गापवर्गदम् । सर्वकामसमृद्धोऽसौ देववदिवि मोद-ते ॥ भविष्यत्पुराणेऽपि, प्रतिश्रये मुविस्तीणें कारिते सजलेन्धने । दीनानाथजनार्थाय वद किं न कृतं भवेद ॥ प्रतिश्रयो धर्मशाला ॥ इति प्रतिश्रयदानम् ॥

अथ कन्यादानम् ॥ बृहस्पतिः । सहस्रमेव घेनूनां शतं वा-Sनडुहां समय।द्शानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः ॥ दशवाजि-समा कन्या भूमिदानं ततः परम् । ददन्ति सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति त इति ॥ देवछः । तिस्रः कन्या यथान्यायं पाछिय-त्वा निवेद्य च । न पिता नरकं याति नारी वा स्त्रीपस्र्यिनी ॥ वसिष्ठः । हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् । धर्मेण विधिना दातुमसगोत्रोऽपि युज्यते ॥ स्कान्दे, आत्मीकृस सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम्॥ ऋष्यशृङ्गः। वरगोत्रं समुचार्य प्रपितामह-पूर्वकम् । नाम सङ्कीतयोद्धेद्वान् कन्यायाश्चेत्रमेत्र हि ॥ तिष्ठेत पूर्व-मुखो दाता वरः पत्यङ्गुमखो भवेतः । मधुपकीन्वितायैतां तस्मै दद्याव सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो युग्न मन्त्रेणानेन दापयेत । गौरीं कन्यामिमां वित्र यथाञ्चल्कि विभूषिताम् । गोत्नाय शर्मणे तुभ्यं दत्तां वित्र समाश्रय ॥ भूमि गावश्च दासी श्च वासांसि च स्व-शाक्तितः। महिष्यो वाजिनश्चेत्र द्यात् स्वर्णमणीनिष ॥ ततः स्त्रगृह्य-विधिना होमाद्यं कर्म कारयेद ।यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च ॥ कन्यादाता पाङ्गुखोवरः प्रसङ्गुखः।दातोदङ्गुखो वरः मसङ्गुख इंति महचरणाः । आवरश्च ॥

अत्रायं प्रयोगः । वरं मधुपर्केण सम्पूज्य मासपक्षाद्यक्का मम समस्तापेतृणां निरतिशयसानन्दब्रह्मकोकावाप्सादिकन्यादान- कल्पोक्तफछाबासुयेऽनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पत्स्यमानसन्तत्या द्वादशावरात् द्वादश परात् पुरुवात् पवित्रीकर्त्तुव आत्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणपीतये ब्राह्मवित्राहविधिना कन्यादानमहं करिष्य इति सङ्कट्प्य, कन्यां कनकसम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम श्रदास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रक्कछोकाजिगीषया इति दद्यात । वरस्तु, देव-स्य त्वेति मतिग्रहा स्वस्तीत्युक्ता स्वशासीयां कामस्तुर्ति पठेत । एवं, न ममेसादिना सम्प्रदद इसन्तेन वाक्येन त्रिर्देद्यात । कन्यादानमातिष्ठार्थं सुत्रणें दक्षिणां भूमिदास्यादिकं यथाशक्ति दद्यात् । त्रिक्तम्भरः सर्वभूताः साक्षिण्यः सर्वदेतताः * इमा कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारणाय चेति मन्त्रं पुनर्न ममेसादि भीतय इसन्तमुक्काऽमुक्तप्रवरायामुकगोलायामुककार्भणः प्रयोत्रा-यामुकर्श्मणः पौत्रायामुकर्शमणः पुत्रायामुकर्शमणे वराय श्रीधर-क्रिपेणेऽसुकनवरामसुकगोत्रोत्पन्नामसुकवर्षणः प्रपौत्रीमसुकवर्षन णः पौत्रीममुकशर्मणः पुत्रीममुकनाम्नीमिमां कन्यां श्रीह्रिपणीं तुभ्यमहं सम्प्रदद इति वरहस्ते । विस्तरस्तु प्रयोगरत्ने भट्टचरणै-क्तः ॥ इति कन्यादानम् ॥

स्कान्दे, वैवाहिकपदानं हि यो ददाविदयापरः। विमानेता-Sर्कवर्णेन किङ्किणीजाल्लमाल्लिनाः ॥ महेन्द्रभवनं याति सेन्यमानो-प्रत्यरोगणैरिति ॥ वैवाहिकं विवाहोपयोगिद्रन्यवस्त्रालङ्कारादीनि वैवाहिकदानम् ॥

अथ किपिलादानम् । आदिसपुराणे, सहस्रं यो गवां दद्या-त किपिलां चापि सुत्रत । सममेत्र पुरा पाह ब्रह्मा यत्निवदां वरः। रुक्मश्रुर्झी रोष्यखुरां सबस्नां कांस्यदोहनाम् । सबत्सां किपिलां दत्वा वंशान् सप्त समुद्धरेत् ॥ यावन्ति चास्या रोमाणि सवत्सा-या भवन्ति हि । सुरभीलोकमासाद्य रमते तावतीः समाः ॥ अधेसादि गोसहस्रफलावाप्यनन्तरसवत्सकिपिलारोपितवर्षपर्यन्तं कामधेनुलोककाम इमां किपलां सुवर्णश्रृङ्गालुपस्करस्रुताममुक्तगोत्रायामुककार्मणे विषाय तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति द्यात् । मन्त्रो मात्स्ये । किपिले सर्वभूतानां पूजनीयाप्ति रोहिणी । तीर्थदेवमयी यस्पादतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ तत्रैत । वस्त्रं तु त्रिगुणं धेन्वा दक्षिणां च चतुर्गुणाम् । एतरलङ्कृतां धेनु घण्टाभरण-भूषिताम् ॥ किपिलां विममुख्याय दत्रा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ मुमुखु-विस्त्रवयोपेतां दत्या चतुरः सुत्रणांन् दक्षिणां द्यात् । द्विगुणो-पस्करोपेता महती किपिला स्मृता अ ॥ उपस्कराः सुत्रणंश्रुङ्गवस्त्रदोहनपात्राद्याः सामान्यगोदाने वस्त्यमाणाः। दत्तासा विममुख्याय स्वर्गमोक्षफलपदा । समजन्मकृतात् पापान्मुच्यते दशसंमुतः ॥ भवान् यान् पार्थयते कामान् तांस्तान् प्रामोति मानवः ॥ अधे-सादि समुजन्मकृतपापनात्रपूर्वक—स्वर्गनामोति मानवः ॥ अधे-सादि समुजन्मकृतपापनात्रपूर्वक—स्वर्गनामो मोक्षकामः पुत्रकामः सम्भवाम ईन्वरमीतिकाम इत्यादि यथाकामं फलमुल्लिख्य द्विगुणो-पस्करपुतां द्यादिति॥महाकपिलादानम्॥इति द्वा महादानानि॥

दशधेनवो मास्ये । यास्तु पापितनाशिन्यः कथिता दश्च धेनवः।तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप॥ प्रथमा गुड-धेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथाऽपरा। तिल्रधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जल-संज्ञिता ॥ क्षीरधेनुस्तु विख्याता मधुधेनुस्तथा परा । सप्तमी शर्कराधेनुः कार्णासस्याष्ट्रमी तथा॥ रस्येनुस्तु नवमी दशमी स्याद् स्वरूपतः। कुन्ती घृतादिधेनुनामितरासां तु राश्चयः॥ सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः । नवभी तिल्रतेलेन तथान्येऽपि मह्वयः॥ रसधेनुस्थाने सुवर्णधेनुदित्तलतेल्थेनुश्च। एतद्विधानमिष मास्स्य एत, कुष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्नीवंविन्यसेद् सुवि। गोमयेनो-पिल्नसायं दर्भानास्तीर्थं सर्वतः॥ ल्ल्येनं तद्वद्वद् वत्सस्य

परिकल्पयेत ॥ छध्येणं चाजिनं छघुक्रण्णाजिनम् । प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुद्दनपादां सवत्सकाम् । प्राङ्मुखीं प्राक्षित्सम् । सवत्साम् ॥ उत्तरमागास्थितवत्ससिहिताम् ॥ उत्तमा गुडघेनुः स्याद् यदा सारचनुष्ठपम्। वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ॥ अर्द्धभारेण वत्सः स्याद् कानिष्ठा भारकेण तु । चतुर्यांशेन वत्सः स्याद्वहित्वानुसारतः ॥ भारः पलसहस्रद्वपमिति परिभाषायामुक्तम् । धनुत्रस्तौ पृतस्येतौ सितस्कृत्माऽम्बराहतौ । श्रक्तिकर्णानिक्षुपादौ श्रचिमुक्ताफलेश्वणौ ॥ सितस्त्वत्रशिरालौ तौ सितकम्बलक्ष्मवलौ श्रचिमुक्ताफलेश्वणौ ॥ सितस्त्वत्रशिरालौ तौ सितकम्बलक्ष्मवलौ श्रचिमुक्ताफलेश्वणौ ॥ सितस्त्वत्रशिरालौ ॥ गण्डुकं ककुत्यदेशे । विद्वमुक्त्वप्रत्योपतौ नवनीतस्त्वनान्वितौ अत्रीमपुल्लौ कांस्यदोहौ इन्द्रनीलकतारकौ ॥ सुवर्णश्रङ्काभरणौ राजतश्चरसंयुतौ । नाना-फलमपैर्दन्तैर्जाणगन्धकरण्डकौ ॥ गन्धकरण्डकः कर्पूरादियुतः पात्रविश्वषः । इसेतं रचिगत्वा तौ घृपदीपैरथार्चयेद । बस्नमुक्ता-दीनां सारतो मानतश्चाधिक्ये फलाधिक्यम् ॥

अथ प्रयोगः ॥ अद्येखादि सर्वपापस्यप्रवेकाशेषयङ्गसळप्राप्तिसहितसुक्तिसुक्तिकामो गुडभेन्वादिदानं करिष्य इति सङ्करूप्य
विमं इत्वा सम्पृष्ट्य सवत्सगुडभेनवे नम इखावाहनमतिष्ठापनपूजनानि कृत्वा तां प्रदक्षिणीकृत्य बक्ष्यमाणम्त्र्त्रेरामन्त्र्याद्येखादि
सर्वपापस्रयपूर्वकाशेषयङ्गफळमाप्तिसहितसुक्तिकाम इवां भेनुमसुकप्रवरायाऽसुकगोत्रायासुकशमंगे विमाय तुभ्यमहं सम्प्रददे न
ममेति दद्याद । विमस्तु पुच्छे मतिगृह्य स्वस्तीत्युक्त्वा कामस्तुति
पठेत । दाता तु सुवर्णदक्षिणादानविमभोजनभूयसीदानादिकर्मक्षेषं समाययेत ॥

अथामन्त्रणमन्त्राः ॥ या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम शान्ति प्रयच्छतु ॥ देइस्थाः या च कल्याणी शङ्करस्य सदा प्रिया । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ विष्णोवेक्षित या छक्ष्मीः स्वाहा या च विभा-वसोः । चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या घेतुरूपाऽस्तु सा श्रिये ॥ चतुर्भुख-स्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य । लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा घेर्नुवरदाSस्तु मे ॥ स्वया त्वं पितृपुरूपानां स्वाहा यज्ञभुजां तथा । सर्वपापहरा धेतुस्तस्माच्छान्ति पयच्छ मे इति ॥ एवमा-मन्त्र्य तां धेतुं त्राह्मणाय निवेदयेत्। विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ॥ सर्वासां प्रयक्षघेतुव्यतिरिक्तानामिसर्थः । उक्तरचनस्य तत्रानुपयोगात । एतदेव विधानं स्यात्त एवीपस्कराः स्मृताः * मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वीण पर्वीण ॥ यथाश्रद्धं पदातव्या भुक्तिमुक्तिफलपदाः । अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः ग्रुमाः ॥ अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते तथा पुनः । गुडधेन्वादयो देया उप रागादिपर्वस्र ॥ अत्र, पापविनाशिन्य इत्युपक्रमात सर्वपापहरा इत्युपसंहाराच पापनाश एव फलं न सुक्तिमुक्तयादीति दान-सौख्ये । तत्र पुत्रेष्टाविवार्थवादोक्तानां भुक्तिमुक्तयादीनां सागे मानाभावात् । उपक्रगेषसंहारौ त्वपयोजकौ।यत्तु पद्मपुराणादा-वेकेनैव घटेन घृतादिधेतुः, द्रोणमात्रेण च तिल्लेन धेतुरुक्ता, तत् प्रकारान्तर्गिति कल्पतरौ । दानविवेके तु पलसहस्रप्रमाणः कुम्भ इति । द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानि कुम्भ इत्यन्ये । ततश्च यथाधिकारं व्यवस्था ज्ञेया।यद्यपि गुडवेन्वनन्तरं घृतधेनु-रुदिष्टा, तथाऽपि तिलाभावे तथा दद्याव । घृतधेनुमित्युक्ता तिल्लानां पाधान्यात्तदेनुरादावुच्यते ॥

अथ तिल्पेतुः ॥ तत्र किञ्चित नकारान्तरं विष्णुपमींचरे— अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनकुशादते । धेनुं तिल्पर्यी ऋत्वा सर्वरत्नेरलंकुताप ॥ धेनुं द्रोणन कुर्वीत आदकेन तु बरसकम । सुवर्णश्रुङ्गी रोप्यखुरां गन्धघाणवतीं तथा॥ कुर्याच्च शर्कराजिह्वां युद्धास्यामिक्षकम्बलाम। इक्षुपादां ताम्रपृष्ठां श्रुचिमुक्ताफलेक्षणम् । मशक्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं श्रुभाम् । सग्दामपुच्छां कुर्वातनवनीत-स्तानितताम् ॥ सितस्वत्रक्षिरालां च सितसर्षपरोमिकाम् । फलै-मेनोहरैर्भक्ष्यैर्मिणमुक्ताफललान्विताम्॥ सितवस्वयुगच्छवां घण्टाभरण-सूषणाम् ॥ ईदक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः। कांस्योयद्देशनां द्यात् केशवः प्रीयतामिति ॥ फलेतिकर्त्तन्यतामन्त्रा सुद्धयेनुक्ता एव । विद्वपुराणे तु, तिलाश्च पिनृदैवसा निर्मिताश्चेह् मोसवे । ब्रह्मणा तन्मयी धेनुर्दत्ता प्रीणातु केशविमित मन्त्रान्तर-सुक्तम् ॥

अय घृतधेनुः ॥ विष्णुपर्मोत्तरे, तिल्लामावे तथा द्याद् घृतधेनुं प्रयत्नतः । वाद्यदेवक्षमन्नायं घृतक्षीरान्निषेचनात् ॥ सं-पूज्य पूर्ववत पुर्व्योग्नध्यूपादिभिन्तरः । अहोरात्रोषितो नाम्ना अभिष्य घृताऽचिषम् ॥ अभिष्य प्रज्ञन्तरय । घृताचिषमप्रिपः । गच्यस्य सिर्पः कुम्मं पुष्पमालादिभृषितम् । कास्पापिघानसंयुक्तं सितवस्त्रयुगेन च ॥ हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्यममोत्तिकैः ॥ अत्र पलसहस्रपरिमाणः कुम्मः । द्वादश्वरणाधिकानि पञ्चपल्यक्तानीति वा ॥ इक्षुपष्टिमयान् पादान् खुरान् रौष्यमयास्त्रया । सौवर्णे चाक्षिणी कुर्याच्छक्तं चागरकाष्ठ्रजे ॥ सप्तथान्यमये पाद्वे पत्रोणेन च कम्बल्य । कुर्याचुरुष्कर्कपृर्देशणं फल्यमान् स्तनान् ॥ तद्वच्छक्तरेया जिल्लां गुद्धिरमयं मुस्त्र ॥ पत्रोणे धौत-कौशेयम् । तुरुष्कः सिह्णकम् । सिल्लारसः हित यावत् । पुच्छं सौममयं कार्य रोमाणि सितसप्रयेः अ तास्रपृष्ठं विचित्रं तु ईद्य्-द्ध्या मनोरमाम् ॥ विधिना छतत्रत्सां च कुर्याष्ठक्षणळिताम् । पृतेः कुरवा तथा नत्वा पूज्यित्वा विधानतः ॥ तद्वक्ताय पदाः

तन्या मङ्गलाभीःस्वपारंगे ॥ एतां ममोपकाराय ग्रहीध्व त्वं द्विजोत्तम । मीयतां मम देवेशो घृताधिः पुरुषोत्तमः । इत्युदाहृख विमाय द्याद्धेतुं नराधिष ॥ स्कान्दे त्वयं मन्त्रः । घृतं गावः मस्यन्ते घृतं मृत्यां मतिष्ठितम् । घृतमिष्ठ देवाश्च घृतं मे सम्मदी-यतामिति ॥ फलं च, घृतशीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः । तेषु लोकेषु सर्वेषु सुपुण्येषूपजायते ॥ सकामानामियं न्युष्टिः कथिता नृपसत्तम ॥ न्युष्टिः फलम् । विष्णुलोकं नरा यान्ति निष्पापा येनुदानत इसादि॥दक्षिणात्रकसुन्यम् स्ति यथाशक्ती-ति मदनरत्ने । यथाशक्ति हिरण्यमिति हेवाह्रौ ॥

अथ जलघेतुः ॥ तत्रैव जलघेतुं पक्रम्य, जलकुम्मं नरन्याघ्र सुवर्णरजतान्वितम् ॥ सुवर्णरजतश्रृङ्गखुरान्वितिमिति साम्प्रदायि-काः । रत्नगर्भमशेषेस्तु ग्राम्यैर्धान्यैः समन्त्रितम् ॥ सितवस्त्रयुग-च्छनं दुर्वापञ्चवशोभितम् । कुष्टमांसीमुरोशीरबालकामलकैर्दतम् ॥ वियङ्गुपत्रसहितं सितवस्त्रोपवीतिनम् । सच्छत्रं सचपानत्कं दर्भ-विष्टरसंस्थितम् ॥ चतुर्भिः सम्भृतं भूप तिल्लपात्रैश्चतुर्दिशम् । स्थागितं द्धिपात्रेण घृतक्षौद्रवता सुखे ॥ तिरूपात्राणि ताम्रस्य द्धिपात्रं कांस्यस्येति दानविवेके । उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं जलेशयम् । पुष्पधृषोपहारैश्च यथाविभवमादतः ॥ सङ्करूप्य जल-धेनुं च कुम्भं तमभिपूज्य च । पूज्येद्वत्सकं तद्वत् कृतं जलम्यं बुधः ॥ एवं सम्पूज्य गोविन्दं जलघेतुं सवत्सकाम् । सितवस्त्र-घरः शान्तो वीतरागो विमत्सरः । दद्याद् द्विजाय राजेन्द्र पीसर्थ जलज्ञायिनः ॥ जलजायी जगद्योनिः मीयतां मम केशवः । इति चोचार्य भूनाथ विपाय प्रतिपाद्यताम् । अपकान्नाश्चिना स्थेय-महोरात्रमतः परम्। तथा, धान्यानि पार्श्वद्वये, कुछादीनि घाणदेशे, पियङ्गुपत्रं अवणे, यज्ञोपवीतं मृधिन स्थापयेत् । बत्स श्रतुर्थी दोनैब ।

दक्षिणा शक्तितः सुवर्णम् । अनेन विधिना दस्या जल्छेतुं नराधिप * सर्वान् कामानवाशीति ये दिव्या ये च मानुषा इति॥

अय क्षीरघेतुः ॥ स्कान्दे, क्षीरघेतुं पवक्ष्यामि तां निवोध नराथिप । अनुलिप्ते महीपृष्ठे गोमयेन नराथिप । गोचर्ममाचमानेन कुशानास्तीर्य सर्वतः॥ तत्रोपरि महाराज न्यसेत् कृष्णाजिनं ततः॥ तत्रोपरि कुण्डलिकां गोमयेन कृतामापे ॥ श्लीरकुम्भं ततः स्थाप्य चतुर्थाक्षेन वत्सकम् । सुवर्णसुखशृङ्गाणि चन्दनागरुकाणि च ॥ मद्मस्तपत्रश्रवणं तिल्लपात्रोपरि न्यसेत । मुखं गुडमयं तस्या जिह्वा शर्करया तथा ॥ मूलप्रशास्तदन्ता च मुक्तामयफलेक्षणा । इश्चपादा दर्भरोमा सितकम्बळकम्बळा ॥ ताम्रपृष्ठा कांस्यदोहा पद्दसूत्रमयं तथा । पुच्छं च नृपशार्द्छ नवनीतमयस्तनी ॥ स्वर्णशृङ्गी रौप्य-खुरा पञ्चरत्नमयी भुवि । चत्वारि तिल्लपात्राणि चतुर्दिक्ष्यपि स्थापयेत ॥ सप्त बीहीन समायुक्तो दिखु सर्वासु पक्षिपेत । एवं छक्षणसंयुक्तां क्षीरधेनुं पकल्पयेत् ॥ आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्ध-पुष्पैः समर्चयेत । धूपदीपादिकं क्रत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ अनेनैव तु मन्त्रेण क्षीरधेतुं पकल्पयेत् ॥ अनेन गुडधेनूक्तेन । मकरुपयेदनुमन्त्रयेतः । आप्यायस्त्रेति मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रसादये-त्। गृह्णामि त्वां विषयसत्या ग्राहको मन्त्रमुचरेत् ॥ एवं धेतुं प्रदत्वा च क्षीराहारो दिनअरेत । त्रिरात्रं तु पयोभक्षो बाह्मणो राजसत्तम ॥ मन्त्रस्तु, गृह्णामि त्वां देवि भक्तया कुटुम्वार्थे विशेष-तः ॥ भरस्व कामैर्मा सर्वैः क्षीरघेनो नमोऽस्तु त इति ॥ एतां हेमसहस्रेण शतेनाथ स्वशक्तितः । शतार्द्धमथवाऽप्यर्द्धं तत्रैवार्द्ध स्वर्शाक्तितः ॥ दद्याद्धेनुं महाराज शृणु तस्यापि यद फछम् । दिन्यं वर्षसहस्रं तु रुद्रछोके महीयते ॥ दिन्यवर्षसहस्राऽविध रुद्र-छोककाम इति फछोछ्छेखः सङ्कल्पवाक्ये । अन्यद्वडघेनुवत् ॥

अथ द्धियेतुः। तत्रैव भूलेपनकुशकुष्णाजिनान्युक्का, द्धि-क्कम्भं च संस्थाप्य सप्तथान्यस्य चोपरि । चतुर्थाद्येन बत्सं तु सौवर्णमुखसंयुतम् ॥ प्रशस्तपत्रश्रवणा मुक्ताफलपयेक्षणा । चन्दनागरुश्रङ्गा च मुखं वै गन्धमालिका॥ गन्धमालिका गन्धद्रव्य-विशेष इति केचित् । सुगन्धपुष्पस्रगियन्ये । कर्पूरादिसुगन्बद्रव्य-समुद्द इति बहवः। जिह्नां शर्करया राजन् घाणं श्रीखण्डकं तथा। फलं मूलमया दन्ताः सितसूत्रस्य कम्बलः ॥ ताम्रपृष्ठा दर्भरोमा पुच्छं सुत्रमयं तथा । सुवर्णश्टर्झी रौष्यखुरां नवनीतमयस्तनीय ॥ इक्षुपादां सुसंस्कृत सर्वाभरणभूषिताय । आच्छाद्य बस्नुयुग्मेन पुष्पगन्धैः सुपूजिताम् ॥ ब्राह्मणाय कुलीनाय साधुरुत्ताय धीमते। पुन्छदेशोपविष्टाय मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ॥ पाट्कोपानहौ छत्रं दत्वा मन्त्रमनुस्मरेत ॥ मन्त्रो गुडधेनूक्तः । द्धिकाव्णेति मन्त्रेण द्धि-धेतुं प्रदापयेत् ॥ एवं दिधमयी धेतुं दत्वा राजिषतत्तम । एका-हारो दिनं तिष्ठेदधा च नृपनन्दन ॥ यजमानो वसेद्राजन् त्रिदिनं च द्विजोत्तमः ॥ यत्र मधुबहा नद्यो यत्र वायसकर्द्दमाः । सुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥ दातारो दायकाश्चेव तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ मधुनदीकबहुपायसऋषिसिद्धलोक-काम इति शेषफछोरछेखः ॥

अथ मधुषेतुः ॥ स्कान्दे, मधुषेतुं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणा-शिनीम् । अनुलिप्ते महीपृष्ठे छुष्णाजिनकुशोत्तरे । धेतुं मधुमर्थी कृत्वा सम्पूर्णघटपृरिताम् ॥ तद्वच्चतुर्धमागेन वत्सकं परिकल्प-येत् ॥ सीवर्णं तु मुखं कृत्वा श्रुङ्गाण्यगुरुचन्दनम् । पृष्ठं ताम्र-मयं तस्याः पुच्छं सुत्रमयं तथा ॥ पादास्त्विश्चमयाः कार्याः सितकम्बलकम्बलम् ॥ मुखं गुडमयं कृत्वा जिह्वा शक्रस्याऽन्वि-ता । मौक्तिकं नयने तस्या दन्ताः फलमयाः समृताः ॥ दर्भरोम-



घरा देवी रोष्यसुरिवस्थिता । मशस्तपत्रश्रवणा नवनीतमयस्तनी ॥ सर्वछ्सणसंयुक्ता सप्तधान्यानि दापयेत । चत्वारि तिछपात्राणि चतुर्दिश्च च सूषिता ॥ आच्छाद्य वस्तुर्यमेन घण्टाभरणसूषिताम । कांस्योपदोहनीं छत्ता गन्धपुष्पैस्तु पूजिताम ॥ पुच्छदेशोपिवष्टाय ब्राह्मणाय मितपादयेत । उदपूर्व तु कर्चव्यं पश्चाहानं समाचरेत ॥ रसज्ञा सर्वदेवानां सर्वभृतिहेते रता । मीयन्तां
पितरो देवा मधुषेनो नमोऽस्तु ते ॥ एवमुचार्यं तां घेनुं ब्राह्मणाय
निवेदयेत ॥ अहं गृह्मामि त्वां देवि कुटुम्बार्यं तां घेनुं ब्राह्मणाय
निवेदयेत ॥ अहं गृह्मामि त्वां देवि कुटुम्बार्यं विशेषतः । कामान्
कामदुघे धुङ्क्ष्व मधुषेनो नमोऽस्तु ते ॥ मधु वातेति मन्त्रेण मदाप्यायतचेतसा । घेनुं दत्वा च मधुपायसाभ्यां दिनं नयेत ॥
ब्राह्मणोऽपि तथैव त्रिरात्रं नयेत । फछश्रुतिरपि । यत्र मधुवहा
नद्यो यत्र पायसकर्दगाः । ऋषयो मुनयः सिद्धास्त्र गच्छन्ति
घनुदाः ॥ तत्र भोगान वरान सुङ्क्ते ब्रह्मछोके स तिष्ठति ॥
मधुनदीकवदुपायसकर्दममुनिसिद्धछोकोत्तमभोगोत्तरब्रह्मछोककाम
इति विशेषफछोछेखः ॥

अथ रसघेतुः ॥ स्कान्दे, रसघेतुं गहाराज कथयामि समा-सतः । अतुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥ रसस्य तु घटं राजन सम्पूर्णमैक्षवस्य तु । तद्भव सङ्कल्पयेव माहश्चर्तुर्थाशेन वत्स-कम् ॥ इश्वदण्डमयाः पादा राजतखुरसंगुताः ॥ सुवर्णशृङ्काभरणा वस्नपुच्छा घृतस्तनी । पुष्पकम्बलसंगुक्ता शर्करामुखजिहिका ॥ दन्ताः फलमयास्तस्याः पृष्ठं ताझमयं शुभम् । पुष्परोमा तु राजेन्द्र मुक्ताफलकुतेक्षणा॥सप्तत्रीहिसमायुक्ता चतुर्दिश्च सदीपिका। सर्वोपस्करसंगुक्ता सर्वगन्धविभूषिता ॥ चत्वारि तिल्पात्राणि चतुर्दिश्च निवेशयेत । धेतुं तु पूजियत्वाऽम्रे पुष्पगन्धस्नगा-दिभिः ॥ पूर्वोक्ता य च मन्त्राश्च तानेव प्रयतः स्मरेत ॥ मन्त्रा गुडधेनुक्ताः । एवमुच्चारियत्वा तु दीयते वै द्विजोत्तमे । दश पूर्वान परांश्चेव आत्मानं चैकविंशकम । नयेतु परमं स्थानं यस्माक निवर्त्तते पुनः ॥ दाता वा ग्राहको वाऽपि एकाहं रस-भोजकौ।सोमपानं भवेत्तस्य सर्वक्रतुफल्लं लभेदित्यादि ॥ स्वाधिक-दशपूर्वदशपरपुरुषाणां निटत्तिरहितपरपदमासये आत्मनश्च सोम-पानसर्वक्रतुफल्लासिकाम इति विशेषफलोक्काः ॥

अथ शर्कराधेनुः स्कान्दे । तद्वच शर्कराधेनुं श्रृणु राजन् यथाऽर्थतः । अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥ धेनुः वर्करया राजन सदाभारचत्रष्टयम् । उत्तमा कथ्यते सद्भिश्चतुर्थी-शेन वत्पकः ॥ तदर्द्धं मध्यमा मोक्ता चतुर्याशेन कनीयसी ॥ तद्भद्रःसं पक्कवीत शतुर्थीशेन मानवः । अथ क्रुयीदष्टांशतश्चतुर्थी-शेन वत्सकम् ॥ अष्टांशत इति । भारचत्रष्टयस्याष्ट्रमांशेन अर्द्ध-भारेणेत्वर्थः । स्वत्रक्तया कारयेद्धेनुमात्मपीडां न कारयेद * सर्ववीजानि संस्थाप्य चतुर्दिश्च समन्ततः ॥ सीवर्णमुखश्वङ्गाणि मौक्तिकैर्नयनानि च । गुडेन च मुखं कार्य जिह्ना पिष्टमयी तथा ॥ कम्बलं पद्दसुत्रेण कण्टाभरणभूषिता । इश्चुपादा रौप्यखुरा नवनीतमयस्तनी ॥ प्रशस्तपत्रश्रवणा सितचामरभूषिता । पञ्च-रत्नसमायका दर्भरोगसमन्विता ॥ कांस्योपदोहना सम्यग् गन्ध-पुष्पैः समन्विता । ईदृश्विधानसंयुक्ता बस्नेराच्छादितोपरि । गन्ध-्र पुष्पैरलङ्कृत्य बाह्मणाय निवेदयेतः ॥ पूर्वामुखः सदा दाता अथ वा स्यादुदङ्मुखः । धेतुं पूर्वमुखीं कृत्वा वत्समुत्तरतो न्यसेत ॥ दानकाले तु ये मन्त्रास्तान पठित्वा समर्चयेत ॥ गुड-धेनुक्ताः। आच्छाच चैव तं विषं सुद्रिकाकर्णवेष्टनैः * स्वशक्तया दक्षिणां दद्याद्रन्यपुष्पं सचन्दनम् ॥ धेनुं समर्चयेत्तस्य मुखं च न विलोक्षेत्र । एकाऽहं शर्कराऽऽहारो ब्राह्मणास्त्रिदिनं बसेत ॥

सर्वपापहरा घेतुः सर्वकामप्रदायिनी । सर्वकामसमृद्धश्च जायते नात्र संशय इति ॥

अथ कार्षासघेतुः ॥ वाराहे, अतः परं प्रवक्ष्यामि धेतुं कापीसकीं शुभाम । एवं विकास्य गुप्सर्थ ब्रह्मणा चांग्रुकं कृतम ॥
कार्षासमुळं तचापि तेनासानुत्तमः स्पृतः । सा च कार्षासभारेण
धेतुः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता॥मध्यमा च तद्रद्धेन तद्रद्धेन तु कन्यसी ॥
पूर्ववद्रस्त्रश्रान्यं च हिरण्यं च तथैव च । वत्सकं तु चतुर्थाज्ञाहानमन्त्रो विधीयते ॥ कुर्वीत पूर्ववद्रत्सं वस्त्रश्रान्यानुपस्कृतम् ॥ पूर्ववद् वराहोक्तितळचेतुदानवत ।हेमकुन्देन्दुसहेश क्षीराणवसमुद्भवे ।
सोमिषियं सुधेन्वाख्यं सौरभेषि नमोऽस्तु ते ॥ दत्त्रेयमिन्दुनाथाय श्रज्ञाङ्कायाऽस्रताय च । अत्रिनेत्रप्रजाताय सोमराजाय वै
नमः ॥ यस्त्रेवं परया भक्तया ब्राह्मणाय प्रयच्छित।स याति चन्द्रछोकं तु सोमेन सह मोदत इति ॥ चन्द्रछोकगमनानन्तरचन्द्रसहवाससुस्त्रकाम इति विशेषफळोळेखः ॥

अथ भविष्यत्युराणे छवणधेतुः ॥ तत्र युधिष्ठिरं प्रति
कृष्णः। श्रृणु राजन् प्रवक्ष्यामि छवणस्येह कल्पितम्। गोमयेनाऽतुछिते तु दर्भसंस्तरसंस्थितम् ॥ आविकं चर्म विन्यस्य पूर्वाद्याऽभिमुखं स्थितम्। बक्षेण छादितं कृत्वा धेतुं कुर्वतं बुद्धिमान् ॥
इाटकंनैव कुर्वितं बहुविचोऽल्पवानिष् ॥ स्वर्णश्रृङ्कीं रौष्यखुरामिश्चपादां फछस्तनीम् । कार्या वार्कर्रया जिह्ना गन्धन्नाणवती
तथा ॥ समुद्रोदरजां शुक्तिं कर्णौं च परिकल्पयेत । श्रृङ्के चन्दनकाष्ट्राभ्यां मौक्तिकं चाक्षिणी छमे ॥ कपोछौ सक्तुपिण्डाभ्यां
यवानास्ये प्रदापयेत् । कम्बछं पृष्टसूत्रेण ग्रीवायां छित्रकां तथा ॥
पृष्ठे वै ताम्रपात्रं तु अपाने गुडिपिण्डकाम् । छाङ्गुछे कम्बछं
द्याद्रसान् क्षीरप्रदेशतः ॥ योनिमदेशे तु मधु सर्वतस्तु फछान्

ऽिन्तता ॥ एवं सम्यक् परिस्थाप्य छवणस्य छतां तु गाम ।
स्थापयेद्वस्तकं चाऽपि चतुर्भागेन मानवः ॥ एवं घेतुं समभ्यच्यं
माल्यवस्त्रिविश्वणः। स्नात्वा देवाचेनं कुर्याद्वाद्यणानिभपूज्य च ॥
कृतां प्रदक्षिणं गां तु पुत्रभार्यासमन्वतः ॥ दानमन्त्रः—छत्रणे वै
स्साः सर्वे छवणे सर्वदेवताः । सर्वदेवमये देवि छवणाख्ये नमोऽस्तु ते ॥ प्रदक्षिणा मही तेन कृता भवति भारत । सर्वदानानि
दत्तानि सर्वर्तुकफछानि तु ॥ सर्वे रसाः सर्वमन्त्राः सर्वमेतचराऽचरम्॥ सौभाग्यं च परा दृद्धिः शरीरारोग्यसम्पदः। नृणां भवन्ति
दत्वा तु रस्येतुं न संश्वयः ॥ सौभाग्यपरमदृद्धाऽऽरोग्यकाम
इति विशेषफछोछेखः। पुराणान्तरे, गां छवणमयीं कृत्वा षोढशप्रस्थसंयुताम् ॥ चतुर्भिर्वत्सं राजेन्द्रेसादिना छवणपरिमाणान्तरमुक्तम् ॥

अय सुवर्णधेतुः। विष्णुघमें, भगवानुवाच । यद् ब्रह्मणोऽपि राजेन्द्र ऊहितं विष्णुना पुरा।तत्ते विस्तरतो राजन कथयाम्यऽनु-पूर्वशः ॥ सुवर्णस्य सुवर्णस्य शुद्धस्य परिकल्पितम् ॥ एकं सुवर्णपदं शोभनं रूपमाह, अपरं मानम् । रीप्यवत्सकसंयुक्तां सुक्ताफळविभूषिताम् । प्रवाळश्रङ्कोपयुनां पद्मरागादिशाळिनी-म् ॥ पृतपात्रस्तनवतीं कपूरागरुनासिकाम् । शर्करारसनोपेतां मिष्टान्नरसवासिनाम् ॥ शङ्खश्रङ्कान्तरां श्राक्तं ळळाटस्थानकल्पि-ताम् । फळदन्तां वस्त्रयुग्नपाश्वां क्षोमसुकम्बळाम् ॥ इख्रुपादां नाळिकरश्रवणां गुडजानुकाम् । पश्चगच्याऽपानवतीं कांस्यपृष्ठ समान्विताम् ॥ सुपृद्धसूत्रळाङ्ग्यूळां सप्तथान्यसमन्वितामः। फळपुष्प-समोपेतां छत्रोपानत्समन्विताम् ॥ सुवर्णधेनुं विमाय मतिपाद्यदर्शि नरः ॥ हिर्ण्यरेताः पुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गळः । तप्तरेमच्छिवः सृष्टा विश्वात्मा पीयतामिति॥ अनेनैव तु मन्त्रण धेनोद्दिनं मकीर्ति- तम् । अञ्चिभसहस्रस्य फलमामोससंगयम् ॥ कुलानां तु सहस्रं च स्वर्गे नयति तद्भुष इति ॥ अश्वमेषसहस्रतुल्यफलमाप्तिकुल-सहस्रम्वर्गनयनकाम इति कामफलोक्षेतः । विह्निपुराणे तु, सुवर्ण-धेनुश्चाप्यत्र सुवर्णाश्च चतुर्दश्च ॥ सुनिर्णिक्तसुवर्णेश्च सप्तिम-मैध्यमा मता। चतुर्भिः कन्यसी प्रोक्ता चतुर्थीशेन वत्सकः ॥ गुढ-धेनुविषानेन दत्ता सर्वफलमदेशादिना सर्व गुढथेनुवदुक्तम् ॥

अथ वायुपुराणोक्तं वन्ध्यात्वहरं सुवर्णधेनुदानम् । चतु-विधा तु या बन्ध्या भनेद्रत्सवियोजनात ॥ चतुर्विधा । बन्ध्या च काकवन्ध्या च स्त्रीपसुश्च मृतप्रजेति॥ वन्ध्या अपत्यसामान्याभाव-वती।काकवन्ध्या काकवदेकापत्या।वक्ष्येतस्याःप्रतीकारं तत्स्वरूपं निबोध में *हिरण्येन यथाशक्त्या सवत्सां कारयेद् दढाम् ।धेनुं पछेन वत्सं च पादेन गुरुरब्रवीत् ॥ धेतुं रौष्यखुरां रत्नं तस्याः पुच्छे नियोजयेत् । घण्टां गर्छे च बन्नीयात्तिरुकं चोभयोरिप ॥ अर्च-येद्विधिना तां तु नैवेद्यं पायसं भवेत् । मोदकांश्च तथाऽपूपान गुडं स्त्रवणमेव च ॥ जीरकं च स्नुविस्तीर्णं शूर्वे वेणुमये दृढम् ॥ धेनोरेकं पदातच्यं ब्राह्मणस्त्रीषु चैत्र हि । पडष्टौ दश वा दद्याः त्तदनन्तरमेव च ॥ ब्राह्मणं सर्वशास्त्रार्थकुशळं धर्मवेदिनम् । विद्या-विनयसम्पत्रं बान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ॥ अल्रोल्डपं सर्वजन-प्रियं कल्मवर्वाजनम् । आहृय भक्तया सम्यूज्य बल्लाद्यैर्गन्यपुष्प-कै: ॥ तेनैव कारयेत पूजामाहतो धेनुवत्सयोः । होमं च कारये-त्तत्र समिदाज्यचद्धत्कटम् ॥ सोमो धेनुमिममन्त्रं समुचार्यं ततः पुनः । पाङ्मुखायोपात्रिष्टाय पदचात्तामुदङ्मुखः ॥ मन्त्रेणानेन विधिवत पुच्छे इस्तं निधाय च ॥ धेनुर्याऽङ्गिरसः सत्रे वसिष्ठे मुरभी च या। दुहिता च तथा भानोरप्रेश्च वरुणस्य च ॥ याश्च गावः पवर्तन्ते वनेषुपवनेषु च ॥ पीणन्तु ता मम सदा पुत्रपौत्र- पवर्द्धनाः । प्रयच्छन्तु दिवारात्रम् अविच्छेदं च सन्ततेः । वन्ध्यात्वं काकवन्ध्यात्वं कन्यापसव एव च । तथैव मृतवत्सात्वं दोषं मम चतुर्विषम् ॥ दानेनानेन हरतु या सा कामदुष्ठाऽनघेति॥

अय खरूपतो गोदानम् । तत्र याज्ञवल्क्यः । यथाकथश्चिद दत्वा गां धेतुं वाऽधेनुमेव वा । अरोगामपरिक्षिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥ जावालः । होमार्थमिप्रहोत्रस्य यो गां दद्याद्यान्त्रितः। त्रिवित्तपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संज्ञयः ॥ अङ्गिराः । गौरेक-स्येव दातच्या श्रोजियस्य विशेषतः । सा हि तारयते पूर्वानः सप्त सप्त च सप्त च ॥ आत्रेयः । सीदते बहुभृत्याय श्रोत्रियाया-SSहिताग्नये। आतिथिमियाय दान्ताय देया धेनुर्गुणान्विता॥देवलः मुत्रीलां लक्षणवर्ती युवर्ती वत्ससंयुताम् । बहुदुग्धवर्ती स्निग्वां धेनुं दद्याद्विचक्षणः ॥ व्यासः । संग्रामेष्वर्जायत्वा तु यो वै गाः सम्प्रयच्छति । याद्द्यीः स्पर्शयेद् गावः स तावत् फलमञ्जुते ॥ तावत तद्गोरोममितवस्सरं स्वर्गफलम् ॥ यो वै द्यूते धनं जित्वा गाः कीत्वा सम्प्रयच्छति । स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलम-इनुते ॥ भारते । न गोदानात परं दानं किञ्चिदस्तीति मे मितः। सा गीन्यीयाजिता दत्ता कुत्स्नं तारयते कुलम् ॥ तथा, अकुली-नाय मूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च । हव्यकव्यव्यपेताय गौर्न देया कथञ्चन ॥ तृणानि खादन्ति वसन्सरण्ये पिवन्ति तोया-न्यऽपरिग्रहाय । दुद्धन्ति वाह्यन्ति पुनन्ति पापं गर्वा रसेर्जीविति जीवलोक इति मशंसा ॥

अथ त्रिधिः । याज्ञवल्क्यः । हेमश्रुङ्गी शफ्ते रोष्यैः सुशीला बस्नसंयुता । सकांस्यपात्रा दातन्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥ बद्भवामत्रः ॥ पाङ्गुर्खी गामवस्थाप्य सवत्सां गां सुपूजिताम् । पुच्छदेशे तु दाता वै ततो बद्धशिखो भवेत् ॥ उदङ्गुखस्तु विगः स्थात् पात्रल्सणलितः । आज्यपात्रं करे कृत्वा कनकेन सम-न्वितम् ॥ निक्षिप्य पुच्छं तर्हिमस्तु घृतदिग्धं प्रयुक्ष च । सतिलं विप्रपाणि च पागग्रं तु निधापयेत् ॥ सतिलं सकुकां चापि घृही-त्वा दानमाचरेत् । अनेनैव तु मन्त्रेण पात्रहस्ते जलं क्षिपेत् ॥ मन्त्रो वक्ष्यते । अनुव्रज्य च तां धेनुं ब्राह्मणेन समन्विताम् । गौतमीं तु ततो विद्यां जपेत प्रयतः श्चिः ॥ उद्दिश्य वासुदेवं च प्रीयतामिति चान्य।पात्रं मनिस सश्चिन्स तोयमप्सु विनिक्षिपेत्॥

अथ प्रयोगः । अद्येखादि गोमात्रदानफलतुल्यफलकामः खर्गकायः सर्वत्रापि कुत्स्नकुलतारणकामः सर्वपापक्षयकाम ईश्वर-**भीतिकामी वा गोदानं करिष्य इति सङ्कल्प्य पाङ्मुखीं सवत्सां** गां विषं च सम्पूज्य समुवर्णमाज्यपात्रं हस्ते यहीत्वा तत्र पुच्छं घृताक्तं कृत्वा विषद्दस्ते कुशातिलजलान्यादाय उक्तफलेल्वाभ-छपितं फल्रमुक्त्वा, यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याधनणाञ्चिनी । विश्व-रूपधरो देवः पीयतामनया गवेति मन्त्रं, छूतक्षीरपदा गावो वृतयोन्यो वृतोद्भवाः । वृतनद्यो वृतावत्तीस्ता मे सन्तु सदा ग्रहे॥ घृतं मे हृद्ये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम् । घृतं मे सर्वतश्चेद गवां मध्ये वसाम्यहमिति पौराणमन्त्रं च पठित्वा जलपुत्स्रजेत । दानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणधेनू अनुत्रज्य, गावः सुरभयो निसं गावो गुग्गुळगन्यिकाः * गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥ अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्। पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च ॥ हविषा मन्त्रपूर्तेन तर्पयन्यमरान् दिवि । ऋषीणामपि होतृणां गावो होमे प्रतिष्ठिताः ॥ सर्वेषा-मेव भूतानां गावः शरणपुत्तमय । गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम् । गावः सर्वस्य लोकस्य गावो धन्याः सवाहनाः ॥ नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।नमोब्रह्मसुताभ्यश्च पित्रज्ञास्यो नमो नमः । व्राह्मणाश्चिवगावश्च कुळमेकं द्विथा कृतम । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठतीति यमोक्तांगोमर्ती विद्यां जिपेत ॥ महाभारतेऽपि गोमती । गावो मासुपितष्ठन्तु हेमश्रुङ्धः पयोष्ठ्यः । सुरस्यः सौरभेट्यश्च सरितः सागरं यथा ॥ गा वै पत्रपान्यहं निस्तं गावः पत्रपन्तु मां सदा । गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयािति ॥ गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु प्रष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहिति पिठत्वा थेतुं द्विजं च प्रदक्षिणीकृत्य द्यादित्यि वदन्ति । दक्षिणामाह वसिष्ठो गोदानप्रकर्णे । सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा । सुवर्णं पावनं पाहुः परिमाणं परं तथिति ॥ यजमानस्ततो द्यान् स्थाक्षस्या तु दक्षिणािमति । तदशक्तपरिभिति मदनः ॥

अथ मात्स्ये हेमश्रुङ्गी।दश्च सौवाणिके श्रुङ्गे खुराः पश्चपला-न्विताः । पश्चाश्चत्यल्ञिकं कांस्यं ताम्नं चापि तथैव च ॥ दाता-ऽस्याः सर्वमाग्नोति यावदाभूतसंष्ठवम् ॥ सुवर्णमत्र दक्षिणा । इति हेमश्रङीदानम् ॥

विश्वयं विष्णवे वापि यस्तु दद्यात पयस्विनीम । धेतुं स्नानोपहारार्थं स परं ब्रह्म गच्छनीति, स्कान्दे देवताभ्यो गो-दानम्। सष्टपं गोशतं दद्याच्छिवायातीव शोभनम्। जिःसप्तकुळजैः सार्द्धं श्रृणु तत्पदमाष्नुयादिखादिना शिवधमींक्तं शिवाय द्यपा-ऽधिकगोशतदानम्। देवताभ्यो दाने देवतैव संप्रदानं, न ब्राह्मणः। दत्तं च तत्तदेवतायतने दक्षिणभागे स्थाप्यमिति दानसौख्वे॥

अधोभयतोमुखी ॥ तहानकालः स्कान्दे । अर्द्धनम्वतां गां दद्यात कालादि न विचारयेत । कालः स एव ग्रहणे यदा सा द्विमुखी तु गौः ॥ मात्स्ये । स्वमश्टर्झी रोप्यखुरां मुक्तालाङ्ग्लरु-भूषिताम । कांस्योपदोहनां राजन सवत्सां द्विजपुङ्गवे ॥ मस्य- मानां यो द्यादेतुं द्रविणसंयुताम्॥यावद्गत्सो योनिमतो यावद्गर्भ न मुश्चित । तावद्गीः पृथिवी द्वेया सञ्जैळवनकानना ॥ देवळः । अळ्डूत्योक्तविधिना सुवर्णत्रियळान्विता । दातव्या द्विपळा मध्येकपळा कन्यसी मता ॥ वाराहे । यश्चोभयमुर्खी द्यात् प्रभृत-कनकान्विताम् । तिहनं पायसाहारः प्रयसा वाऽतिवाहयेत् ॥ सुवर्णस्य सहस्रेण तद्देंनािष वा पुनः । तस्याप्यर्द्वततं वाऽथ पश्चाशच तथार्द्वकम् ॥ यथाशक्तयाऽपि दातव्यं विचशाळ्वविवर्णततम् ॥ योगी । सवत्सा रोमतुल्यािन युगान्युभयतोमुखी।दाता-ऽस्याः स्वर्गमाम्रोति पूर्वेण विधिना ददत् ॥ मात्स्ये । गोळोकः सुळ्यस्तस्य ब्रह्मळोकश्च पार्थिव ॥ स्वियश्च तं चन्द्रसमानवक्षाः मतम्रजाम्बृनदतुल्यवणीः # महानितम्बस्तनमध्यवृत्ता भजन्यजस्रं निक्रनाभनेवाः ॥

अथ प्रयोगः । अधेत्यादि ग्रहससुद्रशैलवनोपेतपृथिवीदानसमफल्लेतद्वेत्तवत्सरोमसंख्ययुगदेवलाकमहितत्विपतृथितामहप्रयितामहनरकोद्धरण-पृतक्षीरवहवहुकुल्याक-दिधायसकर्दमक-देशाः
ऽधिकरणकेष्मितकामगत्यात्मलोकमुल्लभत्वब्रझलोकमुल्लभत्वाजलचन्द्रसमानवक्ष-सुतप्तजाम्बृनदतुल्यवर्ण-महानितम्बस्तनदृत्तमध्यनिल्नाभनेत्राऽनेकस्त्रीसेच्यमानत्वकाम जभयतोसुर्खी दास्य इति
सङ्कल्प्य, ॐ त्वं महीमवनिविश्वधनोवीतयेवप्यापक्षरन्ती। अरमयो
नमसैतदणस्मुतरणानि कृणोरिन्द्रसिन्ध्वृतिति गामनुमन्ध्य विभं वस्त्रादिभिगी च सुवर्णश्रुङ्गरूप्यसुरादिभिरलङ्काःय गन्धादिनाऽभ्यच्ये
सम्रहेत्यादि काम इत्यन्तं प्रयोगान्ते इमं सोपस्करासुभयतोमुर्खी
गां रुद्दैवताम् । असुकगोत्रायाऽमुकश्रभणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्पद्दे न ममेति ब्राह्मणकरे दद्याद । विभस्तु विधिवद्
प्रतिग्रह्म, ॐ स्वस्तीत्युक्का गोपुच्छं स्पृष्ट्वा दत्तां दक्षिणां च प्रति-

गृह्य स्पृष्ट्वा इरावती धेनुमती, स्योना पृथिवि नो भवेति मन्त्रद्रयं जप्त्वा, प्रतिग्रह्णामि त्वां घेतुं कुटुम्बार्थं विद्योपतः । स्वस्तिर्भवतु मे निसं रुद्रमातर्नमो नम इति मन्त्रेण गृहीताया दक्षिणपाणिना गर्भेऽनुसन्तत्वेषा मे वेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा शतमाञ्चर-आयसीररक्षं नघस्येनो जयत्सानि दीयमिति । मन्त्रेणानेन गर्भ-माकृष्येत । अनन्तरकृत्यमाह च्यवनः । निष्कान्तेऽप्रिमुपसमाधाय देवान् पितृन्नदीः पर्वतान् वनस्पतीनुद्धीः न्नागान् ओषधीस्तर्पयेत् । तत्र क्रमेण मन्त्राः । ये देवासः, उश्चन्तस्वा, इमं मे गङ्गे, आद्विभः मुतो मतिभः क्वनोहितः, वनस्पते, समुद्रज्येष्ठाः, आहित्य भोगैः, मधु वाता इति । तदनु पृथिवी तर्पयेत । मन्त्रास्तु । इत्येष्वा मही चौः, उर्वी पृथिवी,गौरीमिमाय ।ततः समस्तव्याह्व-तिभिश्चतुरश्चीत्याऽऽजयाहृतीहृत्वा बाह्मणान् भोजयित्वा स्वस्य-यनं वाचियत्वा गामनुत्रज्य प्रागुक्तां गोमतीं विद्यां जप्त्वा पायस-मात्रं भुश्चीत ॥ इत्युभयतोमुक्वीगोदान्विधः ॥

भारते । इतिकण्डमनड्वाहं सर्वरत्नेरलङ्कृतम् । दःवा प्रजापते-ल्लोंकान् विद्योकः प्रतिपद्यत इसादिमुवर्णशृङ्करीप्यलाङ्गुला-दिकमपि भारतोक्तं वोध्यम्॥ इतिकण्डं प्रवलगलकम्बलम् ॥

अथ वैतरणी ब्रह्मवैवर्ते । या सा वैतरणी नाम यमद्वारे महानदी । शतयोजनविस्तीणां पृथुत्वे सा महासरित ॥ अगाधाऽनन्तरूपा च दृष्टमात्रा भयावहा ॥ तथा, पतन्ति तत्र वै मत्याः क्रन्दमानाः सुदारूणम् । तच्छुणुष्य नरच्याघ्र कथ्यमानं युधिष्ठिर ॥
अयने विषुवे पुण्ये च्यतीपाते दिनक्षये । पाटळामथवा कृष्णां
कुर्याद् वैतरणीं श्रमाम् ॥ स्वर्णश्रङ्कीं रीप्यसुरां कांस्यपात्रसदोहनाम् । कृष्णवस्त्रुगच्छन्नां सप्तथान्यसमन्विताम् । कार्पासद्रोणविश्वर आसीनं ताम्रभाजने।यमंहैमं मकुर्याद्वै छोहदण्डसमन्वितमा।

महामहिषमाष्ट्रहमुद्रपाशं करे परे । इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा उडुपं पट्ट-वन्धनैः॥ उडुपोपरि तां धेनुं सर्यदेहसमुद्धवाम् । कृत्वा प्रकाशये-द्विद्वानः छत्रोपानहसंयुताम्॥इममुचारयेन्मन्त्रं संगृह्योद्कमण्डलुम्॥

अथ प्रयोगः ॥ पूर्वोक्तायनादिकाले मृत्युकाले वा पाटलां कुष्णां वा हेमश्रुङ्गाद्युपेतां कुष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तथान्यसंयुक्तां छत्रोपानद्युगलतंयुतां गां संनिधाप्य द्रोणमितकार्पासिशाखरे ताम्र-पात्रं तत्र च महिवारूढं दक्षिणवामहस्तप्तत्रहोहदण्डपाशं हैमं यमं स्थापयित्वा तद्य्रे पदबद्धेश्चदण्डिनिर्मितप्रवीपरि तां धेनुं स्थाप-वित्वा उदङ्गुलं पतिग्रहीतारमुपवेश्य स्वयं पाङ्गुलः । यगद्वारे महाघोरा या सा वैतरणी नदी। तर्चुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वै-तरणीं च गामिति मन्त्रेण गामिधवासयेत् ॥ ततः तिथ्यादि स-ङ्कीर्स वैतरणीं तर्चु गां दास्य इति संकल्प्य प्रतिमायामझतपुञ्जे वा विष्णुं गां विष्रं च संपूज्य । अद्येखादि । अमुकगोत्रायामुक-वार्मणे ब्राह्मणायाहं यमद्वारे स्थिताया नद्याः सुख्नेनोत्तरणार्थ-मिमां वैतरणीं गां सवत्सां सोपस्करां हैमयममुर्त्तिसहितां विष्णु-दैवतां संपददे । दानमन्त्रः । विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भृदेव पङ्कि-पावन । सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौरिति ॥ ततः सुवर्ण दक्षिणां दत्वा तद्धेनोः पुच्छं प्रमुह्यानुब्रजेव । तत्र मन्त्रः । धेनुके त्वं प्रतीक्षस्त्र यमद्वारे महाभये । उत्तितीर्धरहं देवि वैतरण्ये नमो नमः ॥ इति वैतरणीदानम् ॥

अथ माहेष्याः । भविष्योत्तरे । माहेषीदानमाहात्म्यं कथ-यामि युधिष्ठिर । पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामपदं मुखम्॥ चन्द्र-सूर्यग्रहे पुण्ये कार्तिक्यामयने तथा । शुक्रपक्षे चतुर्दक्यां सूर्य-संक्रान्तिवासरे॥यदा वा जायते वित्तं चित्तं च कुरुनन्दन । तदैव देया माहेषी संसारभयभीरुणा ॥ प्रथमप्रसूता तरुणी मुक्तीछा दोषवर्जिता । सुवर्णश्रृङ्गतिलका घण्टाभरणभृषिता ।। रक्तवस्त्र-द्यता रम्या ताम्रदोहनिकान्विता । पिण्याकपिटकोपेता सहिरण्या च शक्तितः ॥ पिण्याकपिटकं विष्ठपूर्णवैज्ञादिपात्रम् । सप्तथान्य-युता देया ब्रह्मणे तां पयस्विनीम् । पतिग्रहः स्मृतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयम्भुवा ॥ दानवाक्यं तु, ॐम् अद्यत्यादि । इन्द्रादिलोक-पालानां या राज्यमहिषी शुभा । महिषी दानमाहात्म्याद साऽस्तु मे कामदा सदा ॥ धर्मराजस्य माहात्म्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः। महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा ममेति मन्त्रसुक्त्वाऽसुक-गोतायामुक्तक्रमणे ब्राह्मणाय इमां महिषीं सुवर्णशृङ्गतिलकाभरणां घण्टाताम्रदोहनिकां पिण्याकपिटकसप्तधान्यपादुकोपेतां यमदैवता-म् आयुष्यमुख्यमहाराज्यकामस्तुस्यमहं सम्पद्दे इति। स्त्री तुराज-महिषीत्वकामेति । जयकाम इति सन्नियः । धनधान्यकाम इति बैश्यः । एवं श्द्रेणाऽपि स्वाभिलितं फलमुक्तेरुयम् । ईश्वर-शीतिकाम इति वा सर्वेः । ततो दक्षिणां दद्यादिति । अनेन विधिना दत्वा महिषीं द्विजपुद्भवे । सर्वान् कामानवामीति इह लोके परत्र च ॥ या स्त्री ददाति महिर्षी सा राजमहिषी भनेत । महाराजः पुपान राजन व्यासस्य वचनं यथा ॥ यज्ञयाजी भवे-द्विमः क्षत्रियो विजयी भवेत । वैश्यस्तु धान्यधनवान शुद्रः सर्वा-Sर्थसंयुत इसादिफलश्रुतिरिति तत्रैवोक्ता ॥ इति महिपीदानम् ॥

अथ मेष्याः । भविष्योत्तरे । श्रृणु पार्थ परं दानं सर्व-किल्विपनाशनम् । यदत्तं विविधं पापं सद्यो विलयमुच्छति ॥ सुवर्ण-रोमां सौवर्णां पत्यक्षां वा सुशोभनम् । सुवर्णतिलकोपेतां सर्वा-लक्कारमृषिताम् ॥ कौशेयपरिधानां च दिन्यचन्दनभृषिताम् । दिन्यपुष्पोपहारां च सर्वधातुरसैधिताम् ॥ सप्तधातुसमायुक्तां फल्यपुष्पवर्ती तथा । शतेन कारयेत्तां तु सुवर्णस्य प्रयत्नतः ॥

यथाशक्तयाऽथवा कुर्वाद्विचशाठयं न कारवेद ॥ अयने विषुवे पुण्ये ग्रहणे शशिसूर्ययोः । दुःस्वप्तदर्शने चैव जन्मर्शे तिथिसङ्कये ॥ यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् । तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ॥ नद्यां तीर्थं यहे वाऽपि यत्न वा रमते मनः । तत्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्कर-म् ॥ ब्रह्माणं सह गायञ्या सश्रीकं श्रीधरं तथा । रत्या सह तथाऽनङ्गं लोकपालान् ग्रहानपि ॥ तांस्तु पूज्य विघानेन गन्ध-पुष्पनिवेदनैः ॥ उपाशङ्करकपम् । चर्माम्बरश्चतुर्वोद्दः शूल-खट्टाङ्गपाशमृत्।र्रपाङ्कः शङ्करो गौरी वामोत्सङ्गे स्थिता भवेदिति॥ ब्रह्मगायत्र्यादिरूपाणि तु माग्रक्तानि । तानि च यथाशक्ति सौवर्णानि कार्याणि । तद्ये कारयेद्धोपं तिलाज्येन महीतले । अलङ्कृत्य द्विजं शान्तं वासोभिः परिपूज्य च ॥ तल्लिङ्गमन्त्रेहींमश्च कर्त्तच्यो ज्वलितेऽनले ॥ ततस्तां तिलकुम्भस्यां लवणाभिमुखां स्थिताम् । पूजियत्वा विधानेन मन्त्रमेतमुद्दीरयेव ॥ मन्त्रः प्योगे क्केयः। एवमुचार्य तां दद्याद्वाह्मणाय कुटुम्बिने । नामिभाषे-त्ततो दत्वा न मुखं वाऽवछोक्रयेत । दुष्टमतिग्रहणतो विप्रो भव-तिपातकी ॥ अपुत्रो छभते पुत्रमधनो छभते धनम् । दत्वा दानं ग्रभां कान्तिं कीर्ति च विपुलां तथेति ॥

अथ प्रयोगः ॥ उक्तायंनादिकाले ग्रहे तीर्थे वा दाताऽद्येसा-दि सर्वपापक्षयपूर्वक—पुत्रधनकान्तिकी। चैंपाप्तिकामो मेपीदानं कारेच्य इति सङ्करपयेत । दुःस्वमे तु तत्स्यचितानिष्टनिटिचिकाम इति विशेषः। प्रतिमासु तण्डलपुञ्जेषु वा उमासिहतं शङ्करं गायत्री-सिहतं ब्रह्माणं श्रीसिहतं श्रीधरं रतिसिहत्यनङ्गं लोकपालान् प्रहां-श्च सम्पूज्येतत्यकाशकर्मान्त्रेराज्याक्ततिलेरष्टाष्टाविश्वसादिसंख्यया हत्वा सुवर्णतिलकाञ्चलङ्कारकोशेयचन्दनपुष्पसुवर्णकृष्पाऽऽदिसस्त- घातुसस्रसस्तकलपुष्पयुतां मध्यस्थापितितलल्लुम्भां संमुखस्थापितलवणां मेषीं च सम्पूष्प, रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः
सदा । जगतः सम्प्रद्यताऽसि त्वामतः प्रार्थयेष्मतम् ॥ वाङ्मनःकायजितं यित्विञ्चन्मम दुष्कृतम्।ततः सर्वे विलयं यातु त्वदानानुपसेवितमिति मन्त्रमुक्ता तिथ्यादि सङ्कीत्यं सर्वपापस्यपूर्वकपुत्रधनकान्तिकीर्त्तिपाप्तिकामो दुःस्वप्तमुचिताऽनिष्ठिनिद्यत्तिकामो
वेमां मेथीं सर्वोपस्करयुताममुकगोत्रायामुकश्मणे विप्रायादं सम्पददे न ममेति दत्वा विषेण यथाविधि प्रतिग्रहे छते दक्षिणां
दद्यात । प्रवेमव सुवर्णमेषी देया । प्रतिग्रहीतृविप्रसम्भाषणमुखाऽवलोकने वर्जयेत ॥ इति मेषीदानम् ॥

अथाजादानम् ॥ सुमन्तुः । अजापालो महीपालो ह्यानि दानैदिवं गतः । अयने विषुत्रे चैत्र युगादौ ग्रहणेषु च ॥ अमावा-स्यामजादानं पौर्णमास्यां च शस्यते । विधि तस्य मनक्ष्यामि विश्वामित्रेण निर्मितम् ॥ सर्वरत्नोपसम्पन्नां सप्तथान्योपरिस्थिताम् ॥ बस्त्रमाल्योपमालां तु भृषितां पश्चजानकीम् ॥ वज्रनेत्रां हेमश्रङ्गां ताम्रपृष्ठां सदोहनाम् । सस्रतां रौप्यपादां च कुक्षो दद्यात्तिलो-दक्षम् ॥ गोदाननत् मगुञ्जीत मन्त्रेणानेन संयुतः ॥ मन्त्रवासो अजे श्रुक्षणे यज्ञसम्पत्करे शुभे । स्या तं दह मे पापं जन्मान्तर-श्वतैः कृतमिति ॥ एवं समुचरेद्धत्तया विमहस्ते जलं क्षिपेत् । भीयतां यज्ञनाथाय वासुदेवाय वै नमः ॥ एवं प्रदक्षिणीकृत्य सूर्ये समवलोकयेत् । ततश्च गच्छेत् स्वयृहं हिर्रे संस्मृत्य मानवः ॥ ये वालत्वे कृताः पापाः कामतो वाऽष्यकामतः । यौवने वार्द्व-कोन्मादे मसङ्गेनापि पातकम् ॥ अजादानस्य माहात्म्यान्निष्पापो जायते नरः । पुत्रपौत्रसमायुक्तः सदाचारमितिश्चरम् ॥ विष्णु-धर्मोत्तरे । उष्ट्रं वा गर्दभं वाऽपि यः प्रयच्छित सुद्विने । अजा- मुरभ्रं तुरगं यथाक्तस्या सदक्षिणम् ॥ अळकां स समासाध्यक्षेत्रः सह मोदते । सर्वकामसम्बद्धात्मा सर्वयक्षफ्ळं छभेत् ॥ त-स्मादजां मयच्छस्य ततः सर्वमवाष्ट्यसि । मन्त्रेणानेन विधिवद-ऽळङ्क्रस स्वक्षांकृतः ॥ त्वं पूर्वं ब्रह्मणा स्रष्टा पवित्रं भवती परम्य । त्वत्मसूतौ स्थिता यज्ञास्तस्माच्छान्तिकरी भव ॥ मतिगृह्णीत तां चैव पृष्ठदेशे द्विजोत्तम ॥ दानवाक्यं तु महिषीदानवज्ज्ञेयम् । अजाविकं च महिषं दत्वा विमाय शक्तितः । पृतक्षीरवहा नद्यो यत्र तत्र समेथते ॥ इसजादानम् ॥

अय मेषदानम् ।। बौधायनः । अग्नेर्मान्द्यं भवेत्तस्य यस्नेता-Sिनविनावानः । वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाऽथवा पुनः । राजतं कारयेव सौम्य-मग्नेर्वाहनमुत्तमम् ॥ सीवर्णाश्च खुराः कार्याः क्वेतवस्त्रेण वेष्ट्येत । क्वेतमाल्यैः क्वेतगन्धेर्धृपं दद्यान्मधृत्कटे ॥ तण्डुलोपारे संस्थाप्य पुनस्तं पूजयेव सुधीः । तन्दुछानां परीमाणं द्रोणद्वयसुदाहृतम् ॥ आग्नेय्वां दिशि होमश्च समिदाज्यतिछैरपि । आचार्येण विनीतेन सर्वशास्त्रार्थवेदिना ॥ बहुटचेन च कत्तेन्यस्तत्र मन्त्रानिमानः श्रुणु । अग्निर्मुर्द्धेति मन्त्रेण समिद्धोमः प्रशस्यते ॥ अग्ने नयेसा-SSज्यहोमोऽप्यमिनाऽमिस्तिलाक्षतैः।मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण चामि-संस्थापनं भवेत ॥ अग्नेः पागुत्तरे देवो शुभं कुम्भं च विन्यसेत। प्रणीतामोक्षपर्यन्ते कृते स्नानं विधीयते ॥ आपो हिष्ठेसपि दुचं हिरण्येति चतुर्ऋचम् । पवमानानुवाकेन मार्जयेद्रोगिणं ततः॥ भानो वातानुवाकेन भानित चाऽपि प्रकल्पयेत् ॥ तस्यै इतवते रोगी पाङ्गुखाय हुदङ्गुखः । पूजिताय यथाशक्तया दंघात्तं तु सदक्षिणम् ॥ देवानां यो मुखं हृज्यवाहनः सर्वपूजितः । तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महर्षिभिः ॥ अग्निमान्द्यं पूर्वकर्मविपा- कोत्थं तु यन्मम । तत्सर्वं नाज्ञय क्षिप्रं जाटरार्धिन मवर्द्ध्येति दानमन्त्रः । एवं विपाय यो दद्यादग्नेत्रीहनमुत्तमम् । बल्बानिध-वान्मर्सो जीवेद्वर्षतातं पुनः ॥ ततः स्वबन्धुभिर्विपैः स्नात्वा भुक्षीत मानवः ॥ इति मेवदानम् ॥

अथ पर्वतदानानि । पारस्ये, प्रथमो धान्यशैलः स्पाद द्वितीयो लवणाचलः । गुडाचलस्तृतीयः स्याचतुर्थो हेमपर्वतः ॥ पञ्चम-स्तिल्बीलः स्यात् षष्टः कार्पासपर्वतः । सप्तमो प्रत्वीलः स्याद्रत्न-बैळिस्तथाऽष्ट्रमः ॥ राजतो नवमस्तद्वदशमः वार्कराऽचळः । वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ॥ अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । शुक्कपक्षे द्तीयायामुपरागे बाबिक्षये ॥ विवाहोत्सव-यक्केषु द्वादश्यामथवा पुनः । शुक्रायां पश्चदश्यां वा पुण्यर्से वा विधानतः ॥ धान्यशैलादयो देया यथाश्रद्धं विधानतः ॥ तीर्थे बाड्डयतने बाडपि गोष्ट्रे वाड्य नवाङ्गे । मण्डपं कारवेद्धस्त्या चतुरस्रमृदङ्गुलम् ॥ प्रागुदक्पवणं तद्वत् पाङ्गुलं व। विधान-तः ॥ प्राच्यामुदीच्यां चैकमेव द्वारम् । न चत्वारि द्वाराणीत्वर्थः । द्वारैक्याच तोरणमप्येकपेव । द्वारपरिष्कारणमप्येकपेव । द्वारपरि-ष्कारणत्वात्तस्य । मण्डपोऽष्टादशहस्तोऽन्यथा द्रोणसहसादिमित-पर्वतानवेशायोगात्। गोमयेनोपछिप्तायां भूमावास्तीर्य्य वै कुशान् * तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भैः पर्वतैर्युतम् ।। धान्यद्राणसहस्रेण भवेद् गिरिरिहोत्तमः। पध्यमः पश्चशतिकः कानेष्टः स्यात् त्रिभिः शतैः॥ मेरुमेहान् त्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णदक्षत्रयसंयुतः स्यातः *। द्यक्षत्रयं मन्दारपारिजातकल्पद्यक्षरूपम् । मध्ये कल्पतरुर्दक्षिणो-त्तरयोर्पन्दारपारिजातौ । शक्तौ हरिचन्दनसन्तानाविष पूर्वपश्चिम-यो: स्थाप्यो । निनेक्यो सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराऽचळ * इति वक्ष्यमाणनाक्यत्वात् । शर्कराचछदानं त्वावश्यकम् । पूर्वेण मुक्ता-

फलवज्रयुक्तो याम्येन गोमेदकपुष्परागैः * पश्चाच गारुत्मत-नीलरत्नै। सौम्येन वैद्वर्यसरोजरागैः ॥ सरोजरागः पद्मरागः। मुक्ताफुळादीनि पूर्वीदिदिगवस्थितराजतश्रुङ्गेषु निवेश्यानि।मन्दरः, श्रीखण्डखण्डेरभितः पवाललतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात * ब्रह्मा च विष्णुर्भगवान् पुरारिर्दिवाकरो यत्र हिरण्मयः स्यात् ॥ मुर्द्धव्यवस्थागतमत्तरेण कार्यास्त्वेनके च तथा द्विजीघाः । ब्रह्मा-दिपतिमा ब्रह्माण्डदाने । द्विजाः पक्षिणो सुनयश्च हैमाः ॥ अनेक-पदस्वरसादिति मदनः । चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि नितम्ब-भागेऽपि च राजतः स्यातः ॥ आर्द्रेश्चनंशादृतकन्दरस्तु घृतोदक-प्रस्वणश्च दिश्व । शुक्काम्बराण्यम्बुधरावळी स्यात पूर्वेण पीतानि च दक्षिणे स्यात् ॥ वासांसि पश्चादथ कर्बराणि रक्तानि चैवोत्तरतो घन।छी ॥ आर्द्रेक्षव एव वंद्याः । घृतमेवोदकम् । श्रक्काण्यम्बराण्येव मेघावळी । रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखानथाष्टौ संस्था-ष्य लोकाधिपतीन क्रमेण शामहेन्द्रादिलक्षणं तुलादाने । नाना-फळाळी च समन्ततः स्यान्मनोरमं माल्यविलेपनं च 🕸 वितानकं चोपरि पञ्चवर्णमम्छानपुष्पाभरणं सितं च ॥ इत्थं निवेदयाऽमर-बैळिमान्यं मेरोस्तु विष्कम्भागिरीत् क्रमेण । तुरीयभागेन चतु-र्दिशं त संस्थापयेत पुष्पविस्रेपनाड्यान् ॥ पतिविष्कम्भपर्वत-म् । तुरीयांशेन चतुर्थाशेन विष्कम्भपर्वतान् कारपेत् । प्रथािन-ति लवणाचले वश्यमाणत्वादिति मदनः । वास्तवं त एकेनैव चतुर्थोदोन चत्वारोऽपि विष्कम्भपर्वताः कार्या इति तत्रेव वक्ष्यते। पूर्वेण मन्दरमनेकफछेश्च युक्तं युक्तं गणैः कनकभद्रकदम्बचिह्नः म् अ कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत् कुसुमबस्त-विलेपनाट्यप्॥श्लीरारुणोदसरसी च वनेन चैव रौप्येण शक्तिघटि-तेन विराजनानम् ॥ कामरूपमाह विश्वकर्मा । चापवाणघरः कामो रतिभेषात् सुमध्यमः। आलापी नन्दने रागी रूपवान् विश्वमोहक इति॥ वैहमेरुसन्निघानाद्धान्यान्तरानुपदेशाच मन्दरोऽपि वीहि-मय एवेति मदनः। तत्र, विष्कम्भपर्वतं चैव यवैः कुर्याचु पूर्वत इति ब्रह्माण्डोक्तेः॥गणैरिति नराकृतिभिस्त्रिभिर्गणैर्युक्तम्।कापेञ्चलवत्। कनकेति कनकिनिर्मितो भद्रकन्दरः । तद्रूपं प्रयोगे क्वेयम् । क्षीरे-ति । क्षीरचूर्णेन रौष्येणारुणोदाख्येन[े] सरसा रौष्येण वनेन च विराजगानम् । यामेन गन्धमदनश्च निवेशनीयो गोधूमसञ्चयमयः कछधौतजम्ब्या 🗱 हैमेन यक्षपतिना घृतमानसेन वस्त्रेश्च राजत-वनेन च संयुतः स्यात् ॥ कल्रघौतजम्ब्वा हैमजम्बृदक्षेण । यक्षपतिरूपं हेमाद्रौ श्रीप्रक्ते।इस्वमापिङ्गनेत्रं च गदिनं पीतविग्रह-म् । पुष्पकस्थं घनाध्यक्षं ध्यायेज्अवसखं सदेति ॥ सघ्रतेन रा-जतेन गानससरसा । पश्चात्तिळाचळपनेकसुवर्णपुष्पसौवर्णपिष्पळ-हिरण्मयहंस्युक्तम् । आकारयेद्रजतपुष्पमयेन तद्वद्वस्तान्वितं दिध-सितोदसरस्तथाग्रे॥ आकारयेत कुर्यात् । दधीति सद्धिरानतं पात्रं सितोदारूयं सरः । संस्थाप्य तं विपुछत्रीलमथोत्तरेण त्रैलं सुपार्वि-मपि मापमयं सबस्नम् । प्रव्येश्च हेमबरपादपशेखरं तमारकारयेव कनकथनुविराजमानम् ॥ माक्षीकभद्रसरसा च वनेन तद्वद्वौष्येण भास्करवताच युतं विधाय॥संस्थाप्येति शैळान्तं पूर्वोक्तातेळाचळा-Sत्वादकम्। अथेत्यादिः पुनः पार्क्वविधिः । माक्षीकेति । समधु-रूपभद्राख्यसरसेत्यर्थः । होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्धिर्दानै-र्निन्धचरितः कृतिभिर्द्विजेन्द्रैः । पूर्वेण इस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यं तिलैर्यवष्टतेन समित्कुरौश्च ॥ ब्रह्माण्डे, इन्द्राचा लोक-पालाश्च तेषां होमो विधीयते । तिल्लङ्गिश्चैव मन्त्रेश्च समिद्धिरथवा तिलै:॥ पौरुषेण तु सुक्तेन ब्रह्मादीनां विधीयते। तथा व्याहृति-भिर्हीमस्तिलेराज्येन चैव हि ॥ अष्ट्यतं तु होतव्यं सर्वकाम-

समृद्धय इति ॥ वसुरुद्रादिवसमुचायको छोकपालाश्रेति चका-रः । प्रहादिकामधेन्वन्तानामशीतिदेवतानां तिलयवपृतौदुम्बर-समिरकुरीः पश्चिमिर्द्रव्यैः पृथक्त्रयोदश्चसंख्यया होम इति त्रिपश्चा-भादधिकं सहस्रं सर्वा आहुतय इति दानविवेके । तन्न । तिलैर्यव-घृतेन समित्क्रशैरिति पृथक् समस्तया च तृतीयया साधनवै-षम्यात् ॥ सभित्कुवैरिति द्वन्द्वापेक्षया कर्मधारयस्य छघुत्वात् । ब्रह्माण्डवचोविरोधास्त्रिपञ्चाश्चद्धिकसहस्रसंख्यया प्रचयशिष्टायाः कथमप्यसङ्गतेश्च । समिषश्च कुत्रा ६ति कर्मधारयः । तेन तिलानां पृथकुसाधनता यवपृतयोर्व्यासक्ता । समस्तयोस्तृतीयाश्रतेः। कुशानां तु पृथगिति त्रीण्येव होमसाधनानि । तैः मसेकमष्ट-संख्यया ग्रहादिद्वात्रिंबादेवता हुत्वेन्द्रादिदबाळोकपाळेभ्योऽष्टवसुभ्य एकादशरुद्रेभ्यो द्वादशादिसेभ्यश्च तिलैः समिद्धिर्वा मसेकमष्टसं-ख्यया इत्वा सूर्यकामदेवधनदहंसकामधेतुभ्यः समस्तव्याद्वातिभि-स्तिछैराज्येन च जुहुयात । अष्टोत्तरवातं तत्र चतुःपञ्चावात्तिछै-श्रतुःपञ्चाश्रदाज्येन । रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततृर्ध्येरावाहनं च कथयामि शिलोचयानाम् *। मन्त्रा वस्यन्ते । एवपभ्यर्च्यं तं मेरं मन्दरं चाऽभिपूजयेत् ॥ एवमामन्त्र्य तान सर्वान प्रभाते विगले पुनः।स्नात्वाऽथगुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्॥विष्कम्भ-पर्वतान् दद्याहित्वग्भ्यः ऋषशो बुधः । गाश्च द्याचतुर्विश-दथवा दश पार्थिवः॥शक्तितः सप्त वाऽष्टौ वा पश्च दद्यादशक्ति-मान, । एकां वा गुरवे दद्याद, कापेछां च पयस्विनीम् ॥ ऋत्विम्भ्यो दक्षिणा देया यथासम्भवकाञ्चनम्।पर्वतानामशेषाणा-मेष एव विधिः स्मृतः ॥ त एव पूजने मन्त्रास्त एवोपस्कराः स्पृताः ॥ ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वेशः । ख-मन्त्रेणैव सर्वेषु होमः बैछिषु पठ्यते ॥ उपवासी भवेश्विसमक्षाकौ

नक्तमिष्यते । विधानं सर्वशैलानां क्रमशः श्रृणु पार्थिव ॥ दान-कालेषु ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फल्य ॥ मन्त्राः प्रयोगे क्षेयाः । असमेव यतो लक्ष्मीरस्त्रमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मास्त्रगोत्तम ॥ अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम । मन्वन्तरद्यातं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥ अप्सरोगणगन्धर्वेराकीर्णेन विराजितः । विधानेन दिवः पृष्ठमायाति सुरसेवितः ॥ कर्मक्षयाद् राजराज्यं प्रामोतीह न संश्वयः ॥ इति धान्यादिशैलदानम् ॥

अथ साधारणः प्रयोगः । यजमानः पूर्वोक्तदेशेऽष्टादशहस्तं भण्डपं कुण्डं च पूर्वनत् कुपीत् । तस्य च प्राच्यामुदीच्यां वैक-मेव द्वारं तोरणं च, न चत्वारि । कुण्डं चैकमेव । प्राच्यां हस्त-मात्रा ग्रहवेदी ॥

भव केलिर्माणम् । मध्ये कुक्षानास्तिर्ध्ये सहस्रद्रोणमितराज्ञालिलामकमहात्रीहिभिरुत्तमं, तदर्द्धेन मध्यमं, द्रोणक्षातत्रयेणाऽधमिमिति मेर्ह कास्त्या करुपयेत् । द्रोणं परिभाषावामुक्तम् । मेरोरुपरि मध्ये करुपट्टसम् । प्रागादिदिश्च हरिचन्दनमन्दारसन्तानपारिजातात् । अक्षक्तौ मन्दारकरुपटक्षपारिजाततरवः स्थाप्याः । क्षकराचले तु सन्तानहरिचन्दनावाबन्धकौ । पूर्वादिदिश्च ब्रह्मविष्णुरुद्धस्पेपतिमाः पिससंघात्र
मुनिसंघात्र । तथा प्रागादिदिक् चतुष्टये क्रमेण मुक्ताफलहरीकैगामेदपुष्परागमिरिकतनीलरत्नैवेंह्रय्यपग्रगमेः समसंख्याकैभूषिनं
श्वज्ञचतुष्कं, तद्बिहाद्वाष्ट्रके रीष्यमिन्द्रादिलोकपालप्रतिमाष्टकं
समन्तात् श्रीखण्डेलेतानां स्थाने प्रवालानि विल्ञानां द्यक्तीः
प्रागादिषु मेघानां क्षेतपीतकर्नुररक्तवस्त्राणि, वंक्षानाम् इस्ल्र्
जलस्य घृतं, गन्धपुष्पनानाफलानि च परितः संस्थाप्य पश्चवर्णवितानकं तथैव याम्ये चोपरि बन्नीयात् ।ततो यवैर्मरोश्च षोडकां-

भोन माच्यां मन्दरम् । तदुपिर नरक्षं गणत्रयं कदम्बं च सीवर्णकदम्बम्ले हैमः कामदेवः । अरुणोद्सरःस्थाने दुष्पपूर्ण-रोप्यात्रम् । रोप्यं चैत्ररथारूपं वनं गन्धपुष्पफल्यसाणि च स्थान् पयेत । याम्ये मेरुषोदशांशगोधूममयं गन्धमादनं तदुपिर सीवर्णनम्बृद्धः तन्मुले सीवर्णमुद्दक्षुम् धनदं मानससरःस्थाने सपृतं रोप्यात्रं कृत्यं गन्धविख्यं वनं नानाफल्यस्थमाल्यानि च स्थाप्येत् ॥ पश्चिमे मेरु षोडशांशतिल्यमयं विषुळ्पर्वतं तदुपिर सीवर्णिपपळं तन्मुले पाक्सिसीवर्णादेशमाल्यानि च स्थापयेत् । पश्चिमे मेरु षोडशांशित्रणाद्यानि सितोदसरःस्थाने पयोदिष्पूर्णरीष्यपात्रं रोप्यं वैश्वाजवनं वस्त्रफल्याल्यानि च स्थाप्येत । उत्तरे मेरु षोडशांशितमाषैः सुपार्श्वपति तदुपिर सीवर्णवित । उत्तरे तन्मुले दक्षिणाभिसुर्खी सवत्सां सुवर्णधेनुं भद्रसरःस्थाने मधुपूर्णरीष्यपात्रं रूप्यं सावित्वनं वस्त्रफल्यादि च स्थापयेत । एवं वक्ष्यमाणपर्वतेष्वपि मेरुद्रव्यचुर्थाक्षेन लवणादिद्रव्येण प्रागादि-सु विक्कम्भादिपर्वता क्षेत्राः ॥

अथ यजमानोऽघेत्यायुक्ताऽप्तरोगन्धर्वयुत्तिमानकरणकस्वर्जोकगमनसाग्रमन्वन्तरकाछदेवलोकवासोत्तरभूलोंकराजत्वकामइंश्वरप्रीतिकामो वा श्वो धान्यपर्वतदानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य
गणेशपूत्रा—स्वस्तिवाचन—मातृपूजा—नान्दीश्राद्धाचार्यात्वग्वरणतन्मधुवर्कमण्डपपुजनाचार्यविनियोगान्तं सामान्यप्रयोगोक्तं कुर्याद।
आचार्योऽपि प्रहादिस्यापनादिकुण्डसमीपस्थितकलशस्थापनान्तं
कुर्याद । अत्रत्विजः पावकुण्डे प्रहादिद्वात्रियोद्यास्थापनान्तं
स्त्रतेलेः पृथम्यवधृताक्तान्मन्त्रेत्तिलेः पृथम्यवधृताभ्यां मिलिताभ्यां कुर्वेश्चेति ज्ञिभः साधनैः प्रत्येकमष्टवारं हृत्वा दशलोकपालक्ष्योऽष्टवसुस्य एकादश्वर्येभ्यो द्वादशादित्येभ्यश्च प्रत्येकमष्टसंख्यया समिज्ञितिलेशी जुहुसुः । मन्त्रास्तु सामान्यमभ्रोगे

जक्ताः । ततः पुरुषस्केन बहाविष्णुशिवेभ्यः समिद्धिरितलैर्बी सूर्यकामदेवधनदद्दंसकामधेनुभ्यस्तिलैर्धृतेन चाष्टोत्तरकातं जुहुयुः । तत्र चतुःपञ्चाशात्तिलैश्चनुःपञ्चाश्चरृतनेति । ततो यजमानो मेरुमावाह्य पूजयेत । तत्र मन्त्राः—

त्वं सर्वदेवगणधामनिधिर्विरुद्धमस्मदृग्रहेऽप्यमरपर्वतनाञ्चयाश्च ।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः संपृज्ञितः परमभक्तिमता मयाऽद्य ॥ त्वमेव भगवान् ईशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः । मूर्गामूर्तं परं बीजमतः पाहि सनातन ॥यस्मात्त्वं लोकपालानां पाहि त्वं विश्वमन्दिरम् । रुद्रादिसवस्नां च ततः शान्ति मयच्छ मे ॥ यस्मा- /
दश्-यममरैर्नारीभिश्च शिरस्तव । तस्मान्मासुद्धराशेपदुःखसंसार्णै

अथ मन्दरस्य । यस्माचैत्रस्थेन त्वं भद्राऽक्वप्रमुखेन च । क्योभसे मन्दर क्षिप्रमुखं तुष्टिकरो भव ॥

अय गन्धमादनस्य।यस्माच्च्डामणिर्जम्बूद्दीपे त्वं गन्धमादन। गन्धर्ववनबोभावाँस्ततः कीर्त्तिर्देढाऽस्तु मे ॥

अथ विपुछस्य । यस्मास्त्रं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च । हिरण्मयाञ्चत्थिभिरास्तस्मात् पुष्टिर्दढाऽस्तु मे ॥

अथ सुपार्श्वस्य । उत्तरैः क्रुरुभिर्यस्माद सावित्रेण वनेन च। सुपार्श्व श्रोभसे निसमतः श्रीरसयास्तु मे ॥ ततः सर्वेर्जागरणे क्रते स्नानादि क्रत्वा कुण्डसभीपस्थकल्याजलैर्यजमानमभिषिञ्चेयुः। ततः कर्ता गृहीतकुमुमो मेरुं मदिसणीक्रस उपतिष्ठेत । मन्त्रास्तु, अत्रं ब्रह्म यतः मोक्तमन्त्रे माणाः मतिष्ठिताः। अन्नाज्ञवन्ति भुतानि जगदन्तेन वर्तते ॥ अन्नमेव यतो क्रह्मीरन्नमेव जनाईनः । धान्यपर्वतक्ष्मेण पाहि तस्मान्नमो नमः ॥ इत्युपस्थाय पुष्पा- ऽअलिं मासिप्य नमस्त्रस्य माङ्गुस्त उपवित्रयोदङ्गुसंसम्यो गुर्था-

दिभ्यः क्रमेण गिरीन दद्यात्। पयोगस्तु, अद्येखादि देश-कालकीर्त्तनान्ते अमुगोत्रायाऽमुकवेदायाऽमुकशाखाव्यायिने-Sप्तकदार्मणे गुरवेऽप्तरोगन्धर्वगणग्रुतविमानकरणकस्वर्लोकगमनाः नन्तरसाग्रमन्वन्तरश्चताऽवधिसमयदेवळोकनिवासोत्तरभूळोकराज-त्वपाप्तिकामः, इमं धान्यमेरुं सौवर्णमन्दराद्रिं दक्षपञ्चकसौवर्ण-ब्रह्मविष्णुरुद्रार्कपतिमायुक्तमुक्ताहीरकादिभूषितरौष्यमयश्रुङ्गचतु-ष्कशोभितं. रूप्यमयेन्द्रादिलोकपालपतिमं रौप्यमयनितम्बान्वित-मिश्चवंशाष्टतकन्दरं दिक्चतुष्टयस्थापितरौष्यपात्रस्थितप्रतोदक-पस्तवणं दिक्चतुष्टयस्थापिनग्रक्रपीतकर्चुरस्क्तवस्त्राम्बुदधरं नाना-फलमाल्यावितानाद्युपकरणताहितं तुभ्यं संपददे न ममेति तद्धस्ते दद्यात । स च, ॐ खस्तीति मतिगृह्य स्वजाखीयां कामस्तुति पठेत । ततः कृतैतहानमातिष्ठार्थम इमा गास्तुभ्यं दक्षिणा-त्वेन संपद्दे न ममेति दद्याद । तत्र चतुर्विश्वतिपक्षे अष्टी गा गुरवे, चतस्रश्चतस्रश्च ऋत्विग्भ्यः । दशपक्षे पड् गुरवे, एकैकाम् ऋत्विग्भ्यः । अष्टसप्तपक्षयोश्चतस्रास्तिस्रो वा गुरवे, एकैकाम । ऋत्विग्भ्यः । पञ्चपक्षे सर्वेभ्य एकैकाम् । एकपक्षे गुरव एव तां कपिलाम्, ऋत्तिग्रभ्यः सुवर्णामिति मदनादयः । एवं पूर्वस्थितं मन्दराख्यविष्कम्मगिरियवपयंसौवर्णनानाफलभद्रकदम्बतन्मूलस्थ-सौवर्णकामदेवप्रतिममरूर्णोदसरःस्थानीयक्षीरपृरितरौष्यपात्ररौष्य-घटितचैत्ररथत्रनवस्त्रनानाफलादियुतं तुभ्यम् ऋत्विजे संपद्दे न ममेति दद्यात । इमं दक्षिणास्थितगोधूममयं गन्धमादनं विष्कम्भ-पर्वतं सौवर्णजम्बृदक्षमृरुस्थितसौवर्णकुवेरपतिमाऽन्वितं मानस-सरःस्थानीयष्रुतपूरितरौष्यपात्रं रूप्यचटितगन्धर्ववनवस्त्रनानाफलः माल्यवितानादियुतं तुभ्यमिति दद्यात । इमं पश्चिमस्थितं तिळम्यं विपुछारूयं विष्कम्भपर्वतं सौवर्णापष्पछतन्मृळस्थितसौवर्णहंस-

प्रतिमान्वितं सितोदसरःस्थानीयद्धिपूरितरःजतपात्रं रजतघदितवैभ्राजवनत्रस्रफलादियुतं तुभ्यमिति द्याद । इमम् उत्तरस्थितं
माषमयं मुपार्थ्वारुपं विष्कम्भपर्वतं हैमवटतन्मूलस्थतहेमधेनुपतिमायुतं भद्रसरःस्थानीयमधुपूरितरौष्यपात्रं रौष्यघटितसावित्रवनवस्वफलादियुतं तुभ्यमिति द्याद । लवणादिदानपक्षे प्रयोगे धान्यपदस्थाने लवणादिपदं प्रक्षेष्यम् । तत्तत्फलानि तत्र तत्र वह्यामः । आचार्याद्यनुजयाऽन्यभ्योऽपि दानपक्षे युष्पभ्यमन्यभ्यश्च
ब्राह्मणेभ्यः सम्पदद इति द्याद । ततो ग्रहवेद्यां यजमानो देवताः सम्पृज्य नमस्कुर्याद । गुरुस्तान् विसर्जयेद । यजमानस्तु
मण्डपादिग्रहमतिमादि गुरवे पातपाद्य ब्राह्मणान् सम्भोज्य भूयसी
दक्षिणां दत्वा, यस्य सम्यत्निति प्रविपाद्य विष्वादित्वा सुद्धन्मित्रादियुतो मुझीतिति ॥ इति धान्यादिमेस्साधारणप्रयोगः ॥

अथ छत्रणाच छः पांचे । उत्तमः पोड शहोणः कर्त्तच्यो छत्रणा-ऽच छः । मध्यमः स्यात्तद्धें न चतुर्भिरधमः स्मृतः ॥ वित्तहीनो यथाशत्त्या द्रोणाद्ध्वं तु कारयेत । चतुर्थाशेन विष्कम्भपर्वतात् कारयेत् पृथक् ॥ अत्र पृथिगत्युक्ते प्रत्यकं मेरुद्रन्यचतुर्थाशपरि-मितेन छत्रणेन विष्कम्भपर्वतचतुष्कमः । अयं च न्यायः सर्व-विष्कम्भिगिरिषु इति मद्नः। युक्तं तु चतुर्थाशनेति । विधेयचतुर्था-श्चातेकत्वविवक्षयेकस्येव चतुर्थाशेन चत्वारोऽपि विष्कम्भाच छाः कार्याः । पृथक्ता तु गिरिगताऽन्यते, न चतुर्थाशगता विधीयते इति । विथानं पूर्वत्रत कुर्याद् ब्रह्मादीनां च सर्वदा अत्रद्धेमतस्त्रम् सर्वाष्ठोकपाछान्त्रवेशयेत् ॥ सरांति कामदेवादींस्तद्भचात्र निवेश-येत् ॥ पूर्वत्रद् धान्याच छत्रत् ॥ सौभाग्यससम्भतो यतोऽयं छत्रणो रसः । तदात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नमो नमः॥ यस्मा- दत्र स्साः सर्वे नोत्कटा छवणं विना । प्रियं च शिवयोर्निसं तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे ॥ विष्णुदेहसमुद्भृतं यस्मादारोग्यवर्द्धन-स । तस्मात पर्वतक्ष्पेण पाहि संसारसागरात ॥ अनेन विधिना यस्तु दद्याछ्ठवणपर्वतम् । उमाछोके बसेत्र कल्पं ततो याति परां गतिष्र॥कल्पपर्यन्तमुमाछोकमाप्तिपूर्वकं कल्पाविष्ठमाछोकनिवास-समनन्तरपर्मगतिकाम इति मदनः । तन्मूछं तु चिन्त्यम् ॥

अय गुडपर्वतः ॥ पाझे, अथातः सम्मवस्यामि गुडपर्वतमुत्तम् । यस्मदानान्नरः स्वर्ग मामोति सुरपूजितम् ॥ उत्तमो दक्षभिर्मारेर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः । व्रिभिर्भारेः कानेष्ठः स्यात्तदर्द्धेनास्यवित्तवात् ॥ भारः पल्लसहस्रद्धयम् । तुला स्त्रियां पल्यतं भारः
स्याद्विश्वतिस्तुलेखमरः । तद्भदामन्त्रणं पूजां हेमद्यससुरार्चनम् ।
विष्कम्भपर्वतास्त्रद्धस्तरांसि वनदेवताः ॥ होमं जागरणं तद्बल्लोकपालाभिवासनम् । धान्यपर्वतवत् कुर्गादिमं मन्त्रसुदीरयेत् ॥ यथा
देवेषु विश्वात्मा प्रवर्ध जनार्दनः । सामवेदस्तु वेदानां महादेवसत्त योगिनाम् ॥ प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेश्वरसो मतः ॥ मम तस्मात् परां लक्ष्मीं
ददस्य गुडपर्वत । यस्मात् सोभाग्यदापिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत ।
निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा ॥ अनेन विधिना
यस्तु दद्याद् गुडमयं गिरिम् । पूज्यमानः स गन्भवेंगोरीलोके
महीयते॥पुनः कल्पशतान्ते तु समुद्रीपाथिपो भवेत । आयुरारोग्यसम्पन्नः श्रवृभिश्चाऽपराजितः ॥

अत्र सकळपापक्षयोत्तरंगन्धर्वपूज्यमानत्वपूर्वककल्पशताऽविधिगौरी-ळोकपाप्यनन्तरं सम्पन्नापराजितायुरारोग्यपूर्वकसप्तद्वीपाधिपतित्व-काम ईत्र्वरपीतिकामो वेति सङ्कल्पे विशेषोऽन्यत् सर्व पूर्ववत् ॥ अथं मुवर्णाचल्रः ॥ पाग्ने, अथं पापहरं वस्ये मुवर्णाचल्रमु- स्तमम् । यस्य प्रसादाद्धवनं वैरिश्चं याति मानवः ॥ उत्तमः पछसाहस्रो मध्यमः पञ्चाभः वातैः । तद्धेनाधमस्तद्भद्दर्वित्तांऽपि
शक्तितः ॥ दद्यादेकपळाद्ध्वं यथाशस्त्या विमत्सरः । धान्यपर्वतवत सर्वं विद्ध्याद् राजसत्तम । विष्कम्मश्रौळाँस्वद्भ ऋत्विग्भ्यः
प्रतिपादयेव ॥ नमस्ते ब्रह्मगर्भाय ब्रह्मवीजाय वे नमः । यस्मादनन्तफळदस्तस्मात् पाहि शिळोच्चय ॥ यस्मादग्नेरपयं त्वं यस्मावेजो जगत्पतेः । हेमपर्वतद्भपेण तस्मात् पाहि नगोत्तम ॥ अनेन
विधिना यस्तु दद्यात कनकपर्वतम् । स्र याति परमं ब्रह्म छोकमानन्दकारकम् ॥ तत्र करपश्चतं तिष्ठेत्ततो याति परां गातिम् ॥
अत्र गुर्वादिभ्यो मेर्नादिदानमरुपद्गच्यविषयम् । बहुद्रस्ये तु तुळापुरुषवदद्धं चतुर्यं वांशं गुर्वेऽन्यत्तु तदाङ्गयाऽन्येभ्योऽपि विशिष्ठेभ्यो देयमिति हेमाद्रिः । अत्र सकळपापक्षयोत्तरशतकल्याऽविध आनन्दकारकब्रह्मछोकभोगानन्तरपरमगतिकाम इति दानवाक्यम्॥

अथ तिलाचलः ॥ पाग्ने, उत्तमो दशिमद्रोणेः पश्चिमप्रध्यमो मतः । त्रिभः कितिष्ठो राजेन्द्र तिल्ह्योलः मकीितः ॥
पूर्ववचापरं सर्व दशिवष्कम्मकादिकम् । दानमन्त्रान् मवस्यामि
पथा च मुनिपुङ्गव ॥ यस्मान्मपुत्रने विष्णोद्देहस्वेदसमुद्भवाः ।
तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छं नो भवत्विह् ॥ हत्यकत्येषु यस्माच्च तिल्हेरेवाभिभक्षणम् । भवादुद्धरशैलेन्द्र तिल्लाचल नमोऽस्तु
ते ॥ इत्यामन्त्रय च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् । स वैष्णवं पदं
याति पुतरादृत्तिदुर्लभम् ॥ दीर्वायुष्यमवाभोति पुत्रं पौत्रं च
मानवः।पिनृभिर्देवगन्धवैः पृत्त्यमानो दिवं व्रजेद्य।मकल्यापक्षयदीर्घाऽऽयुष्यपुत्रपौत्रसमन्त्रितानन्तर्पिनृदेवगन्धवपूर्वकपूष्ट्यमानत्वपूर्वकष्ठलोकगमनसमनन्तराऽक्षयवैष्णवपद्माप्तिकाम इति दानवावयम् ॥

अथार्द्धोद्यवतं तिल्प्पर्वतदानम् ॥ स्कान्दे, पूर्वाह्ने सङ्गमे स्नात्वा श्राचिर्भूत्वा समाहितः । सर्वपापविश्वदसर्थे नियमस्यो भवेत्रमः ॥ नियममन्त्रस्तु । त्रिदेवसात्रतं देवाः करिष्ये सान्ति-मुक्तिदाः । भवन्तु सम्बन्धो मेऽद्य त्रयो देवास्त्रयोऽप्रय इति ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णपळलंख्यया । मतिमास्तु मकर्त्तन्यास्तद-र्देन द्विजोत्तमाः ॥ साग्रं शतत्रयं शम्योद्वीणानां तिळपर्वतः । ब्रह्मविष्णुशिवपीरंपै दातन्यं तु गर्वा त्रयम् ॥ हिरण्यभूमिघान्या-दिदानं विभवसारतः ॥ मध्यादे तु नरः स्नात्वा श्रुचिर्भृत्वा समाहितः । तिल्पर्वतमध्यस्यं प्रजयेदेवतात्रयम् ॥ आद्धौ ब्रह्म-पूजा । नमो विश्वसूजे तुभ्यं सत्याय परमात्मने । देवाय देवपतये यज्ञानां पतये नमः॥ॐब्रह्मणे नमः पादौ, हिर्ण्यगर्भाय ऊरुश्या-म् । जङ्घाभ्यां परमात्मने । वेधसे इति गुह्ये । पद्मोद्भवाय बस्ती । इंसत्राहनाय कटिदेशे । शतानन्दाय वक्षांस । सावित्रपतये बाहुष्। ऋग्वेदाय नमः पूर्वे वक्के । यज्ञवेदाय दक्षिणे । सामवेदाय पश्चिमे । अथर्ववेदाय उत्तरे । चतुर्वकाय शिरसि । इंसाय नमः । कपालाय नमः। ततो लोकपालादिपूजनं स्वमन्त्रैः। हिरण्यगर्भ पुरुष प्रधानन्यक्तरूप यः * प्रसादस्रमुखो भूत्वा पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते ॥ अनन्ताय नमः पादौ । विश्वह्रपाय **ऊरुभ्याम् । मुकुन्दाय जानुभ्याम् । गोविन्दाय जङ्घाभ्याम् ।** गुह्ये प्रद्युम्नदेवाय । पद्मनाभाय नाभौ । लम्बोदराय उदरे। वक्षांसि कौस्तुभवक्षसे । चतुर्भुजाय बाहुषु । बदने विश्वतोमुखाय । श्वतसहस्रविरसे मौलौ । आदिसचन्द्रनयन दिग्वाहो दैससूदन 🏶 पूजां दत्तां मया भत्तया गृहाण करुणापर, इति विष्णुपार्थनम् । महेक्वर महेकान नमस्ते त्रिपुरान्तक । जीमृतकेकाय नमो नमस्ते ट्रवभध्वज् ॥ ईशानाय नमः पादौ जङ्घाभ्यां चन्द्रशेखरम्। जातुः भ्यां पश्चपतिर्देवश्चोरुभ्यां बाङ्करः स्मृतः ॥ ज्याकान्ताय गुह्ये तु नाभौ वै नीललोहितः । उदरे क्रांचवासाध्य वस्त्रे नागोपवीतिने ॥ अन्धकारे प्रसन्नात्मा नमो लोकान्तकाय च । पूजां दत्तां मया भक्तया गृहाण दृषभव्वजेति, महेशपार्थना । इति पूजाक्रमः प्रोक्तो मन्त्रेरेतैः पयत्रतः * आचार्यं पूजपेद्धत्तया पूजाछङ्कारभूषणैः ॥ हस्तमात्रा कर्णमात्रा पीठं छत्रं कमण्डलः । व्वेतवस्त्रयुगं देयं ब्रह्मणे सर्वमूर्त्तये ॥ पीतवस्त्रयुगं विष्णोर्लोहितं बाङ्करस्य तु । पञ्चामृतेन स्नपनं पूजनं कुसुमैः स्वकैः ॥ कमछैस्तुलसीपत्रैर्बिल्वपत्रै-रखण्डितैः । तत्कालसम्मवैदिन्यैः पूज्या देवा यथाक्रमम् ॥ यथा-शक्तया पकर्त्तव्यं व्रतमेतत् सुद्छिमम् । जीवितं माणिनामेतद्नित्यं निश्चितं यतः ॥ अथ त्रतस्य करणविधानं श्रूण तत्त्वतः । देवता-त्रयमुहित्य शास्त्रहष्ट्रेन कर्मणा ॥ प्रजापतये विकाकर्मणे रुद्राय नमो नमः । इत्यनेनैव मन्त्रेण विद्व संस्थाप्य भक्तितः । ततो ब्रह्म-विष्णुशिवानां नाममन्त्रेणाष्ट्रोत्तरसहस्रमष्ट्रात्तरशतं वा तिलहोमः । अथ होमावसाने तु गां च दद्यात पर्याखनीम् । हेमशृङ्गीं रूप्यखरां घण्टाभरणभूषिताम् ॥ ताम्रपृष्ठां रूप्यखुरां सर्वोपस्करसंयुताम् । सदाक्षणां शुभां पुण्यां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ तेन दत्तं इतं जप्तिमिष्टं यज्ञे सहस्रथा । कुतकृत्यो भवेद्विमो व्रतस्यास्य प्रभावत इत्यद्धींदये तिलाचलदानम् ॥

अथ कार्पासाचलः ॥ पाञ्चे, कार्पासपर्वतस्तद्वद्विंगद्वारौरिहो-दितः । दशभिर्मध्यमः मोक्तः कानेष्ठः पञ्चभिः स्मृतः ॥ भारेणा-ऽल्पथनो दद्याद् वित्तशाट्यविवर्षितः । धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य सुनिसत्तम ॥ मभातायां तु शर्वय्यां दद्यादिदसुदीरयन् ॥ त्वभेत्रावरणं यस्माङ्कोकानामिह सर्वदा । कार्पासाचल तस्मास्वम् अयौपथ्वंसनो भव ॥ एवं कार्पासबौलेन्द्रं यो दद्यात् पर्वसुन्निश्वौ । रुद्रकोके बसेत् करुपं ततो राजा भूबेदिह ॥ सकळपापक्षयपूर्वक-करपाऽवधिरुद्रळोकिनिवासानन्तरमुळोकराजत्वकाम इति दान-बाक्यम् ॥

अथ घृताचलः ॥ पाद्मे, अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमतु-त्तमम् । तेजोमयमिदं दिव्यं महापातकनाज्ञनम् । विशसा घृत-कुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः । मध्यमस्तु तदर्द्धेन तदर्द्धेनाधमः स्मृतः ॥ अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विघानतः ॥ कुम्भः पळसहस्रात्मकः परिमाणविशेषः । विष्कम्भपर्वतास्तद्वचतुर्भागेन करपयेत् । शास्त्रितन्दुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् ॥ अत्र तु कुम्भः पात्ररूप एव । स च मायो घृतस्य द्रवलेन तद्धारणयोग्य-परिमाणः । तदुपरि च तन्दुल्यात्रम् । एवं विष्कम्भाचलेष्विप । एतद्भिप्रायेणेत पात्राणीति वहुत्रचनम् । कारयेत संहतान सर्वान यथाभोभं विधानतः * वेष्टयेच्छुक्तनासोभिरिक्षदण्डफलादिकैः ॥ धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते । अधिवासं च कुर्वीत तद्रद्धोमं सुरार्चनषः॥ प्रभातायां तु ज्ञर्वर्षागुरवे विनिवेद्येतः॥ घृताऽचछ-मिति बोषः । विष्कम्भपर्वताँस्तद्वद्दत्विग्भ्यः शान्तमानसः॥प्रयोगाद् वृतसुत्पन्नं यस्माद् अमृततेजसः । तस्माद्घृताचिविश्वात्मा भीय-तामत्र शङ्करः ॥ यच तेजोमयं ब्रह्म घृते तच व्यवस्थितम् । घृत-पर्वतक्ष्पेण तस्मानः पाहि भुषर ॥ अनेन विधिना दद्याद् घृता-Sचलमनुत्तमम् । महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति बाङ्करम्॥ ईस-सारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना । विमानेनार्कवर्णेन सिद्ध-विद्याधराचितः ॥ विचरेत् पितृभिः सार्द्धं यावदाभृतसंष्ठवम् ॥ अत्र सकलपातकनाशनपूर्वकहंससारसयुक्तकिङ्किणीजालमाल्यर्क-वर्णविमानकरणकशङ्करछोकागमनपूर्वक—सिद्धविद्याधरार्चितत्ववि-विष्टिपितृसहितभूतसंहाराऽविधकविचरणकाम इति दानवाक्यम् ॥

अय रत्नाचलः ॥ पाद्रे, अयातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलपतु-चमम् । मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादिहोत्तमः । मध्यमः पञ्च-शतिकश्चिशता चाधमः स्मृतः। चतुर्थाशेन विष्कम्मर्पवताः स्युः समन्ततः ॥ पूर्वेण बज्जगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः ॥ वज्जगोमेदैरि-त्यनन्तरं मन्दर इति दोषः । पद्मरागयुतैः कार्यो विद्वद्भिर्मन्य-मादनः । वैहूर्यविदूषीःपश्चात संमिश्रो विपुठाचछः ॥ पद्मरागैः ससौपर्णेहत्तरेण तु विन्यसेत् ॥ सुपार्क्सिति क्षेषः। वज्रगोमेदैः सम-संख्यः । समं स्यादश्चातित्वादिति न्यायातः । एवसुत्तरत्रापि श्ने-षम् । घान्यपर्वतवच्छेवमत्रापि परिकल्पते । तद्वदावाहनं कुर्पाद् ग्रहदेवाँश्च काञ्चनान ॥ पूजपेत पुष्पपानीयैः प्रभाते च विसर्जनम् ॥ दानानन्तरमिति बोषः । पूर्वबद्धरुऋत्विग्म्य इमान्मन्त्रानुदीरयेत ॥ गुरुऋत्वग्भ्यो दानायेति शेषः । यथा देवगणाः सर्वे रत्तेष्वेत्र च्यवस्थिताः । त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचछ । यस्मा-द्रत्नमसादेन दृष्टि पद्मुरुते हरिः । महारत्नप्रसादेन तस्पान्नः पाहि सर्वतः ॥ अत्राप्युपक्रमादारभ्य विसर्ज्ञनादीनां व्युक्तमोक्ताविष चान्यपत्रतवदातिदेशिकः क्रमो क्षेयः । अनेन विधिना यस्तु द्याद्रत्नमहागिरिम् । स याति वैष्णवं लोकममरेव्यरपूजितः ॥ याव-त्कल्पक्षतं साम्रं वसेदिह नराधिप । रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपा-Sिंघपो भवेत ॥ ब्रह्महत्यादिकं यत् स्यादिहात्रामुत्र वा कृतम् । तत्त्वं नाश्चमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ अत्रानेकजन्मकृतब्रह्म-इसादिपापक्षयोत्तरममरेक्त्ररपूजितत्वपूर्वकसाग्रकल्पद्मताऽविच्छन्न-विष्णुळोकनिवासानन्तररूपारोग्यगुणोपेतसप्तद्वीपाधिपखकाम इति दानवाक्यम् ॥

अय रौष्याचलः॥पाद्ये । दशभिः पलसाहस्रेरुतमो राजता-ऽचलः । पञ्जभिर्मध्यमः मोक्तस्तदर्देनाधमः स्मृतः ॥ अशक्तौ विकानभपर्वतास्तद्वस्ति सदा। विकानभपर्वतास्तद्वस्तियांकोन करण्येत ॥ पूर्ववद्वाजतान कुर्यान्मन्दरादीन विधानतः। कल्यौत-मयांस्तद्वल्लोकेकानचियेद बुधः ॥ कल्यौतं काञ्चनमः। ब्रह्मविष्णु-क्षिवान कुर्याचितम्बोऽत्र हिरण्ययः। राजतं स्याचदन्येषां काञ्चनं स्याचदन्येषां काञ्चनं स्याचदन्येषां काञ्चनं स्याचदन्येषां काञ्चनं स्याचदन्त्र ते ॥ क्षेषं च पूर्ववत कुर्याद्धोमजागरणादिकमः। द्या-चद्वत प्रभाते तु गुरवे रीष्यपर्वतम् ॥ विष्कन्मजैलान ऋत्विग्म्यः एज्य वस्त्रविभूषणेः। इसं मन्त्रं पठन द्यादर्भपाणित्रिमत्सरः॥ पितृणां वस्त्रभूषणेः। इसं मन्त्रं पठन द्यादर्भपाणित्रिमत्सरः॥ पितृणां वस्त्रभूषणेः। इस्यं निवेद्य यो द्याद्वजताचलमुत्तममः भवां द्वासहस्त्रस्य फलं प्रामोति मानवः॥ सोमलोके स गन्धवैंः किचराप्तरसाङ्गलेः।पूज्यमानो वसेद्धीमान यावदाभृतसम्स्रवम् ॥ अत्र सकल्यापक्षयद्वसादस्रगोदानफलावाप्तिपूर्वकगन्धविक्षरा-ऽप्तरोगणपूज्यमानत्वविज्ञिष्ट-यावदाभृतसम्स्रवसोमलोकिनिवास-काम इति दानवाक्यम्॥

अथ शर्कराचलः ॥ पाश्च । अथातः सम्मवस्थामि शर्कराचलसुत्तमम् ॥ यस्य मसादाद्विष्ण्वर्करुद्वास्तुष्यन्ति सर्वदा ॥ अष्टभिः
शर्कराभारेरुत्तमः स्यान्महाचलः । चतुर्भिर्मध्यमस्तद्वद्वाराभ्यामयमः स्मृतः ॥ भारेण वार्द्धभारेण कुर्याद्यः स्वर्णवित्तवात् ।
विष्कम्भपर्वतात् कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः ॥ धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्याऽमरसंयुतम् । मेरोरुपि तद्वच स्थाप्य हेमतरुत्रयम् ॥
मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः करुपपाद्यः । एतद्वस्त्रत्रयं मूर्धिन
सर्वेष्विप निवेशयेत् ॥ हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः ।
निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ॥ मन्दरे कामदेवस्तु मसगक्कः सदा भवेत् । गन्यमादनश्चक्ते च धनदः स्यादुदङ्गुखः ॥
माङ्गुस्तो वेदमुर्तिश्च हंसः स्याद्विपुलाचले । हैमी सुपावर्ने सुर्भिन

र्दक्षिणाभिमुखी भवेत ॥ घान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनमखादिकम् । कुत्वाऽथ गुरवे दद्यान्मध्यस्थं पर्वतोत्तमम् ॥ ऋत्विग्भ्यश्चतुरः श्रेलानिमान्मन्त्रानुदीरयेत् ॥ सौभाग्याऽमृतसारोऽयं परमः शर्कः-राचलः । तत्समानन्दकारी त्वं भव देशेलन्द्र सर्वदा ॥ अमृतं पिव-तां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः । देवानां तत्समुद्यं पाहि नः शर्कराचल ॥ मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः। तन्मयो-Sिस महाबैल पाहि संसारसागरात ॥ यो दद्यान्छर्कराबैलमनेन विधिना नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति शिवमन्दिरम् ॥ चन्द्रा-SSदिसमतीकाश्चमधिरुह्यानुजीविभिः।सहेमयानमातिष्ठेत्ततो विष्णु-पुरं व्रजेद ॥ ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाऽधिपो भवेद । आयु-रारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् । भोजनं शक्तितः कुर्यात्सर्व-द्वीलेष्ट्रमस्सरः । सर्वत्राक्षीरल्डवणमक्तीयात्तदतुद्वया ॥ भोजनं ब्राह्मणानाम् । सर्वत्र सर्वशैलेषु । दानात् पूर्वेद्यः कृतोपनासो दानानन्तरं गुर्वाद्यनुज्ञया श्लीरल्दणमक्तीयादिसर्थः। सर्वेत्रोपस्क-रान सर्वान प्रापयेद् ब्राह्मणालयम् 🗱 ॥ पञ्चेदिमानल्पघनोऽपि भक्तया स्मरेन्मनुष्वेरपि दीयमानम् * श्रृणोति भक्तयाऽथ मर्ति करोति निष्कल्मवः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥ दुःस्वमं शमनसुपैति पठ्यमाने शैलेन्द्रे भवभयभेदने मनुष्यः । यः कुर्यातः किमु मुनि-पुङ्गवेह सम्यक्सन्नात्मा सकलगिरीन्द्रसम्पदानम् ॥ सन्नात्मा **मसन्नचित्रः। अत्र सकलदुरितक्षयानन्तरंकल्प**शतात्रधिकविष्णुलोक-निवासानन्तरसप्तद्वीपाधिपस्रोत्तरजन्मायुतत्रयाऽविञ्जिनायुरारोग्य-काम इति दानवाक्यम् ॥

अथ शिखरदानम् ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, श्रृणु राजन प्रवस्या-मि शिखराणां यथाक्रमम् । दानं देयं यथा येन तच्छ्रणुष्व सना-तनम् ॥ माध्युक्रतृतीयायां मार्गशिषस्य वा पुनः । तृतीया वाध वैज्ञाखें शुक्का या रोहिणीयुता ॥ मौष्ठपद्यां तृतीयायां विशेषेण तु भागव । गुडेश्ववस्त्रलवणधान्यकाजाजिशकराः॥ सर्जूरतन्द्लद्राक्षा-क्षीद्रैर्मछयजेन च । फलैर्मनोहरै रम्यैः शिखराणि प्रदापयेत ॥ तेषामन्यतमं द्याद्यथाश्रद्धं विधानतः। आत्मप्रमाणं कुर्वीत पाद्ञा-Sभ्यधिकं शुभम् ॥ भुवि गोमयिल्रप्तायामिश्चपत्राणि संस्तरेत । ततः कुर्वात शिखरे गौरीस्थानमनुत्तमम् ॥ द्विहस्तमूछं कर्त्तव्यं इस्तमात्रं विरस्तथा ॥ भित्तिरिक्षुद्र छैः कार्या वेष्ट्रयेद्रक्तवाससा । दानद्रव्येण तन्मध्यं पूर्येद् भृगुनन्दन ॥ इक्षुपत्रकटे गौरीं तस्यो-परि निवेशयेत । चतुर्भुजां हेममयीं पूजयेत कुङ्कुमेन तु॥ गौरी-छक्षणमुक्तं देवीपुराणे, गौरीं काङ्केन्द्रवर्णाभां कार्वरीका-निषेत्रिता-म् । दत्तपद्मासनां रम्पां साक्षस्रत्रकमण्डलुम् ॥ वरदोद्यतह्रपाट्यां सर्वमाल्यफळात्रयाम् ॥ वरदोद्यतेति वरदाभयकरामित्यर्थः । वेष्ट-येत सक्ष्मवस्त्रेण देवी शिखरमेव च । अष्टाङ्गं पूजवेद्गीरीं मन्त्रै-रेतेस्त्र भक्तितः ॥ नमो भवान्यै पादौ तु कामिन्यै जानुनी नमः। बामदेव्ये तथा चोक नाभि चैव जगत्मिये ॥ आनन्दाये तु हृद्यं नन्दायै पूजयेत स्तनौ । सुभद्रायै मुखं पूज्यं छितायै नमः श्विरः ॥ एवं पूज्य महादेवीं शिखरानभिगन्त्रयेत ॥ यस्माश्चित्रासः पार्वत्याः शिखर त्वं छुरैर्द्यतः । तथा निवासः सर्वेषां तस्मान्मां त्राहि भक्तितः ॥ तस्मान्मां पाहि भगवस्तवं गौरीशिखरः सदा । एवमायन्त्रय शिखरं तृतीयायां तद्यतः । ततः स्नात्वा प्रभाते तु द्यान्मन्त्रेण भक्तितः ॥ यस्मार्नः सर्वभूतानासुपारेष्टादवस्थितः । तस्मानमां पाहि भगवन् त्वं गौरीशिखरः सदा ॥ एवमामन्त्र्य शिखरं तृतीयायां तदग्रतः । तस्मान्छिवः पीयतां मे तव दानेन सर्वदा ॥ अर्द्धमागं चतुर्थ वा पश्चमं चाऽपि वै गुरोः । दद्याच्छेषं तु बन्धूनां शिष्टानां स्वजनस्य च ॥ अनुजीविनां च भृतानां दुर्गतानां च धर्मतः ॥ एवं दत्वा तु शिखरं गौर्या भुजीतवाग्यतः।
संमुक्तकेशः सम्प्राप्य क्षीरं घृतमथाऽपि ॥ विधिनाऽनेन यो
दद्याद् गौर्याः शिखरमुत्तमम् । स वसेद्भवने देन्याः कल्पकोटि-भातत्वयम् ॥ पुण्यक्षयादिहायातो जायते पृथिवीपतिः । अनेन विधिना देयं विधिहीनं न कारयेत्॥विधिहीनं कृतं सर्वं तत्रदातुः फलं भवेत् ॥

अथ प्रयोगः । यजमानो माघशुक्रतृतीयाद्युक्तकाले पूर्वीक्के गणेशपूजा-स्वास्तवाचन-मातृकावसोद्धीरापूजा--नान्दीश्राद्धानि करिष्यमाणशिखरदानाङ्गतया करिष्य इति सङ्कल्प्य तानि कृत्वा मासपक्षाचुक्त्वा दौर्भाग्यदौर्भसाभावपूर्वककलपकोटिशताविक्छन-गौरीभवननिवासानन्तरपृथिवीपतित्वकामः क्वो गुडशिखरदानमहं करिष्य इति सङ्करूप्य तत्र पूर्वीक्तप्रकारेण सऋत्विजमाचार्य वृत्वा सम्पूज्य लिप्तायां भूगाविश्वपत्राणि संसीर्थ मुले द्विहस्तवि-स्तारसुपरिहस्तमात्रविस्तारं चतुरस्रं स्वशरीरार्द्धप्रमाणतः पादेशा-धिकमुचिमिश्चदलमयं कुसूलं कृत्वा तदभ्यन्तरे रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गुडादिदेयद्रच्येणापूर्व्योपरीश्चपत्रकटमास्तीर्व्य तत्र क्षामादिवस्त्रो-परि खण्डेन्द्वर्णाभां चन्द्रमौठि पद्मासनाम् अक्षम्रुजकमण्डलुषर-वराभयकरां गौरीं हैमीं सिशखरां सूक्ष्मवस्त्रणावेष्टय कुङ्कुमादिना सम्पूज्य । भवान्य नमः पादौ । कामिन्ये जातुनी । कामदेव्ये ऊरू। जगच्छियै नमो नाभिम् । आनन्दायै हृदयम् । नन्दायै स्तनौ । सुभद्रायै सुखप । छलितायै ब्रिएः सम्पूज्य पुष्पाझिल-मादाय शिखरं त्रिःपदक्षिणं कृत्वा । यस्मानिनासः पार्वसाः शिखर त्वं सुरैर्द्धतः । तस्मान्मां पाहि भगवन् त्वं गौरीशिखरः सदेखनुमन्त्र्य पुष्पाञ्चलि मक्षिप्य नमस्क्रुस जागरणं कुर्याद । ततः प्रभाते कृतनित्यक्रियः शिखरपश्चिमभागम् उपवित्रय मास- अथ भद्रनिधिदानम् ॥ विद्विपुराणे, पुण्यां तिथि माप्य तु पौर्णमासीं तथोपरागे शशिसूर्ययोवी । चतुर्युगादिष्त्रयनद्वये वा प्रबोधने प्रस्वपनेऽथ विष्णोः । कुर्यादथौदुम्बरमेककुम्मं हिरण्य-मानेन यथास्व्यात्तया ॥ हिरण्यमानेनान्तःमक्षेप्तव्यभारादिपित-सुत्रर्णरत्नादिना यथा कुम्भः पूर्णः स्यादिसर्थः। तथाऽपिधानं च मुराजतं स्याद्धिरण्यभारेण तु पुरयेत्तत् * तद्धितोऽर्द्धेन तद्धितो वा स्वशक्तितः स्वर्णपछैः शतेन ॥ तद्र्धमर्द्धेन तु वित्तशक्त्या पळत्रयादृर्ध्वपि पकुर्याद । तत्ताम्रभाण्डे कनकं निधाय सवज-नीलोत्पलपग्ररागम् ॥ समुक्तवैद्धूर्यसविद्धुमं च तद्राजतं पात्रमधो-सुखं स्वात् ॥ तद्राजतं पूर्वोक्तं विधानपात्रम् । एवं तु तं भद्रनिधि स विद्वान् कृत्वासने प्रावरणोपयुक्ते * प्रावरणमुत्तरच्छद्स्तेनोप-युक्ते सहिते । कुशोत्तरे द्र्पणचामराट्यं सपादुकोपानहच्छत्रयुक्त-म् * तत्श्रीमवस्त्रोत्तमयुग्मयुक्तं सम्पूजयेन्मनत्रवरेरपेतैः ॥ आदौत् पञ्चामृतमाप्य विष्णुं संस्नाप्य संसारहरं समर्च्ये । तथेश्वरं पावक-मेन हुत्वा आमन्त्रयेद्धद्रानिधि ततस्तम् ॥ श्रीखण्डकपूरसकुङ्कमेन पञ्चाक्षरं नाम श्रियः मलिख्य । नमसयोङ्कारयुतं च पात्रे तद् राजतेऽप्वेवमथार्चयेत्तम् ॥ मन्त्रः प्रयोगे वस्यते। एवं पूज्य विधा-नेन ततो विममधार्चयेत् । किरीट।ङ्गद्रनिष्काग्न्यकुण्डलाङ्गुलि- भूषणैः ॥ अळ्ळूत हरिं यद्वा पीताम्बर्ष्यं ततः । पूजपेद्च्युतं ध्यात्वा मन्त्रणानेन भिक्तमान् ॥ मन्त्रः प्रयोगे वस्पते । एवं पूज्य हरिं ध्यात्वा तं द्विजं विष्णुरूषिणयः । ततो भद्रतिर्धि दद्यान्मन्त्रणानेन मानवः ॥ स्वगोतोचारणेनादौ विष्णोनोम महास्मनः । यवद्रभितिळैः सार्द्रमुदकं सम्परियजेव ॥ पिनृसन्तारणार्थाय नित्यानन्द्विदृद्धये । सर्वाचीचिवनाजाय विष्णोदोनं मया छतमः । तद्वेन सरत्नेन धातुत्रययुतेन च । सह्रोमाम्बरयुक्तेन सादर्शन्याद्वेन च ॥ सासनेन सच्छत्रेण चामरोपानहेन च । सद्दानन्द्विधानेन मीयतां विष्णुरीक्वरः ॥ एवमुष्चार्य तं दद्याद् द्विजाय हरिष्णिणे । गोदानविधिना दद्याद्वेमसंख्यां न कीर्त्रयेव ॥ पर्वान्दितं कोटियुगायुतं फलं मगोपितं कल्यगणैर्न संज्ञयः । इतीदमाख्याय न कीर्त्तयेव सुधीर्निधानमध्ये निहितं च यद्भवेव ॥ एवं छते स्थान्मनुजः छतात्मा भवेन्न च स्थान्मरणं कदाचिव । प्रयाति विष्णोः पदमन्ययं तत् ज्ञिवात्मकानन्दमयं स साक्षात ॥ इति भद्रनिधिदानम् ॥

अथ मयोगः। पृत्रोंक्ते काले यजमानात्तिथ्याद्युद्धिष्य सकल-पापश्चयसर्विपतृतारणानन्द्विद्यद्विश्वात्मकानन्द्वमयपादुकोपानह-च्छवाणि चासाद्य पुरतो हरिहरी स्थापियता सम्पूज्य मागुत्तरे देशे स्वग्रह्यानुसारेण अभिस्थापनादि कर्म कृत्वा वृताक्तिलै-रष्टोत्तरशतादिसंख्यया हुत्वा, श्रीखण्डकुङ्कुमकपूरैः मणवादि श्रिये नम इति पञ्चाश्वरमन्त्रं निधिकुम्मे पिधाने च लिखित्वा तेनैव भद्रनिधिमुपचारैः सम्पूज्य मृहीतकुमुमाऽञ्जलिर्भद्रनिधि मद्क्षिणीक्रस्य,त्वयासमस्ताऽमरसिद्ध्यक्षविद्याधरन्द्रोरगिक्तमरैश्चक्र गन्धविद्याधरदानवेन्द्रैर्जुतं दतं विश्वमिदं नमस्ते॥ समम्रसंसार-करी त्वमेव विभोः सदानन्दमयी च माया। समस्तक्रस्याणवयः- समाधिहारिभिये भद्रनिषे नमस्ते इत्युपस्थाय पुष्पाझाल प्रक्षिप्य नमस्त्रत्वोदक्रमुखनाचार्यं किरीटाङ्गदनिष्काग्न्यकुण्डलाऽक्र्युलिन्मुषणपीतवासश्चन्दनादिभिः सम्पूर्य, तं विष्णुक्षिणं ध्यात्वा क्रुमुमणिः, भूदेवोऽसि विभो नित्यं नित्रानन्दमयो हरे। हर में दुष्कृतं कर्म कृपाकर नमोऽस्तु ते ॥ भूदेव भगवद्गम्य भवभङ्ग-करेश्वर । भवभृतिकरो जिष्णोः मभविष्णो नमोऽस्तु त इति । पुष्पाञ्जलिनाऽभ्यर्च्यं कुश्वयतिल्लञ्जलान्यादाय अमुक्तभाईं सकल्यपाक्षयसकलपितृसन्तारणनित्रानन्दविद्यद्विशिवात्मकानन्दमया-ऽच्ययविष्णुपदमाप्तिकामोऽमुकगोत्रायामुकश्वभेणऽमुकशाखाध्यायिने इमं भद्दनिधि सरत्नपात्रत्रयात्मकं सक्षीमाम्बरसुगम् आदर्शन्याद्वकोपानहच्छत्रासनोपकरणसहितं विष्णुक्षिणे तुभ्यमदं संपददे इति दद्याद । ततः सुवर्णं दिक्षणां दत्वा विमान सम्भोज्य सूय-सीं दिक्षणां दत्वा, यस्य सम्या, प्रमादाद कुर्वतां कर्मेत्युक्ता कर्मेश्वरार्णं कुर्योदिति मद्दनिधिपयोगः॥

अथानन्दिनिधिदानम् ॥ बिह्नपुराणे भगवद्वचो गरुडं पित । तस्मानिधानं श्रृणु सर्वदा ततः प्रभावदं निसफलपदं च। ऐक्वर्य-दं मोक्षदमक्षयं यद्धातुत्रयोद्भूतमनेकरत्नम् ॥ कारयेत्क्वांत्तिकान्ते वा माध्यं वा माध्येऽिष वा । अयने विषुवे वाऽिष मन्वादिषु सुगादिषु ॥ चन्द्रस्योंपराणे च स्वक्षत्त्यौदुम्बरं घटम् ॥ औदुम्बरं ताम्रमयम् । पिधानं राजतं तद्धन्मध्ये सौवर्णमुत्स्त्रजेत् ॥ सुवर्णमेव सौवर्णम् । नानारत्नवरैः पूर्णनानानामिभराष्ट्रतम् । हैमराजतताम्रोत्थैः सिरक्तरिष पूरितम्॥िरक्तं रीतिः। नानानामक्षताद्ध्वंमयुतादिष क्षित्तः। एकं नानापदं चहु मकारवाचि । परं महाराष्ट्रमिद्धन्नाणकवाचि । क्षत्त्या पलसहस्रेण क्षतेनार्द्वतेन वा । तद्द्धि- ऽर्द्धेन वा राजन्द पलाद्धीनं न कारयेत् ॥ कार्यं तिद्धं युतं हेम्ना

वित्तवाठ्यपकुर्वता॥उक्तनाणकातिरिक्तं पछाद्र्ध्वं पछसहस्राऽवाचै-शक्तया हेमापि क्षिपेदिति मदनः । राजतेनाऽय ताम्रेण रत्नैर्वा बस्नसंद्रतम् । राजतेन पिथानेन ताम्रेणाऽपि घटेन च ॥ नाना-धान्योपरि स्थाप्य कल्योक्तर्र्वयेत् पदैः । नानाधान्यान्यष्टादश-धान्यानि । पदानि मन्त्राः । पौराणिकं पुरस्कुस स्वयं वा तद-Sनुब्रया ॥ पौराणिको गुरुः । कृतिक्रयोऽग्निसान्निध्ये विष्णोरी-शस्य चान्द्रज्ञ । इमं समुचरेन्मन्त्रं कुशपाणिः पसन्त्रश्रीः ॥ मन्त्रः प्रयोगे क्षेयः । एवं पुज्य विधानेन निसानन्दनिधि सुधीः । स-सिद्धार्थकदुर्वाभिः सकुशाक्षतचन्दनैः ॥ सिद्धार्थकादिभिरानन्दनैः सिद्धार्थकादिभिरानन्दमेवं संपूज्येति योजना । तिललाजा-सुसंपूर्णं भूगाबुदकसुत्स्रजेतः । मन्त्रेणानेन विधिवतः कल्पोक्तेन खगोत्तम ॥ मन्त्रः प्रयोगे ह्रोयः । यद्याःश्रेयोऽभिष्टद्व्यर्थं माता-पित्रोस्तथात्मनः । पुराणन्यायभीमांसावेदवादिभ्य एव च ॥ एव-मुत्सुज्य उदकं विवेभ्यः प्रतिपादयेत् । संविभज्य यथाशास्त्रं न कश्चिद्पमानयेत्॥ महादानिमदं यस्मात्तस्मादेकोऽपि नाईति । अथान्ये केचिदिन्छन्ति समस्तविधिपारगाः ॥ यज्ञदानव्रतानां च सोऽप्येकोऽईति तद्यहे ॥ एवं यः कुरुते दानं नियानन्दानेधेः प-रम् । परं पदमत्राष्ट्रोति संसारेऽस्मित्रिरन्तरम् ॥ दानानामध्यद्योषा-णामनन्तं फुळमञ्जूते । निसानन्दविधानस्य पदानादपवर्गभाक् ॥ इत्यानन्द्रनिधिदानम् ।

अथ प्रयोगः॥ तत्र यजमानः पूर्वेक्ति काले कुश्वतिलयवजल-लाजा आदाय सक्चदानपक्षे देशकालकी र्जनान्ते वेथःपदाधिकरणा-ऽसक्चद्राज्यकरणोत्तर—स्वकर्मशेषसञ्चितत्रेतायुगकालीनिन जाऽनु— जीविसहिताऽखिलमहीराज्यावाप्तिपूर्वक-नित्येशानपद्माप्त्यनन्तर-कल्पावधिकानल्पश्रीकवैद्याधरपद्राज्यलाभोत्तराऽज्ययवैष्णवपद् भीतिदीर्घपुष्टचाविञ्चित्रसन्तानकामआनन्दनिधिमहादानमहं करिष्य इति कृतसङ्कल्पः स्वस्तिवाचनपातृपूजनद्यद्विश्राद्धाचार्यवरणानि कुर्याद । अन्नानन्दनिध्यासादनपूजादि गुरुः कुर्याद्यजमानोवा । तद्यथा । राजतापिधानं ताम्रघटकपम् आनन्दनिधिं नानारत्नहैप-रूप्यताम्रमुद्रापलाधिकहेमयुनं सुक्ष्मवस्त्रवेष्टितम् अष्टादश्चानयोपरि विष्ण्वादिदेवतासंत्रियौ स्थापयित्वा प्रतिष्ठापूर्वकम् ॐनिसानन्द-निधये नम इति मन्त्रेणाभ्यच्यं सिद्धार्थदृर्वाब्जकुशचन्दनाक्षताना-दायानन्दनिधि पदक्षिणीकृत्य,ॐनमः सर्वदानन्द सर्वसंपद्विवर्द्धन । वर्द्धपास्मान समृद्ध्येह आयुषा यश्चता श्रिया।नमस्ते नन्दसन्तान सदानन्द सदोदय । त्वं सुखं वै कुरुष्त्रेह सन्तत्या मां धनायुषा ॥ नमो नमः पद्मानिधे वनेश शतकतो शङ्कर नैर्ऋतेश । शमं नया-Sस्पद्दरितं हर प्रभो नमो नमस्ते हर शङ्करेश ॥ नमो नमः पाश्च-धराप्रमेय नमोऽस्तु वामायमनामधेय ॥ नमः समीराय हुताज्ञनाय नमोऽस्त्वनन्ताय कनाशनाय ॥ नमः सुरश्रेष्ठहरीश्वराय नमोऽस्तु सावित्रि शिवे श्रियेति । सरस्वती मीतिरतिः क्रियेति पुष्टिश्च तुष्ट्रिस्मृतिशान्तिकीत्र्ये ॥ सर्वापराणां निधिरशमेयस्वमेव पनत्र्वि-मुनीश्वराणाम् । आधारभूतोऽसि चराचरस्य विश्वस्य यस्मात् मणतोऽस्म्यतस्त्वाम् ॥ नमोऽस्तु सौन्दर्यनिधे सुरेश नमोऽस्त गाम्भीर्यनिषे समुद्र। नमो नमः कान्तिनिधान इन्दो तेजोनिधे त्वां मणतोऽस्मि भानो ॥ नमः पद्माय भद्राय नमस्ते खस्तिकाय च । नमः शङ्काय मणये मणिभद्राय ते नमः । नमो नन्दविवर्त्ताय नन्दावर्ज्ञाय ते नमः । नमः कण्टककर्णाय कण्ठावर्ज्ञाय ते नमः ॥ नमो नन्दमतिष्ठाय नमो हैमित्रयाय च । नमो हिरण्यगर्भाय निसा-ऽऽनन्दाय ते नम इत्युपस्थाय पूजियत्वा कुशातिललाजयवाक्षत-षळाऱ्यादाय अद्यत्याद्युक्ता, अद्येह पुष्यकालेऽस्मिन द्विजदेवा- ऽिनसिक्षेत्रो । यशःश्रेयोऽभिद्द्ध्यर्थं मातापित्त्रोस्तथाऽऽत्मनः । पुराणन्यायमीमां मानेदवादिभ्य एव च । नमो निद्यानिकायिभ्यो नानागोनेभ्य एव च ॥ निर्वेभ्योऽनेकशर्मभयो निसानन्दिनिर्धि परम् ॥ अहं संप्रद्दे तेभ्यो नानानानाष्टतेन च ॥ सस्वर्णरीप्यतान्नेण सरत्नेन सवाससा । सोपस्करेण पुरुषो ब्रह्मविष्णुशिवा-ऽऽत्मकः ॥ श्रीयतां निधिदानेन श्रीयङ्गपुरुषोऽच्युतः ॥ इति मन्त्रे-स्दकं मूमो क्षिप्ता निधिदानेन श्रीयङ्गपुरुषोऽच्युतः ॥ इति मन्त्रे-स्दकं मूमो क्षिप्ता विभेभ्योऽमुकामुकगोन्नेभ्योऽमुकामुकनामभ्यो-ऽमुमोद्वुम्वरं रौप्यपिधानमुवर्णवस्त्राष्ट्रादश्यान्यादियुत्रमानन्दिनिर्धं, निरन्तरेखादि पाप्तिकाम इति सम्बद्धात्वा परुष्ट्यसम्बद्धात्वा प्रक्षेत्र वेधात्व । एकस्मै वा दद्यात्व । ततः मुवर्णं दक्षिणां दत्वा विपात् सम्योज्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा, यस्य सम्योज्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा, यस्य सम्योज्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा, वस्य सम्योज्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा, वस्य सम्योज्य भूयसीं दक्षिणां दत्वा, वस्य सम्योज्य सम्योज्य स्वर्षेत्र । इत्यानन्दिनिषदानप्रयोगः ॥

अथ देवतादानानि ॥ तत्र तावद्द्यावतारदानम् । विकामित्रः । दानानामुत्तमं दानं हैमं विष्णोः स्त्ररूपकम् । तस्मात्
पुण्यार्थिना देया हैमा विष्णोः स्वरूपकाः ॥ते च, मत्स्यः कूमेंऽथ
वाराहो नारसिहोऽथ वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च वौद्धः करुकी
च ते द्वाति ॥ मत्स्यादिस्वरूपाणि विक्वचक्रदाने दार्वातानि ।
यथाश्चस्या प्रकुर्वति सुवर्णेन विज्ञानता । समेन पोडशेनैव समान्येतानि कारसेत् ॥ पोडशेनैव समानीति । महाभूनघटारूथे
पोडशदाने, प्रादेशादङ्कुरुशतं यावत कुर्यात प्रमाणत इति यत्
प्रमाणमुक्तं तत्ममाणकानि मत्स्यादिरूपकाणि भवन्तीद्धर्थः ।
विचानुरूपतो राजन् तुरुपमाद्ध्यद्दिर्योः । संपूष्ट्य नामभिस्तैस्तु
पुष्पभूपनिवेदनैः ॥ भक्तिनम्नः प्रणामान्ते निवेद्य श्रद्धया ततः ।
आहृप ब्राह्मणान् राजन् पादौ प्रशास्य यत्नतः ॥ उपवेश्यासने

सर्वाश्चन्द्रनेनानुलेपपेत् । सुगन्धेः कुसुमेश्चेत्र घूपैर्दीपैस्तयेत च ॥ आच्छाद्य बस्नुयुग्वेन ग्रहणे चन्द्रसूर्वयोः । अयने विषुत्रे चापि द्वादश्यां तु विशेषतः ॥ ज्योष्यैकादशीं कार्य धर्मकार्यं च सर्व-शः । अन्यथा नरकं यातीक्षेत्रमाह पितामहः ॥ ग्राहकानः विष्णु-रूपांश्च अईयेत विमत्सरः । एकैकं देवरूपं तमेकैकस्य समर्पयेत ॥ अथवा विद्वः सर्वान् दद्यात् सम्यूज्य मानवः। नानृतेन कदाचित्र द्यात पापिण्डने तथा ॥ एतदुचार्य विमस्य हस्ते तोगं क्षिपेत स्वयम् । द्वावतारतो राजन् विष्णोरैक्यं स गच्छति ॥ महा-पातकसंसर्गान्युच्यते तत्क्षणाद्यीति॥ अद्यत्यादि महापापसंसर्गज-दोषनिष्टत्त्यर्थे विष्णोर्दशावतारात् दास्य इति सङ्कल्पावतारात् विभान सम्पूज्य, देवरूपं मया विभ कारितं काञ्चनं श्रुभम् । तद् गृहाण प्रदानेन शीयतां विश्वरूपधृगिति मन्त्रमुक्त्वा देशकाला-द्यक्त्वाऽसुकगोत्रायासुकदार्भणेऽसुकद्भं महापापसंसर्गजदोषनिद्य-चिकामस्तुभ्यमहं सम्पददे न ममेति एकैकमेकैकस्मै दद्यात । एकस्मै वा सर्वाणि । दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां चेति दशाव-तारदानप्रयोगः ॥

अथ ब्रह्मविष्णुरुद्रदानम् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे शौनकादिभिः पृष्टेन रोमहर्षणेन, शृण्वन्तु मुनयः सर्व इसाद्युपक्रम्योक्तम् – त्रि-मृर्तिदानं दानानामुक्तमोक्तममुच्यते । विषुत्रे अयते वापि चन्द्र-सूर्यप्रहेषु च॥ नित्यं च पश्चदश्यां च जन्मक्षेषु समारभेद॥देवाल्ये नदीतिरे पुण्येष्वाऽऽयतनेषु च । गृहे वा कारयेदानं यत्र भृभिः ग्राचिभेवेद ॥ चतुरस्नां समां भृभि गोमयेनोपल्लेपयेद । तत्राक्षता-भित्रिकरेद पुष्पाञ्चलिल समन्ततः ॥ एकहस्ता द्विहस्ता वा विग्रुणा देव्यतः स्मृता । त्रिवेदिका भवेत्तिर्यक् श्वेततन्दुल्लिश्रिता ॥ ब्रह्मा च विष्णुभैगवान् पुरारिहिंरणभयास्त्र निवेशनीयाः ।

चतुर्भुजाः सायुषभूवणादयाः किरीटिनश्चापि पथाक्रमेण ॥ एत-रपतिमालक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने । स्नानार्घपाद्याचमनीयवस्त्रेर्गन्धा-दिभिस्तानभिषुच्य भक्त्या । मदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः प्रणम्य-चोद्वास्य ततः पदद्यात्॥ पत्तेकमेवं बहुमानपूर्वं सम्पूज्य दातव्यमतु-क्रमेण । तथा जगत्सृष्टिकरस्त्वमेव त्वमेव सर्वस्य पितामहोऽसि॥त्वमेव कर्त्वा जगतां विहत्ती त्वमेव धाता जगतां विधाता॥त्वत्सम्पदाना-दनवो यथाइं त्वया च सायुज्यमुवैमि देव । तथा कुरू त्वं शरणं मपन्ने मिं प्रभो देववर प्रसीद ॥ त्वया जगद् व्याप्तिमिदं समस्तं स्वां विष्णुभेव प्रवदन्ति सन्तः । त्वत्स्थानि सर्वाणि वदन्ति देव त्वया धृतं विश्वपनन्तमुर्ते ॥ त्वत्सम्प्रदानादनयो भनामि यथा जगत्कारणकारणेश । तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने माथ प्रभो देव-वर प्रसीद ॥ त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव य-स्मातः । तथाऽसुराणां त्रिपुरञ्च दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीका। त्बद्रपदानादहमप्यश्रेषेदींषीर्वमुक्तो हि यथा भनेयम् । तथा कुरु त्वां शरणं प्रपन्ने गयि प्रभो देववर प्रसीद ॥ इत्येवमुक्ता विधि-बद् ददाति स याति सायुज्यमथ त्रिमूर्तेः । यः कार्येद्विपवराय तस्मै सुनर्णसंख्यागाणतं हिर्ण्यम् ॥ दद्याच वासोयगमादरेण तथा कृते तल्लभते फलं तद्र ॥ इति त्रिमृत्तिंदानम् ॥

अथ द्रादशादित्यदानम् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे, श्रृणु नारद भद्रं ते दानमादिससंक्षितम् । यथोक्तं लोकगुरुणा विष्णुना प्रभवि-ष्णुना ॥ कर्त्तुः पापहरं पुण्यमायुष्यं श्रीकरं श्रुभम् । आरोग्यं सर्वमङ्गल्यं दुःस्वमाद्दशुतनाश्चनम् ॥सर्वशान्तिकरं ह्येतद् सर्वसिद्धि-फल्यदम् । चक्षुष्यं सर्वरोगन्नं श्रुक्तिगुक्तिफल्ल्यदम् ॥ विषुव-त्ययने राहुग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । जन्मर्से सौरमासे वा प्रश्चद्भ्या-ऽर्कसंक्रमे ॥ सौरवारे सूर्यसंवन्धिनि वारे ॥ सप्तम्यां वाथ नक्षन्ने सावितेऽद्धृतदर्शने । दुःस्वप्रदर्शने कुर्याद् दानमादित्यसंक्षितम् । देवालयं नदीतीरे तहागं वरुणालयं । अन्येषु पुण्यदेशेषु देवदानं समाचरेत् । आल्डिप् वे द्वादशहस्तदैष्ट्यां क्षिति यथा गोमयसंयु-ताभिः । तिस्मन् सितैस्तन्दुलपुञ्जकेश्च विस्तारयेद्वादश पङ्कृजानि॥ मादेशमात्राणि छुभानि तानि सकर्णिकान्यष्टदलेषु तेषु । हिरण्य-रूपाणि रवेविधाय यथाक्रमादुत्तरयोऽपवर्गः॥पत्यक्रुमुखान् माङ्-सुख एव देवांस्तद्वर्णगन्यादिभिरादरेण । सम्भीयतामिस्रथ च क्रमेण मत्येकसुचार्य तदीयनाम ॥ धाता च मित्रश्च ततः क्रमेण मार्चण्डनामा च तथार्यनाम । शकश्च देवो वरुणस्वाऽसौ भगो विवस्वान्यमस्तथेषाम् ॥ विष्णुस्तथा द्वादशमः स्वमन्त्रैराराध्येद् देववरान् द्विजांश्च ॥ पुरा देवऋषेदानं भोक्तं कमल्योनिना । तथा मयाऽपि युष्माकं मोक्तं सुनिवरोत्तमाः । द्वादशादित्यदानम् ॥

अथ चन्द्रादिखदानम् ॥ विष्णुवर्गोत्तरे । भगवानुवाच ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि दानराजं नराधिप । यहत्वा तु वळी राजा
शकराज्यमवाप ह ॥ शक्रश्च विष्ठराज्यं तु दत्वा पुनरवापह ॥
चन्द्रसूर्योपरागेषु अयने विषुवे तथा । चन्द्रसये च द्रादश्यांवैशारूपां पुत्रजन्मिन ॥ कार्त्तिक्यां च महामाध्यां सप्तम्यां च यथा
तथा । चन्द्रादित्यो तु दातन्यो सूर्यः सौवर्ण उच्यते ॥ शुद्धस्य
रजतस्येव मण्डलं हिमरोचिषः । द्रादशाङ्गुलहृत्तं तु उभयोरिष
मण्डलम् ॥ हत्तौ पद्मसमाकारौ मध्ये चैव तु कार्णका । भानुं
ताम्रमये पात्रे घृतपूर्णे तु निक्षिपेत ॥ सोमं शङ्के सीरपूर्णे ज्यारे
स्थापयेद् बुधः । सूर्यं तु रक्तकुमुमैः सोमं शुक्लेसथैव च ॥ आहिसाय सुगन्यं च धूपं चैव प्रदापयेत् । सोमस्य गुग्गुलुर्देयो गन्धः
सुक्तस्ययेव च ॥ कुङ्कुमं तु पतङ्गाय दीपं चैव घृतेन तु । प्वं

सम्पूज्य यत्नेन चन्द्रादिसौ एथक् एथक् ॥ अमृतमूर्त्तये सोमं नमोऽन्तेनेन पूजयेत्। खलोल्कायेति नै सूर्यं नमोऽन्तेन पुनः पुनः॥ आहूय ब्राह्मणं भक्तया वेदवेदाङ्गपारगम् । कुटुम्बिनं दिर्द्रं च आहितार्गिन तथेव च ॥ रक्तेन वाससाच्छाय कुङ्कुमेनानुलेपये-त् । सम्पूज्य पुष्पघूषेश्च द्विजं सूर्यमिवापरम् ॥ रिवं च चन्द्र-विम्वं च पृतस्यं तु निरीक्ष्य वै॥ समर्पयेद् ब्राह्मणाय मन्त्रेणानेन भूमिपः। रुक्यं च पुष्करं चैव वर्ण पुष्करमेव च ॥ त्रयी विद्या च साङ्गा तु यस्याङ्गं विष्णुक्षिणः। स वै दिवाकरो देवः भी-यतां वित्र माचिरम् ॥ एवमुचार्य भानुं तु द्विजराजं तथेव च । अमृतमूर्त्तं वीतांशुं ददामि ते द्विजोत्तम् । गायञ्या चैव सूर्यस्य अर्हणं जायते विभोः ॥ सोमं तरत्समं दीपं श्विचः श्रद्धेन तेजसा। एवं चन्द्रं र्रावे दत्वा बली राज्यमवापह् ॥ सर्वं तेन तु दत्तं स्याद्यो दद्याच्चन्द्रभास्करौ । सर्वं तेन कृतं राजद् सर्वं तेन च संस्तुतम् ॥ सर्वं दक्षिणया चेष्टं संसारे तु नरोत्तमेः । पूज्यते सिद्धगन्यवेर्क्कंविपोनेदेवदानवैः ॥ इति चन्द्रादिखदानम् ॥

अथ लोकपालाष्ट्रकदानम् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे । श्रृणु नारद्
भद्रं ते दानं सर्वाघनाश्चनम् । सर्वभङ्गलमायुष्यमारोग्यं शङ्करं
ग्रुभम् ॥ दानानाग्रुचमं दानं सर्वसिद्धिकरं परम् । करोति दानं
नारी वा सायुज्यं ब्रह्मणो ब्रजेद ॥ विषुवसयने राहुग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । अन्येषु पुण्यकालेषु जन्मसंषु विशेषतः ॥ देवालये
नदीतीरे ग्रहे वा दानमाचरेद । पुण्यदेशेषु सर्वेषु पुराणोक्तेषु
नारद ॥ चतुरस्रां सर्मा भूमि लिक्षां गोमयवारिणा।षद्करं चाष्टहस्तं
वा दश द्वादश वा करान् ॥ भाच्योदीच्यश्च कर्त्तव्या रेखाश्चतस्रकाः स्मृताः ॥ नवकाष्टानि तत्र स्युः ब्वेततन्दुलपुञ्जकैः ।
सितेरष्टदलैर्युक्तान् कमलान् विन्यसेच्छुमान् ॥ राजतक्ष्पम्यं देवं

जगत्कर्चारमञ्गम् । तेषां मध्यमकोष्ठेषु कमल्रस्यं निवेशयेत ॥
इन्द्रमिन यमं चैत्र निर्कृति वस्णं तथा । वायुं सोमं तथेशानं
प्रागादिषु यथाक्रमम् ॥ जातक्ष्पमयात्र देवात् अष्टौ स्वायुषसंयुतात । त्रिपल्लाक्सुत्रणांचु यथाशक्ति विनिर्मतातः ॥ ब्रह्मणोऽभिसुखान सर्वान सर्वेषु विनिवेशयेत् ॥ जातक्ष्पमयात्र देवानष्टौ
स्वायुषसंयुतान ॥ स्वर्णमयं कमल्लस्यं ब्रह्माणम् । ब्रह्मलोकप्रतिमालक्षणं ब्रह्माण्डदाने दृष्ट्व्यम् । प्रसेकं वा समावेष्ट्य सम्प्रोक्ष्य
कुशवारिणा । योऽसौ कारियता विपस्त्वेषमेतत् समाचरेत् ॥
दानकाले तु सम्प्राप्ते दाता स्नात्वा कुशोदकः । प्रसन्नचित्तवदनः
परमेष्टिपुरोगमात् ॥ स्वनाममन्त्रेरिमतो नमोऽन्तेराराध्य गन्धादिभिरादरेण । विप्रांस्तथाभ्यच्यं यथाक्रमेण सम्प्रीयतामयिवेतयुक्का, यो सौ कारियता विपस्तस्मै द्याच दक्षिणाम् । सुत्रर्णसंल्यागणितं दिरण्यं चैव वाससी ॥ पोक्तं देवऋषे दानं लोकपालाह्वयं मया । किमन्यच्ल्रोत्निष्टा ते तिददं वद साम्प्रतम् ॥
इति लोकपालाष्ट्रकदानम् ॥

अथ नवग्रहदानम् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ ब्रह्मोवाच । ग्रहदानक्रमं वक्ष्ये सर्वसिद्धिकरं परम् । सर्वशान्तिकरं नृणां सर्वपापमणाश्चनम् ॥ विषुवस्ययने राहुग्रहणे शशिस्त्र्ययोः । जन्मर्त्तें सौरवारे वा पश्चदत्र्यां तथैव च ॥ पुण्यकालेषु सर्वेषु पुण्यदेशे विशेपतः । ग्रहदानं तु कर्त्तव्यं निसं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणा ॥ हस्तमात्रं
द्विहरतं वा त्रिहरतं वाऽथ नारद । चतुरस्रां समां मूर्मि गोमयेनोपल्लेपयेत ॥ रेखाः माच्य चदीच्यश्च चतस्नस्तास्त्रथा समाः। नवकोष्ठेषु पद्मानि विन्यसेच्छ्येततण्डलैः ॥ आदित्यश्चन्द्रमा भौमो
बुधजीवसितार्कजाः । राहुः केतुरितियोक्ता ग्रहा लोकसुखावहाः॥
एषां हिरण्यक्षपणि कारियत्वा यथाविषि । त्रिनिष्केणायद्मा

कुर्याद्यथाशक्त्या पृथक् पृथक् ॥ हिरण्यक्षाणि हिरण्यमतिथाः । तल्लक्षणान्यत्रैव बक्ष्यन्ते । आदित्यं मध्यमे कोष्ठे दक्षिणेऽङ्गारकं न्यसेत् । उत्तरे तु गुरुं विद्याद् बुधमुक्तरपूर्वके ॥ मार्गवं पूर्वतो न्यस्य सोमं दक्षिणपूर्वके । पश्चिमेऽकेसुतं न्यस्य राह् दक्षिण-पश्चिमे ॥ पश्चिमोत्तरतः केतुः सिक्षवेश्यो यवाविधि । तद्वर्णपुष्य-गन्धाधैरर्चयेत स्वस्वमन्त्रकैः ॥ दानं शुद्रोऽधवा कुर्यात स्त्री वा तत्र तु नारद । भूलेपनादि यद कार्य सर्वे विषेण कारयेद ॥ स्नानकाले तु सम्माप्ते स्नात्वा कुवातिलोदकैः । मयतो यजमान-स्त घौतवस्तः मसमधीः ॥ अचीयत्वा सपं दद्यादइस्करमुखानः प्रहान् । पत्येकपेकं विमोऽसौ स्वस्वमन्त्रमुदीरयेत् ॥ पद्मासनः पद्मकरो द्विवादुः पद्मश्रुतिः सप्ततुरङ्गवादः । दिवाकरो छोक-गुरुः किरीटी मयि पसादं विद्घातु देवः ॥ क्षेताऽम्बरः क्षेत-विभूषणश्च क्वेतद्युतिर्दण्डकरो द्विवाहुः । चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी श्रेयांसि महां पददातु देवः॥ रक्ताऽम्बरो रक्तवपुः किरीटी चतुर्भुजो मेषगमो गदाभृत । धरासुतः शक्तिधरश्च शूली सदा मम स्याद्वरदः मञ्चान्तः ॥ त्रियङ्गुकलिकाञ्यामो क्ष्पेणाप्रतिमो सुवि । सौम्यः सौम्यगुणोपेतः सदाऽस्तु वरहो पप ॥ सुराणां च सुनीनां च गुरुः कनकसन्त्रिभः । बुद्धिदाता त्रिलोकस्य स मां रक्षतु वाक्पातिः ॥ हेमकुन्दमृणालाभो दैयानां परमो गुरुः । सर्वशास्त्रास्त्रवक्ता च भार्गवो वरदोऽस्तु सः॥ नील-द्युतिः शुल्रधरः किरीटी ग्रुप्रस्थितस्नासकरो धनुष्मानः । चनु-र्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तः स चाऽस्तु महां वरमन्दगामी ॥ नीला-Sम्बरो नीलवपुः किरीटी करालवकः करवालग्रूली । चतुर्भुज-अर्मधरश्च राहुः सिंहासनस्थो वरदोऽस्तु महाम् ॥ भूम्रो द्विवाहु-र्वरदो गदाभृदु ग्रश्रासनस्थो विकृताननश्च । किरीटकेयुरविभृषि-

ताङ्गः सदाऽस्तु मे केतुगणः मक्षान्तः ॥ इत्युक्ता दापयेत सर्वात्रः आदिसादीक्षव प्रहातः । पुरुषो भाऽय नारी वा यथोक्तं फलमा-प्तुपातः ॥ मध्यमं गुरवे दद्यादन्यस्मै वा प्रदापयेतः ॥ गुरुरतः पुजादिकक्तां । अथवा दक्षिणा देषा सुवर्णं वाससी श्रुपे । इसाहः भगवातः ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥ तथाहमश्रुवं दानं युष्माकं सुनिसक्तमाः ॥ इति प्रहदानम् ॥

अथ वारदानानि॥स्कान्दे। आदित्यादिषु वारेषु सहिरण्यः सदैव तु । यः पयच्छति तन्मूर्तीस्तस्य तुष्यन्ति वै ग्रहाः॥ दद्यादादिस्रमादित्ये सीमं सीमे कुजं कुजे। एवं बुधादीन्मन्दे तु राहुकेतुवानैश्चरान्तः॥ इति वारदानानि॥

अथ श्रुदानम् ॥ वायुपुराणे । या निष्कृतिस्तु पापानां कृतानां प्रद्वया विना । यत्पायुपतमाख्यातमस्त्रं देवस्य क्र्रिलनः ॥ तस्य प्रदानाद सकलं तत्पापं सम्मणस्यति ॥ कृष्णपत्ने चतुर्दश्या मष्टम्यां वा सितेतरे । कुर्पाद् द्वादक्षनिष्केण त्रिश्र्वं लक्षणान्तितम् ॥ निष्कचतुष्कः सौवणिकः, सौवणिमात्रं पट्पञ्चाक्षद्विकः कातद्वयपणमृत्यो वेति पक्षत्रयं क्षास्या क्षेयम् । युगान्तकरणं घोरम्यविध्वंसनं परम् । नानारजोविरचिते चक्रे पोडक्षारिवभूषिते ॥ चक्रं पोडक्षारिवभूषिते ॥ चक्रं पोडक्षारं परिभाषायामुक्तम् । नाभौ निधाय सम्पूर्णं तिलानां ताम्रानिर्मितम् । पात्रमाहकसंमानं तत्र श्रुलं न्यसेत पुतः ॥ कुर्याचनेत मन्त्रेण तस्मात पूजामतुक्रमातः । तेनैव, श्रूलाय नम् इति मन्त्रेण । विक्पाक्षं च तत्पार्थं कमलोपरि पूजितम् । अधोरमन्त्रस्तु लेक्ने— अघोरभ्योऽष घोरभ्यो घोरघोर्तरभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वकार्वभ्यो ममस्ते अस्तु हद्रक्षेभ्यः ॥ विग्रं च क्षानिनं तद्वत सम्पूज्य मुनि-पुक्रवाः । प्रदक्षिणं ततो गत्वा इमं मन्त्रमुद्रियेत् ॥ भगवत्

भगनेत्रघ्न दक्षयक्षममहैन । तवायुषपदानेन पापं नव्यतु शङ्कर ॥
युगान्ते येन छोकानां त्वमन्तकविनाशनः । विद्ग्धं तत्स्वपापेन
तेन पापं व्यपोह्य ॥ येन दग्धं क्षणार्द्धेन त्रिपुरं सुरदुर्जयम् ।तेन
पाश्चपतास्त्रेण मम पापं विनाशय ॥ यदबुांद्धकृतं पापं मम बानस्थं
च मानसम् । तद सर्वं क्षयमभ्येतु तव श्रूलपदानतः ॥ इसामन्त्र्य
ततो दद्याच्छूलं तस्मे द्विजन्मने ॥ अत्रव्यं कुरुते पापमझानान्मानवो
यतः । वर्षे वर्षे ततो दद्यात्तस्य तस्यापनुत्त्रये ॥ इति श्रूलदानमः ॥

अथात्मपतिक्वतिदानम् ॥ भविष्योत्तरे । दानकालः सदा तस्यत्युक्ता, हैर्पी पतिकृति भन्यां कारियत्वात्मनो नृप । अभीष्ट-वाहनगतामिष्टालङ्कारभृषिताम् ॥ अभीष्टलोकसहितां सर्वोपस्कर-संयुताम् ॥ अभीष्टलोकः मियजनः । नेत्रपट्टपटीवस्त्रैञ्लादितां स्नाचिभूषितामः । कुङ्कुमेनानुष्ठिमाङ्गीं कर्पूरागुरुवासितामः॥ स्त्री वा द्यातु शयने शयितां कारयेत् स्वयम् । यद्यदिष्टतमं किञ्चित्त-रसर्वे पार्श्वतो न्यसेत् ॥ उपकारकरं स्त्रीणां पुरुषाणां च यद्भवेद । तत्सर्व स्थापयेत पार्क्वे स्वयं संचित्स चेतास ॥ एतत्सर्व मेलपि-त्वा स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत् ॥ ॐम् अद्येखादि साग्रज्ञतनर्ष-पर्यन्तं सुरसाहिसेन स्वर्गादीष्ट्रभोगोत्तरजन्मनीष्टवन्धुमनाऽवियोग-काम आत्मप्रतिकृतिदानं कारेष्य इति सङ्कल्प्य, पूजियत्त्रा लोक-पालान् ग्रहान् देवीं विनायकम् *। देवी दुर्गा । ततः शुक्राम्बरः स्नात्वा ग्रहीतकुसुमाञ्जलिः । इमसुचारयेन्मन्त्रं विवस्य पुरतः स्थितः ॥ आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपकरणैर्युता । सर्वरत्नसमा-युक्ता तव वित्र निवेदिता ॥ आत्मा शम्भुः शिवः शौरिः शकः **प्रराणेर्युतः । तस्**मादात्मत्रदानेन मम चात्मा प्रसीदतु ॥ इत्युक्ता मासपक्षादि चोछिख्य पूर्वोक्तं साग्रेसादिकानां सङ्कल्पवावयम्-का इमामात्ममतिमां सोपस्कराममुकवार्गणेऽमुकगोत्राय त्रभ्यपहं सम्पददे, इत्युचार्य ततो द्याद् ब्राह्मणाय युधिष्ठिर क्ष ब्राह्मण-श्चाय ग्रह्माति, कोऽदादिति च कीर्चयेत् ॥ ततः प्रदक्षिणीकुख प्राणपस विसर्जयेत् ॥ विधिनानेन राजेन्द्र दानमेतत् प्रयच्छिति । यः पुमानय वा नारी श्रृणु तत्फलपान्तुयात् ॥ साग्रं वर्षकातं भव्यं सर्वलोकैः सुरैहितः । अभीष्ठफलदानेन चाभीष्ठफलभाग्मवे-त् ॥ यत्रेवोत्पयते जन्तुः प्राप्तः कर्भक्षयं क्षणम् । तत्रेव सर्व-कामानां फलभाग् जायते नृप्॥ इष्टवन्युजनैः सार्द्धं न वियोगं कदा-चन ॥ प्राप्नोति पुरुषो राजत् स्वर्गमानन्त्यमञ्जुत इति ॥ इत्यात्म-प्रतिमादानम् ॥

अथ धनदमु तिदानम् ॥ वायवीये, दरिद्रो जायते मर्खो दान-विद्यं करोति यः।ऐश्वर्यं जायते येन कर्मणातच्छ्रणुष्य मे॥पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ॥ पछेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वेति कचित पाटः । तदर्देनाथवा पुनरिति च कचित । धनदस्य प्रति-कृतिं कुर्यात स्वर्णमयीं शुभाम । द्विभुजां वाहनोपेतां नयना-नन्दकारिणीम् ॥ धनदक्ष्पं तु । ह्रस्वमापिङ्गनेत्रं च गदिनं पीत-विग्रहम् । पुष्पकस्यं धनाध्यक्षं ध्यायेच्छिवसत्तं सदेखादिनोक्त-म् ॥ शङ्खपद्मनिधिभ्यां च युक्तं तत्पार्श्वयोद्देयोः । श्वेतत्रञ्जेण संबेष्ट्य तन्दुळोपरि विन्यसेत् ॥ तन्दुळानां परीमाणं भवेद् द्रोण-चतुष्ट्रयम् । तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा वित्तवाळां न कारयेत् ॥ क्वेत-माल्यैस्तथागन्धैरतुस्त्रिप्य प्रपूजयेत । आग्नेय्यां दिशि होमश्च समि-दाज्यतिलेर्भवेद ॥ मन्त्रो राजाधिराजायेत्येष योज्यः स्वलिङ्गकैः। व्याहृसा तिलहोमश्च कर्त्तव्यो धनकाङ्क्षिभिः ॥ आचार्यः सर्व-शास्त्रज्ञो विनीतः सर्वसंमतः । महाकुलप्रस्तश्च धर्मज्ञः सत्यवाक् श्चिः ॥ कारयेद्र्चनं तेन धनदस्यातिभक्तितः । तहेवत्येन पन्त्रेण स च कामश्चरो भवेत ॥ तस्मै होमं कृतवते मदद्यात मतिमां त ताम् । पन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्गुस्तस्तु उदङ्गुसः ॥ पन्त्रः प्रयोगे द्वेयः ॥ एवं कुवेरदानं यः करोति विधिपूर्वकम् । धनदेन समो मर्त्यस्तरक्षणादेव जायते ॥

अथ प्रयोगः । सार्द्धमापद्वयाधिकां पञ्चाशान्मापावधिकुवेरमूर्ति पुष्पकविमानस्थां पार्श्वयोः पद्मशङ्खाकारयुतां कृत्वाऽद्येत्यादि यथेष्टधनकामोऽहं धनदमूर्तिदानं करिष्य इति सङ्कल्प्य
देवेतवस्तां मूर्ति यथाशक्ति एकद्विचतुर्द्रोणतन्दुलराशौ निधाय
सम्पूज्य तदाग्रेय्यामधि संस्थाप्य समिदाज्यचरुभिः मस्रेकमष्टाष्टाविशेल्यादिसंख्यया, राजाधिराजायेति मन्त्रेण व्याह्वतिभिश्च तिलैद्विता आचार्येण धनदपूजां कारियत्वा,

उत्तराशापते देव कुवेर नरवाहन । पद्मशङ्कतिधीनां त्वं पतिः श्रीकण्डवल्लमः ॥ दानाचेन यथा पाप्तं दारिद्यं ममः दुःखदम ।

तद सर्वमात्मदानेन पापमाश्च विनाशयेति मन्त्रमुक्त्वाऽद्येत्याः दि इमां घनदम् ति दारिद्यनाशकामोऽमुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे तुभ्यमहं सम्पददे, न मगेति दत्ता, देयद्रव्यतृतीयं चतुर्थं वांशं मुत्रणं दक्षिणां दद्याद ॥ इति धनदमृत्तिदानम् ॥

अथ शालग्रामदानम् ।। शालग्रामशिलाचकं यो दघादानमु-त्रमम् । भूचकं तेन दत्तं स्यात् सशैलवनकाननमिति पाग्ने भालग्रामदानम् ॥ सशैलवनभूचकदानफलकाम इति दानवाक्यम् । मन्त्रस्तु । महाकाशनिवासेन चक्रायैरूपशोभितम् । अस्य देवस्य दानेन मम सन्तु मनोरथा इति ॥

अथ काल्पुरुषदानम् ॥ भविष्योत्तरे । काम्यो दानविधिः पार्थे क्रियमाणो यथातथम् । फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च ॥ देथं निष्कशतं पार्थं दानेषु विधिरुत्तमः । मध्यमस्त तद्रद्धेंन तद्रद्धेंनावरः स्मृतः ॥ एवं हक्षे रथेऽण्डे च घेनोः कृष्णा-Sजिनस्य च । अशक्तस्यापि क्लुप्तोऽयं पञ्चसौवर्णिको विधि: ॥ अतोऽप्यल्पेन यो दद्यान्महादानं नराधिप । प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखक्षोकावहं भवेत ॥ दृक्षो महादानेषु कल्पदृक्षः। रथो हिरण्या-. ऽक्तरथः । अण्डं ब्रह्माण्डपः । घेतुः कामघेतुः । पुण्यं दिन-मथासाद्य भूमिभागे समे शुभे। चतुर्द्द्रयां चतुर्ध्यां वा विष्ट्यां वा पाण्डुनन्दन ॥ पुमानः ऋष्णाजिने कार्यो रौष्यदन्तः सुवर्णहक् । खड्गोद्यतकरो दीर्घो जपाकुसुमकुण्डलः ॥ रक्ताम्बरघरः स्रग्नी शङ्खमाळाविभृषितः । तीक्ष्णासिपुत्रीवन्षेन विस्फारितकटीतटः ॥ असिपुत्री छुरिका । उपानसुगयुक्ताङ्घिः कृष्णकम्बलपार्श्वगः। युहीतमांसिपण्डश्च वामे करतले तथा ॥ एवंविधं पुपान कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः । यजमानः पसन्नात्मा इमं मन्त्रसुदीरयेत् ॥ सम्पूज्य गन्धकुसुमैनैंवेद्यं विनिवेद्य च ॥ सर्वे कलयसे यस्मात् काल त्वं तेन चोच्यसे । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्यो हि स्रवत ॥ पूजितस्वं मया भत्तया पार्थिवश्च तथा सुखम । तद् बुद्ध्यते तव विभो तत्कुरुष्व नमो नमः ॥ एवं सम्पूजियत्वा तं ब्राह्मणाय निवेदयेव । ब्राह्मणं प्रथमं पूज्य वासोभिर्भूषणैस्तथा ॥ दक्षिणां शक्तितो दद्यात प्रणिपत्य विसर्जयेत ॥ दक्षिणां प्राय-क्तां निष्कशतादिरूपाम् । अनेन त्रिधिना यस्तु दानमेतत् मय-च्छति । नाऽपमृत्युभयं तस्य न च न्याधिकृतं भवेत् ॥ भवसन्याह-तैञ्चर्यः सर्ववाधाविवर्जितः । देहान्ते सूर्यभवनं भित्वा याति परं पदमिति ॥ पुण्यक्षयादिहाभ्येस राजा भवति धार्मिकः। सत्र-याजी श्रिया युक्तः पुत्रपात्रसमन्त्रितः ॥ सम्पूज्य कालपुरुषं विधिवद् द्विजाय दत्वा सभासभफलोदयहेतुभृतम्।रोगातुरे सकल-दोषमये च देहे देही न मोहमुपगच्छति तत्त्रभावाद ॥

अय प्रयोगः ॥ चतुर्थ्यां च चतुर्दश्यां भद्राकरणे वा रौष्पद्यनं सुवर्णनेत्रं खड्गोद्यतद्विणकरं मांसपिण्डयुतवामकरं जपाछुसुमकुण्डलं रक्तस्रिभिणं शङ्क्षमालाधरं छुरिकपा युनकटिदेशमतिदीर्वं कृष्णाजिन कालपुरुषं निर्मायायेखादि अपसृत्युव्याधिसर्ववाधानिवारणाव्याहतैक्वर्यमाप्तिमरणोत्तरपरपदनदुत्तरधर्मश्रीपुत्रपौत्रादिकर्तृत्वराज्यकामः कालपुरुपदानं करिष्य इति सङ्कर्ण्य कालरूपं विभं च सम्पूच्य पुष्पाञ्जिष्ठं गृहीत्वा । सर्वे काल्य्यसे यस्मात् कालरूपं तेन चीच्यसे । ब्रह्मविष्णुश्चिवादीनां त्यमसाध्योऽसि सुत्रत॥पूजितस्वं मया भक्त्या पाधिवश्च यथासुस्तम् ।
यद्बुच्यते तव विभो तत्कुरुष्य नमो नम इति मन्त्रमुक्ताऽध्यसादि
अपमृत्युव्याधिसर्ववाधानिवारणेखादि कामान्तं पूर्वोक्तं सङ्कर्णवाक्यं चोक्केमं कालपुरुषं सोपस्करम् अमुकगोत्रायासुकशमंणे
विमाय तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति दत्वा पञ्चसुवर्णादृर्ध्वमानिष्कश्चातं दक्षिणां दत्वा भूयसीदानविभभोजनानि कुर्यात् ॥ इति
कालपुरुदानविधिः ॥

अथ कालचकदानम् । मृत्युअये । चक्रं कृष्यमयं कृत्वा
मुक्तारिक्षमयात्मकम् । कृत्वा मृष्टिनशरचन्द्रं रिक्षमध्यान्तरास्यतम् ॥ तमःशतैककपाणि गात्रेषु च समन्ततः । एतं ध्यानवतस्तस्य स चन्द्रः कृष्णतां अतेत् ॥ ततोऽप्यनन्तरं पश्चात स्थित्वा
विममदक्षिणाम् । तं गृहीत्वा अतेद् दूरमदृष्टत्वमि अतेत् ॥ स्वयं
वाऽमृतसङ्घातपुर्णकायस्थितस्थितिः । कालचक्रमिदं नाम्ना दानं
मृत्युविनाशनम् ॥ इमं ते राजतं चन्द्रं रिक्षमालसमाकुलम् ।
अपमृत्युविनाशाय ददामीति समुचरन् ॥ मुवर्णदक्षिणायुक्तं
बाह्मणाय निवेदयेत् । एवं कृते विनवयेत अपमृत्युं विनाशय ।
तस्मोदेतसमादेयमपमृत्युभयान्वितः । ज्वरादिरोगम्नस्तैवां महा-

पत्पतितेरिष ॥ ततो युद्धोक्तिविचा स्थापयेज्ञातेषदसम् । जुहुयात काडनाम्ना तु शतमष्टीचरं शतम् ॥ ततस्तु भोजयेद्धस्या
विभान द्वादशसङ्क्षयया । स्वयमक्षारठवणं भुजीत सक्टदेव तु ॥ प्वं
कृते नरो नृनं चिरं जीवेब संशयः ॥ अधेसादि अपमृत्युनिवारणकामः काठचकदानं करिष्य इति सङ्क्षरूप्य शक्तितो कृष्यकृतं
चन्द्राकारमनेकमुक्तामाठात्मकराशियुतकाठचकं विभं च सम्पूच्य,
इमं ते राजनं चन्द्रं रिश्मजाठसमाकुठम् । अपमृत्युविनाशाय
ददामीति समुच्चरत् ॥ इदं काठचकं मुक्तादामयुतम् अपमृत्युनिवारणकामोऽमुक्तगोत्रायाऽमुक्तशमणे विभाय तुभ्यमहं संभददे न ममेति दत्वा मुवर्णं दक्षिणां दत्वाऽप्रि संस्थाप्य काठचकाय स्वाहेसष्टोचरञातं तिरुर्द्वा द्वादश्च विभानः भोजयित्वा
स्वयमक्षारमठवणं सकुद्धवीत ॥ इति काठचकदानविधिः ॥

अथ यमदानम् ॥ मृत्युक्षये । छोहपात्रे स्थितं कांस्यं तत्र
पर्भं तु राजतम् । तास्मिन् कालेश्वरः स्वर्णेः पुरुषाकारताङ्गतः ॥
यमक्षं तु । ईपत्पीतो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानता । रक्तहक् पाश्चम्य कुद्ध इति ॥ वस्नालङ्कारसंयुक्तो भयदास्त्राणि सर्वतः । त्रिछोहं कांस्यताम्रपित्तलारुपम् । कालद्तैर्दण्डहस्तैस्विभिः पुरुषाकारैः । कुत्वा च माहिषे पृष्ठे तं दद्याद्यममालपन् ॥
आलपन् यमं ददामीत्युक्षर्तः । अष्टम्यां च चतुर्दञ्यां करोति
विधित्रसु यः । स मुन्यते धुनं नाशाद् दत्वा पृत्यद्येत्तरम् ॥
नाशो मृत्युः । पृत्यद्य उत्तरो दक्षिणास्थाने यस्येति दानविवेके ।
अपरे तु दक्षिणा सुवर्णामिति । लोहपात्रं कांस्यपात्रं तस्मिन् रौप्यपद्मं तस्मिन् सौवर्णमहिषस्यं दण्डपाशकरं यममलङ्कृतं तत्समीपे
हैमानि स्वद्वाद्यस्याणि त्रिलोह्यद्यतान् दण्डकरात् कालद्वाँ अ

संस्थाप्य तिथ्यादि समुत्वाऽपमृत्युनिवारणकामो यमदानं कारैष्य इति संकल्प्य सवाइनद्गास्त्रं यमं विप्तं च संपूज्याधेसादि अप-मृत्युनिवारणकाम इनां पूर्वोपस्करसुताममुककार्मणेऽमुक्तगोत्राय विमायाइं संप्रददे न ममेति दत्वा दक्षिणां सुवर्णे द्यात् ॥ इति यमदानम् ॥

अथायुष्करदानम् ॥ ब्रह्माण्डे । भूमो गोमयालिप्तायां दक्षि-णोत्तरतः स्रभाम् । निधाय तत्र पाणिभ्यां पूर्णानि सिततन्दुलैः ॥ चरनारि तेषु हैमानि मण्डलानि निवेशयेत् ॥ मण्डलानि स्थलाका-राणि, कुम्भानियन्ये । सौवर्णाश्च ततो देवान् अर्चयेच यथा-क्रमम् । पूर्वमात्मभुवं तत्र विष्टरश्रवसं ततः ॥ कृष्तिवाससमीकानं बज्जपाणि शतकतुम् । गन्धादिभिरयाभ्यर्च्यं दक्षिणोत्तरतः क्रमाद ॥ मत्येकभेकं विषेभ्यो द्वादारभ्य भक्तितः । तं तं देविमह ध्यात्वा मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ संपीयतां मे भगवानात्मभूरित्युदीरयन् । संपीयतां जगद्यापी भगवान् विष्टरश्रवाः । संपीयतां मे भगवान् कृत्विवासा इति ध्रवम् ॥ संपीयनां मे भगवान् वज्जपाणिः शत-कृतः ॥ एवमाह पुरा ब्रह्मा नारदाय सुर्पये । प्रोक्तं मयाऽपि तत् सर्व युष्माकं सुनिपुङ्गवाः ॥ अत्र ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रमिताम् वाक्ति सुवर्णमयाः कार्याः । आयुष्कामो ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रमितिमा-दानमहं करिष्य इति संकल्प्य । इति आयुष्करदानम् ॥

अथ सम्पत्करम्॥ब्रह्माण्डे, सम्पत्करं दानमतीत्र पुण्यं यस्मित्र कृते सम्पदोऽभ्येति जन्तुः ॥ तथा, आयुष्करं रोगहरं तु पापितनाशनं नाशकरं त्वधानाम् । स्वर्गापत्रमी कुळपुत्रहादि श्रियं तथाच मददातीष्टिसिद्धिम् ॥ तथा, काळेषु सूर्यप्रहणादिकेषु तारेषु जन्मत्रितयेषु कार्यम् । देशेषु देवायतनादिकेषु ग्रहेषु वा पत्र मनः मसत्रम् ॥ स्नात्वा मातस्तिलमिश्रेः कुशोदैः श्रविभृत्वा भौत-

वासाः मयत्नात्।सङ्करूप विमं विदुषं गुरुं च कार्यं च तस्यानुम-तेन सर्वम् ॥ गुरुं दृत्वेति शेषः। गृन्येन भूमि शक्कता जलेन विले-पयेद्विंशकमात्रहस्ताम् । तत्रैव लेख्याश्चतुरः समाः स्युः प्राच्य-श्च तिर्यक् च यथोपदिष्टम् ॥ नव कोष्टानि तत्र स्युस्तेषु पूर्णानि तण्डुळैः । निधातव्यानि पात्राणि वासोभिरभिवेष्ट्य च ॥ पात्रा-णि कुम्भान्।पलस्यार्वाक् त्रिनिष्कार्द्धं यथाशक्ति विनिर्पितान्॥ निष्कोऽत्र सुवर्णम्।दक्षिणोत्तरतो देवान् जातक्त्पमयान् न्यसेत् ॥ पार्श्वान्सकोष्ठत्रितये तु गित्रं तथा च देवं वरुणं च सोमम्।चतुर्भुनं मध्यमकोष्ठकेषु जगत्पति विष्णुमुमापति च ॥ दिवाकरं दत्रहणं च वर्षि संपूज्य सर्वान् विधिवत् क्रमेण ॥ मित्रलक्षणं तु, पद्मगर्भसमः आजानुलम्बिनालान्तर्विकचा-कार्यो भित्रः कमलसंस्थितः । Sम्भोजहरू प्रभुः ॥ वरुणादिक्तपुक्तं ब्रह्माण्डदाने । अभ्यर्च्य विपानिष गन्धवस्त्रैः पृथक् च दातव्यमनुक्रमेण । संप्रीयतां मे यमित्येवमुक्ता ततो हि दद्यात सोदकं पूर्वमव ॥ एकस्य चैकं च हिरण्यक्वं प्रमाणपूर्व परिणीय सर्वात् । पात्राणि वासः परि-धाय चैव सतन्दुलं सहिरण्यं च दत्वा ॥ अभीष्टिसिद्धं लभते च सर्वामायुष्यमारोग्यमुपैति चाग्न्यम्। अथोपदेष्टे गुरवे सुवर्ण वासो-युगं दानसमं च दद्यात ॥ विभेस्तथा वाचयेत स्वस्तिवाच्यं ततो दद्यादक्षिणां वाचकेभ्यः।

अथ प्रयोगः ॥ पातिस्तळकुशािभशोदकेन स्नात्वाऽयेत्पा-दि संपदायुरारोग्य-पापनाश्च-पुत्रादिकुळदृद्धि-श्रीस्त्रगमोक्षेष्ट-सिद्धिकामो मित्रादिमतिमादानं कारिष्य इति संकल्प्य गुरुं दृत्वा तेनाइसो विश्वद्धस्तां चतुरस्तां सुवं गोयेनाळिष्य तत्र प्रागाय-ताश्चतस्र उदगायताश्चतस्रो छेखा लिखित्वा तत्र जातेषु नवकोष्ठेषु तण्डुळाश्चिक्षिप्य तेषु नवकुम्भान् सवस्रात् विधिना संस्थाप्य तेषु मुवर्णत्रयाद्ध्ये पलाऽवधिहम्नाकृताः प्रतिमाः स्थापयेत पृजयेच । तत्र पश्चिमपङ्गी उदक्संस्थान । मित्रं वरुणं सीमं च ।
मध्यमपङ्गी चतुर्भुजं विष्णुमुमापति च । अन्त्यपङ्गी दिवाकरं
दृत्रहणं वर्षि च । ततो नव विपान संपूज्येकैकस्मै विमाय मित्रः
भीयतामधित्यादि, संपदादिकामान्तं पूर्वोक्तं फल्युक्ताऽमुक्त्रक्षभेणे
अमुक्तगोत्राय विपायमां प्रतिमां संपददे इति दद्यात । एवञ्च
संरुणः भीयतामिति वरुणादिप्रतिमां गुरवे च देयद्रव्यसमं सुवर्णं
सङ्ग्युगं च द्यात ॥ इति संपत्करदानम् ॥

अथ कुष्णाजिनम् ॥ सौरे । कुष्णाजिनं च महिषीं मेषीं च द्वाधेनतः। ब्रह्मछोकपदायीति तुळापुरुष एव च ॥ यमः । गोभू-हिरण्यसंयुक्तं मार्गमेकं ददाति यः । सर्वदृष्क्रतकर्मा≲पि सायुज्यं ब्रह्मणो त्रजेत् ॥ मरीचिः । कृष्णाजिनोभवमुखीं यो दद्यादा-हितारनये । सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ कृष्णाजिन-समं दानं न चास्ति भुतनत्रये । प्रतिग्रहोऽपि पापीयानिति वेदविदो तिदुः ॥ मात्स्ये । वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणं शशि-सूर्ययोः । पौर्णमासी तु या माघे आषाढी कार्तिकी तथा ॥ **उत्तरायणं द्वादशी वा तस्यां दत्तं महाफलम् ॥ आहितान्निर्द्विजो** यश्च तद्देवं तस्य पार्थिव । यथा येन विधानन तन्मे निगदतः शृष्य ॥ गोमयेनोपछित्रे तु श्चनौ देशे नराधिप । आदावेत्र समा-स्तीर्थ शोभनं वस्त्रमाविकम् ॥ ततः सश्युङ्गं सखुरमास्तरेत् कृष्ण-मार्गणम् । कत्तेव्यं स्वमश्रुङ्गं च रूप्यदन्तं तथेव च । लःइगुल-मौक्तिकैर्युक्तं तिल्ल्लनं तथैन च । तिलेरात्मसमं कृत्वा वाससा-SSच्छादयेद् बुधः ॥ सुवर्णनामं तत कुर्यादलङ्कर्याद् विचन्नणः । रत्नैर्गन्धेर्यथाशक्तया तस्य दिश्च च विन्यसेत् । कांस्यपात्राणि चत्वारि दिश्च दद्यायथाक्रमम् । मृत्यवेषु च पात्रेषु पूर्वादिष

क्रमेण तु । पृतं सीरं दिव शीद्रमेवं दद्याद्यथाविधि ॥ सरलावि कांस्यपात्राणि चतुर्दिश्च स्थापयेत । मृन्मयानि पात्राणि च छूत-क्षीरदिधमधुपूर्णानि पूर्वादिदिश्च स्थाप्यानि । चन्पकस्य तथा शाखाः सवणं कुम्भमेव च । बाह्योपस्थानकं कृत्वा श्वभिचेतो निवेशयेत ॥ दानदेशाद् बाह्ये उप समीपे स्थानं यस्येति कुम्भ-विशेषणम् । जीर्णवस्त्रेण पीतेन सर्वाङ्गानि च मार्जपेत् । धात-मयानि पात्राणि पादेष्त्रस्य तु दापयेत् ॥ धातुनिश्रोषाः पात्र-मध्यस्थानि च द्रव्याणि च मन्त्रतः मयोगे बोध्यानि । तिल्रपूर्ण ततः क्रत्वा वामपादे निवेशयेत । मधुपूर्ण तु तत्कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत् ॥ एतत्पात्रद्वयं पश्चिमपादयोः स्थाप्यम् । ऊर्ध्व-पादे त्विमे कार्ये ताम्रस्य रजतस्य च ॥ ऊर्ध्वपादे अग्रपादयोः । एकवचनगविवक्षितम् । ताम्रपात्रं तिल्पूर्णं दक्षिणपादे। रजतपात्रं मधुपूर्णं सपाद इति व्यवस्था । प्रयोगे बक्ष्यमाणमन्त्रातः । सुवर्ण-पात्रमक्षतपूर्ण मध्ये स्थापयेदिति हेमाद्रिः । हेममुक्ताविद्रमं च दाडिमं बीजपुरकम् । मक्तत्वत्रत्रे श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च ॥ एवं कुत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च । तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानः आहिताबिर्द्धिजोत्तमः ॥ स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्तया चाऽप्य-Sलङ्कुतः।पतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीवते ॥ सुवर्णनाभिकं दद्यात मीयतां तृषभध्यजः॥

अथ प्रयोगः ॥ पूर्वोक्तकाले गोमयेनोपलिप्ते देशे अविलोम-निर्मितं कम्बलं तदुपरि सश्वत्नं खुरं बहिलीमप्राग्नीवं कृष्णाजिन-मासीय्वं सुवर्णश्वत्नं रूप्यदन्तं मीक्तिकपुच्लं सुवर्णनामं च तत्क्र-त्वा तदुपर्यात्मपमाणाँस्तिलान् संस्थाप्य वाससा सञ्लाख सगन्य-रत्नानि चत्वारि कांस्यष्टृतदृग्वद्धिमधुयुतानि चत्वारि सदश्च मागादिदिश्च दानदेशाद् बहिश्चम्पकश्चासां सवणकुम्भं च सं-

स्थाप्य देशकालादि स्मृत्वा ब्रह्मलोकपाप्तिकामः सप्तजन्मोपात्त-पापनाशकामः पितृपुत्रमृत्युपरिहारभार्याभनदेशाय*ऽवियोग*कामः प्रख्याऽविष्वर्गपाप्तिसर्वभुदानफलसर्वछोकगतिकामो, **मोक्षकाम**, ईक्वरप्रीतिकामो वा कृष्णाजिनदानं कारिष्य इति सङ्करस्य जीर्ण-पीतवाससा स्वाङ्गानि संगृज्य, यानि पापानि काम्यानि मया लोभाद कृतानि वै। लोहपात्रमदानेन मणस्यन्तु ममाशु वै इति मन्त्रेण सतिलं लोहपात्रं कृष्णाजिनस्य वामे पादे । यानि का-म्यानि पापानि कर्मोत्यानि कृतानि वै। कांस्यपावमदानेन तानि नक्यन्तु मे सदेति समधुकांस्यं दक्षिणे । परापनादपेशून्याद हथा मांसस्य भक्षणात् अतत्रोत्थितं च मे पापं ताम्रपात्रात् प्रणस्यत् इति सतिलं ताम्रपात्रं वामहस्ते । कन्यानृतं गवां चैव परदारमधर्षणम् । रीप्यपात्रप्रदानेन क्षिपं नार्श प्रयातु म इति समधुरीप्यपात्रं दक्षिण-हस्ते । जन्मजन्मसहस्रेषु क्वतं पापं कुबुद्धिना । सुवर्णपात्रदाना-त्तनात्रायाश जनाईनेति साक्षतहेमपात्रं मध्ये हेममुक्ताविद्रमदाडिम-मातुलिङ्गानि सन्निधावाम्राद्मिशस्तपत्रे कर्णयोः शृङ्गाटकानि च खरेषु संस्थाप्य वस्त्रयुग्मादिनाSSहिताग्निविमदेयद्रव्यं च सम्पूज्य पीयतां रूपभध्वज इत्युक्ता देशकाली सङ्कीर्साऽमुक-सगोत्रायाऽमुकशर्मणे त्राह्मणाय तुभ्यमिदं कृष्णाजिनं कुशोपरि गतं कम्बलोपरि स्थितं वस्त्राच्छादिततिलराशिमुवर्णशृङ्गरौष्यखुर-रूप्यदन्तं मुक्तालङ्ग्लसुवर्णानां पञ्चरत्नालङ्कृतं चतुर्दिगवस्यित-घृतशीरद्धिमधुपूर्णपात्रचतुष्ट्यं सकांस्यपात्रं तिलमध्वक्षतपूर्णलौह-् कांस्यताझरौप्यहैमपात्रहेम−मुक्ताविद्वमदाडिमवीजपूरपत्रश्टङ्गाटक-युतं शिवदैवतममुकसगोत्रोऽमुकशर्मामुककामोऽइंसम्पददे न ममे-ति । एतद्दक्षिणा तु गारुडे । शतनिष्कसमोपेतं तद्धिष्या-Sपि वा । अतो न्यूनं न दातव्यमधिके फलमूर्जितम् ॥ तत्रैव.

अस्पृत्यः स द्विजो राजन चितियूपसमो हि यः। दाने च श्राद्ध-काले च द्रतः परिवर्जयेतः ॥ स्वग्रहात पेष्य तं विमं मण्डले स्नानपाचरेतः । तद्दसं कुम्भसहितं नीता क्षेत्यं चतुष्यये ॥ स्विपतृपुत्रमरणं वियोगं भार्यपा सह। धनदेशपरिसागं न चैवेहा-प्तुयातः कवितः ॥ समग्रसृमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः । सर्वोद्धोकाँश्च चरति कामचारी विहङ्गमः । आभृतसम्प्रवं यावतः स्वर्गमामोत्यसंशयांगितं कुष्णाजिनदानं, तत्मयोगश्च ॥

अय बाट्यादानम् ॥ महाभारते, बाट्यामास्तरणोपेतां सम-च्छादनसंस्कृताम् । पदचाचस्तु विपाय श्रृणु तस्यापि यत फल-म् ॥ सुरूपः सुभगः श्रीमानः स्त्रीसहस्त्रेस्तु संदतः । दशवर्षसह-स्नाणि स्वर्गेळोके महीयते ॥ विष्णुसंहितायाम् । दर्पणैः पाद-त्राणैश्च नानाद्रव्यैर्विभृषणैः । चतुष्कोणेषु संस्थाप्य यथाद्यस्या युधिष्ठिर ॥ वृतकुङ्कमगोधूमपूर्णपात्रं जलस्य च। श्राय्यां सम्पूजिय-त्वा त मद्भक्तो मत्परायणः ॥ कृताञ्चलिपुटो भूत्वा कुर्याच्छय्या प्रदक्षिणाम् । नमः प्रमाण्ये देव्ये ति प्रणम्य च चतुर्दिश्वम् ॥ ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रुताध्ययनशीछिने । तथात्मज्ञानविद्वे श्रयाः दद्याद्विचक्षणः।फलं च, तस्मादिन्द्रपुरं गच्छेत सेन्यमानोऽप्सरो-गणैः । पष्टिवर्षसहस्राणि क्रीडित्वा च यथासुखम् । इन्द्रछोका-त परिश्रष्ट इह लोके नृषो भवेत ॥ षष्टियोजनावस्तीर्णे स्वामी भवति मण्डले । भविष्योत्तरे, तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारु-मर्थी दढाम् । दन्तपत्रचिनां रम्यां हेमपट्टैरलङ्कताम् ॥ इंसद्ली-प्रतिच्छन्नां सुभगण्डोपधानकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां धृपगन्धा-दिवासिताम् ॥ तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरि छक्ष्मीसमन्वितम् । उच्छीर्षके वृतभृतं कल्ठशं परिकल्पयेतः ॥ विश्वेयः पाण्डवश्रेष्ठ स निद्राकलको बुधैः।ताम्बुलकुङ्कमक्षीद्रकर्पूरागुरुचन्दनम्।दीपिको-

पानह्ळ्जं चामरासनभोजनम् ॥ पार्केषु स्थापये इत्त्वा सक्ष-धान्याः चैत हि । श्वनस्थं च भवति यदन्यदुपकारकप । भृङ्गारकरकाद्यं च पञ्चवर्ण वितानकम् ॥ श्वन्यामविविधां कृत्वा ज्ञाह्मणायोपपादयेत् । सपत्रीकाय सम्पूज्य पुण्ये ऽद्धि विधिपूर्व-कम् ॥ यथा न कृष्णश्चयनं स्न्यं सागरजातया । श्वन्या ममा-ष्यस्नास्तु तथा जन्मनि जन्मनीति ॥

अथ प्रयोगः ॥ अष्टदले तिलमस्यं तस्मिन् स्वास्ती**र्णा शय्यां** तस्याः समन्तात् सङ्कल्पनाचये वश्यमाणानि कुम्भादीनि संस्था-प्य, ॐम् अद्येखादि सर्वपापश्चयपूर्वकाऽप्सरोगणसेन्ययुत्रविमान-करणकेन्द्रपुरगमनो तर-पष्टिसहस्रवर्षतद्द्रधिकरणकक्रीडनस्नासहस्र-संवरणसहितस्वर्कोकसहितत्वतद् चरपष्टियोजनमण्डळराज्याऽनन्तर-शिवेक्यकामः शब्यां दास्य इति सङ्कुरुप्य सपत्नीकं त्रिपं शब्यां तद्परि प्रतिमायां लक्ष्मीयुतं नारायणं च सम्पूज्य प्रदक्षिणीकृत्व नमः प्रमाण्ये देव्ये ति चतुर्दिश्च प्रणम्य तिथ्याद्युञ्जेखनान्ते सर्व-पापक्षयेत्यादि कामान्तं पूर्वोक्तं सङ्कल्पवाक्यममुक्तसमोत्रायामुक-वर्षणे ब्राह्मणायेमां वाय्याम् ईशानादिकोणचतुष्ट्यस्थापितपृत-कुम्भगोधुमजलपूर्णपात्राम् उच्छीर्षकप्रदेशस्थापितपृतपूर्णकल्याः हंसत्रुत्रीपञ्जनां शुभगण्डोपधानकां पञ्जादनपटीसप्तथान्यताम्बूलाः SSदर्शकुङ्कमक्षोद-कर्पूरागरुचन्दन-दीपिकोपानहच्छत्रचामरासन-भोजनजलपात्रपञ्चवर्णवितानलक्ष्मीनारायणपतिमायुनाम्।अङ्गिरी-दैवताम्। अमुकसगोत्रोऽमुकदार्माऽहं सम्पद्दे न मंगेति। बार्योप-वेशितविमहस्ते कुशोदकं क्षिपेत्॥ मन्त्रः, यथा न कृष्णश्चयनं शुन्यं सागरजातया । ज्ञाय्या ममाप्यऽशुन्याऽस्तु तथा जनमनि जन्मनीति ॥ हिरण्यं दक्षिणेति शय्यादानमयोगः ॥

इंसर्वजीसमायुक्ताम् ऋदां सद्वामलङ्कृताम् । सर्वोपकरणो-

पेतां शिवे शब्यां निवेद्येतः ॥ शिवं देवीसमायुक्तं पैष्टं क्रत्या निवेद्येद्, इति ॥ शिवधर्मे शिवशब्यादानम् ॥

अथ बसदानम् ॥ नन्दिपुराणे, वसं यश्चार्थिने दद्याच्छुमं चाऽपि यहच्छया । स भवेद्धनवान् श्रीमान् बृहस्पतिपुरे वनेत् ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, वासो हि सर्वदैवत्यं सर्ववायोज्यमुच्यते । वस्रदा-नात सुवेतः स्याद्र्यद्रविणसंयुतः । युक्तो लावण्यसौभाग्यैर्विरोगश्च तथा द्विजः ॥ तथा, दस्वा कार्पासिकं वस्त्रं स्वर्गछोके महीयते । दत्ता सरोमं वन्नापि फलं दशगुणं भवेत ॥ आविकं वसनं दत्वा मुदानां छोकगाप्तुयाद । छागं दत्वा चाऽऽङ्गिरसं शीमं दत्वा बृहस्पतेः ॥ वसुनां लोकमामोति कुन्नकौन्नेयवाससा । क्वापेजं च तथा दत्वा सोमलोके महीयते ॥ अग्निष्टोममवाप्नोति दत्वैव सूग-छोपिकाम ॥ तथा, सर्वदो बस्नदः मोक्तो यतः सर्वत्र बस्नवानः । अवाम्रोति च धर्मज्ञस्तद्धि तस्माद् विशिष्यते ॥ भविष्यपुराणे---बासांसि तु विचित्राणि सारवान्ति बृहन्ति च । स्नापितानि विवे दद्याद सकोशानि ननानि च ॥ यानव तद्वस्तन्त्नां परिमाणं विधीयते । ताबद्ववसहस्राणि स्वर्गछोके महीयते ॥ स्नापितानि प्रक्षािळतानि । वाराइपुराणे, क्षौमाम्बराणि यो द्यात पत्रोर्णा-नि च चाक्रणे । कार्पासजानि वा दद्याद्धको विचानुसारतः तव वासांसि यावन्तस्तन्तुनां परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥ देवीपुराणे, अण्डजैर्वाण्डजैर्वाऽपि वस्त्रै-रभ्यर्च्य बैलिजाम् । सम्भूष्याभरणैः बाक्रचकर्वात्तत्वमाप्तयातः॥ नन्दिपुराणे, उष्णीपदायिनो मर्सा जायन्ते कुक्कुटोज्ज्बलाः। विस्तीर्णराजवंदोषु सितच्छत्राग्न्यछक्षणाः ॥ नारदीये, निष्कि-ञ्चनेभ्यो दीनेभ्यः बीतवातमहातपैः ॥ अर्दितेभ्यः करूपया वस्न-मूर्णं ददाति यः। न तस्य सुक्ततं वक्तुं विदशैरपि शक्यते॥

आधिन्याधिविनिर्मुक्तः सोऽशयं मुलमञ्जुते ॥

अयासनदानम् ॥ आसनं यः प्रयन्धेत्त सुपात्राय च भक्तितः । स दिच्यान् भोगसम्भोगानरोगः सर्वदाश्रुतिः ॥ महा-भारते, चन्द्रोद्यं तु यो दद्याद्भक्तया यच्छति पुण्यधीः । न तस्य श्रेयसामन्तः कदाचिद्पि जायते ॥ चन्द्रोदयो वितानम् । स्कन्द-पुराणे । भाजनं यः पयन्छेत्तु हैमं रत्नविभूषितम् । सोऽप्सरः-शतसङ्कीर्णो विमाने दिवि मोदते ॥ राजतं यः पयच्छेत् विमेभ्यो भाजनं शुभम् । स गन्धर्वपदं पाष्य उर्वश्या सह गोदते ॥ ताम्रं यो भाजनं दद्याद ब्राह्मणाय विशेषतः। स भवेद्यक्षराजस्य मभु-र्वेळसमन्वितः ॥ ब्रह्मपुराणे । औद्म्बराणि भाण्डानि यो दद्या-दायसानि च ॥ औदुम्बराणि ताम्रमयानि । महतां द्रद्धिमामोति दुर्छभां तिद्दीरपि ॥ मदनरत्ने, उत्तमं पलपष्टिश्च चत्व।रिंशत्तु म-ध्यमम् । द्वादशाधमपात्रं तु ताम्रमत्रायसं स्मृतम् ॥ अत्राऽऽयस-बाब्दो धातुमात्रपरः । वासांसि वरणे दद्याद्पवीतं समाल्पकम् । चन्दनं चैव ताम्बूछं विषं संपूजयेत्रतः ॥ घृतादिद्रव्यसंपूर्ण हेम-गर्भ सबस्रकम् । प्रतिष्ठाप्य तु तत्पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ त-तस्तुण सुवर्ण तु मतिष्ठार्थं द्विजाय तु ॥ दद्यादिति शेषः। चन्द्र-लोके नसेत तानचानादिन्द्राश्चतुईशेति ॥ धृतादीनि चात्र चतु-र्द्श । तत्रेत्र । पृतं च नवनीतं च दिध दुग्धं तथेव च । शर्करा-गुडतैलानि तिला मधु जलं तथा ॥ लवणं च फलं सर्वे पावटनन-समन्वितम् । एवं चतुर्दशयुतं दातव्यं विधिना नृषेति ॥ पासे, सर्वेषामेव दानानामुत्तमं पात्रामिष्यते । यथाविधि प्रदातव्यं वित्त-शाळाविवर्जितम्॥ असन्सनिर्द्धनो योऽपि सोऽपिदद्याद्यथाविषि । चतर्दशार्द्धगर्द्ध वा द्यादन्नफलेप्सपेति॥ वाराहे, अयातः संम-वक्ष्यामि पात्रदानमनुत्तमम्। क्रत्वातास्रमयं पात्रं यथाविभवविस्तर-

म् । उमया महितं शम्भुं हरिं सश्रीकषेत्र च ॥ कृत्वा तु काञ्चनीं दिव्यां सम्पूर्यावाहनादिभिः । प्रतिमां ब्राह्मणे दद्यात पात्रभूते विचसणे ॥ अत्रेव पूर्वोक्तपृतादिचतुर्दशद्वव्याऽधिकाऽककार्पासोन्यादानेन तदृद्वपूर्णभोडश्चपात्रदानं प्रागुक्तम् ॥

अय स्याळीदानम् ॥ भविष्योत्तरे, दत्वा ताम्रमर्यी स्थाळी पळानां पञ्चिभः इतैः । अशक्तस्तु तद्द्वेन चतुर्याश्चीन वा पुनः । सर्वशक्तिविद्दीनस्तु मृन्मयीमपि कारयेव ॥ मुगभीरोदरदरीं दृद्ध-दण्डकडच्छकम् ॥ कडच्छकशन्देन तद्विर्मिधीयते । मृदुतन्दुळ-निष्पन्नस्विन्नस्तिरेण पूरिताम् । उपदेशोदकयुनां घृतपात्रसम्विन्तम् ॥ कृतपात्र्वां धौतवर्णां चित्रां चन्दनेन च । स्थाप्यमण्डलके वस्तेः पुष्पपूर्षरथार्चयेव ॥ आदिसेऽहिन संक्रान्तो चतु-द्वयप्रमीषु च । एकादश्यां त्रतीयायां विपाय पतिपादयेव ॥ व्यल्ज्ज्ज्ज्जलनपार्श्वस्थान्त्रकृत्वां स्तिद्धः सिद्धिकामानां त्वं पुष्टिः पुष्टि-पिच्छताम् । अतस्तां पणतो याचे ससं कुरु वचो मम ॥ झाति-वन्धुमुहृद्दर्गविमेषु स्वजने तथा । अभुक्तवस्तु नाश्नीयात्त्रथा भव वरमद । इत्युचार्य पदातन्या हण्डिका द्विज्युङ्गवे ॥ पुष्टिपुष्टि-पदा पुंसां सर्वान् कामानभीप्सतान् ॥ इति स्थाळीदानम् ॥

अथपाकदानम् ॥ तत्त्रयुभावतीं प्रतिभिष्पछादः । यद् येन पूर्व-विहितं तदसौ प्राप्तुते फल्छम् । कर्मभूमिरियं राज्ञि माऽतः शो-चितुमईसि ॥ तस्माद्धवद्भियंदत्तं प्राप्ते तद्राज्यमुत्तमम् । सृत्य-मित्रादिसंबन्धो न दत्तः प्राप्यते कुत इत्यादिना हेमरूप्यताम्न-निर्मितनानाविधभाण्डानां सर्वसंपत्करम् आपाकदानमुक्तवानि-त्यापाकदानम् ॥

अथ विद्यादानारूयमतिदानम् ॥ तत्र पुराणदानं तावत् ।



वाराहे। तत्संख्या । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च क्षेत्रं भागवतं तथा। तथाऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥ आग्नेयमष्टमं शोक्तं भविष्यं नवमं तथा । दशमं ब्रह्मवैवर्च छैङ्गमेकादशं तथा ॥ वा-राहं द्वादशं मोक्तं स्कान्दं चैव त्रयोदशम् । चतुर्दशं वामनं च कीर्म पञ्चदशं तथा ॥ मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डमन्तिमं तथा॥ अन्यान्युपपुराणानि सहिरण्यानि पर्त्राणि । छिखित्वा यः प्र-यच्छेतु स विद्यापारगो भवेदिति ॥ क्रमेण कालविशेषः । ब्राह्मं जलुषेनुयुतं वैशाख्यां देवफळं ब्रह्मलोकः । पाद्यं हेमपद्मयुतं च्येष्ठायां, फलमञ्चमेधस्य । बैष्णवमापाढ्यां स्वर्णधेनुसहितं, फलं वरुणलोकः । क्षेत्रं गुडधेनुसाईतं श्रावण्यां फलं शिवलोकः । भागवतं हेमसिंहयुतं मोष्ठपद्यां परमपदं फलम् । नारदीयमाविवन्यां हेमयुतं परासिद्धिः फलम् । मार्कण्डेयं हेमहस्तियुतं कार्त्तिक्यां, फलं पौण्डरीकस्य । आग्नेयं हेमपद्मतिलधेनुयुतं मार्गज्ञीर्घ्यां, सर्वकतुफलम् । भविष्यं गुडनस्थयुतं पौष्यां, फलं विष्णुलोकः ब्रह्मवैवर्त्त चमरयुतं माघ्यां फलं ब्रह्मलोकः । लेङ्गं तिल्पेनुयुनं फाल्गुन्यां फलं शिवसाम्यम् । वाराई गुडयुतं चैत्र्यां फलं विष्णु-पदम् । स्कान्दं हेमश्लुलयुतं मकरसंक्रान्ती, फलं शिवपदम् । वामनं हेमबामनयुतं मेथे, विष्णुपदं फलम् । कौर्म हेमकूमेयुतं कर्के, गोसहस्रफलम् । मात्स्यं हममत्स्ययुतं तुलायां पृथ्वीदानफलम् । गारुडं हेमहंसयुतं विषुते सिद्धिः फलप् । ब्रह्माण्डं काँशेयसुत्रर्ण-घेतुयुतं न्यतीपाते, राजसूयफलम् । एतन्मूलं मात्स्ये । कविच्छैत्र-स्थाने नायवीयग्रहणम् । एतदन्यान्युपपुराणानि । तद्दाने फलं विद्या विष्णुलोकः । सर्वत्र विष्णुमीतिर्वा । अत्र दानवाक्यमापे, देशकालौ सङ्कीर्स तत्फलमुल्लिख्य । देयदक्षिणा न पृथगिति केचित । युक्तं तत्तदाने युक्तथेन्वादिकैव दक्षिणा । रामायणं

भारतं च दत्वा स्वर्गे महीयते * पुराणं तर्कशास्त्रं च छन्दोल्झण-मेन च ॥ नेदं मीमांसकं दत्वा ज्ञित्रधर्म च नै तृप । सप्तद्वीप-पृथिव्यां च राजराजो भनेद्धि सः ॥ तथा, धर्मशास्त्रं नरो दत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥

अथ वेददानम् ॥ गारुडे, आम्नायह्रपाणि विधाय सम्यग् हैमानि पूर्वोदितलक्षणानि । विश्वद्धनानामणिभूषितानि ऋगादि वेदक्रमतो निवेश्य ॥ वेदरूपं महाभूतघटे उक्तम् । वासांसि देयानि यथाक्रमेण पीतानि श्रक्तान्यथ लोहितानि । नीलानि चैवं कुमुमानि दत्वा सम्पूज्य गन्धाक्षतधूपदीपैः ॥ आमोदिमोदकयुतं घृतपायसं च सक्षीद्रमन्नमथ पूप्यृतं क्रमेण । तेभ्यो निवेद्य विधि-वतः प्रयतः प्रणम्य सम्यक् प्रदक्षिणविधि विदधीत विद्वानः ॥ तेषां पूजाविधिः कार्यो गायञ्या धीमतां वर । व्याहृत्य व्याहृतीः क्रुयादावाहनविसर्जने । मन्त्रेरेतैस्ततः कुर्याचदमीषामनुमन्त्रणम् ॥ ऋग्वेद पत्रपद्माक्ष मां त्वं रक्ष क्षिपाऽश्वमम् । श्वरणं त्वां मपन्नो-Sिस्म धेहि मे हितमद्भुनम् ॥ यजुर्वेद नमस्तेऽस्त लोकत्राण-परायण । त्वत्प्रसादेन मे कामा निष्त्रिष्ठाः सन्तु सन्ततम् ॥ साम-बेद महावाही त्वं हि साक्षादधोक्षजः । प्रसादस्रुमुखो भूत्वा कृप-याऽत्यहाण माम् ॥ अधर्वन् सर्वभृतानां त्वदायचे हिताहिते । भातिं कुरुष्व देवेश पुष्टिमिष्टां मण्ड्य नंः ॥ इति सम्पार्थ्य देवे-शान विषेभ्यः प्रतिपादयेत । पदद्यादेकमेकस्मै सुवर्ण विपछा-न्त्रितम् ॥ दद्यादेकपछोपेतमेकैकिम दुर्वछः । अथ स्वशक्तितो वाऽपि दानमेषां विधायते ॥ एतदेव ममाणं स्यादेतेषां मृत्तिनि-र्मितम् ॥ अनधीतवतो वेदान् वेददानविधिस्त्वयम् । सदाध्ययन-युक्तस्य वेदाध्ययनमेव हि ॥ याज्ञवल्क्यः । सर्वधर्ममयं ब्रह्म प-दानेभ्योऽधिकं यतः।तइदत् समनामोति ब्रह्मलोकमनिच्युतमिति॥ इति वेददानविधिः ॥

अथ पुस्तकदानम् ॥ भिविष्ये, शास्त्रसद्भाविद्देषे वाचके च भियंबदे । वस्तुगुमेन संवीतं पुस्तकं मितपादयेदिति ॥ तथा, किपलादानसहस्रेण सम्यग् दत्तेन यत फलम् । तत् फलं सम-वामोति पुस्तकैकमदानतः ॥ पुराणं भारतं वापि रामायणमथा-ऽपि वा । दत्वा यत्फलमाभोति पार्थ तत् केन वर्ण्यत इति ॥ तच हेमरूप्यगजदन्तकाष्टादिक्कतेऽन्योन्यसंक्षिष्ठेष्टे यन्त्रे न्यस्य सम्पुज्य देयमिति पुराणान्तरे ॥ इति पुस्तकदानम् ॥

्षत्रं त्रिविधं विद्यादानं - पुस्तकदानं, प्रतिमादानमध्यापनं चेति ॥

अथ छत्रोपानहदानम् ॥ पाञ्चे, अप्रिपत्रवने मार्गे क्षुरधारा-समन्विते । तीक्ष्णातपं च तरति छत्रोपानत्मदो नरः, इति छत्रो-पानदानम् ॥

अथान्नदानम् ॥ स्कान्दे, अन्नदः पाणदः पोक्तः पाणद-श्चाऽपि सर्वदः।तस्मादचपदानेन सर्वदानफलं लभेदिसन्नदानम् ॥

महार्णवे ब्रह्मगीतायाम् । वर्षाश्चनं श्रोत्रियाय ह्याधिने च विशेषतः । असाध्यन्याधिना ग्रस्तो धनं दद्याद्विजातय इति वर्षा-ऽश्चनदानम् ॥

अथ ताम्बूछदानम् ॥ भविष्यपुराणे, ताम्बूछं यो नरो द्याद् प्रसाहं नियमान्वितः । देवेभ्योऽध द्विजातिभ्यः स महाभाग्यमञ्जु-ते ॥ इति ताम्बूछदानम् ॥

अथ गन्धद्रव्यदानम् ॥ स्कान्दे । नरः मुवर्णदेहत्वं गन्ध-दानादवाष्त्रयातः । भोगवाञ्जायते निसं शरीरं नास्य तप्यति ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, सौभाग्यकारकं दानं पोक्तं वै कुङ्कुमस्य तु । तथा कर्पूरदानेन सर्वकामानवाष्त्रयातः॥ मृगदर्पपदानेन स माज्यं राज्यमञ्जुत इति ॥ गन्पद्रन्यदानं छेङ्गे, तुष्टिर्भनेत सदाकालं प्र-दानाद्गन्यपाल्ययोशित ॥ नन्दिपुराणे, घूपदः सुरिभिनिसं पुष्पदः सुभगस्तयेति ॥

अथ रत्नदानानि ॥ जावालिः । रत्नानि यो दिने दद्याद् वहुमूल्यानि मानवः । अछङ्कारिनिमित्तं वा देवताभ्योऽतियत्नतः सन्तापपापनिर्मुक्तो मुक्तिभव समञ्जेते॥ स्कान्दे, विद्वमाणां प्रदान्नेन रहेलोकं व्रजेन्नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो मुक्तादानेन जायते ॥ लोकमाप्रोति दानेन नरो वज्जस्य विज्ञणः । तथा प्रमक्तेगोंमेदै-मोंदते नन्दने वने ॥ सर्वे प्रहाः प्रतुष्यन्ति पुष्परागपदानतः । गारुत्मतैर्गरुत्मन्तं नियतं जयति श्रियः । वैद्वर्थेः सूर्यलोकं च पश्चरागैररोगताम् ॥ प्रदानादिन्द्रलोकानां नीलानां भाजनं भवेत । सुष्वी शङ्कपदानेन शक्तिः श्वक्तिम्दानत इति रत्नदानम् ॥

अथ गलन्तिकादानम् ॥ भविष्योत्तरे । वसन्तसमयं ज्ञात्वा गत्वा देवालयं परम् । विवस्य विष्णो सम्प्राप्ते देवं पञ्चाऽम्रतेन तु । संस्नाप्य पूज्येद्रन्थेनैंवेध्यैश्च मनोरमैः । प्राणपस्य महेक्षानं मन्त्रमेतसुद्दिरयेत् ॥ ॐ नमः शङ्करः शम्भ्रभेनो भाता विवो हरः। प्रीयतां मे महादेवो जलकुम्भपदानतः ॥ एवं सङ्करप्य दाता तु पश्चादागल वेश्मिन । स्वशक्तया शिवभक्तांश्च वित्रसुख्यांश्च भो-जयेत् ॥ एवं यः कुरुते ग्रीष्मे जलदानिक्रयां हरे । यावद्विन्दृनि लिङ्गस्य पतितानि न संशयः ॥ स वसेच्छाङ्करे लोके तावत्कोच्यो नरेश्वर, हति गलन्तिकादानम् ॥

अथ प्रपादानम् ॥ भविष्योत्तरे, अतीते फाल्गुने मासि पाप्ते चैत्रमहोत्सवे । पुण्येऽह्नि विमकथिते मण्डपं कारयेत्ततः ॥ पुरस्य मध्ये पथि वा चैत्यदक्षतलेऽथवा । मुक्कीतल्लतरं रम्यं विचित्रा-ऽऽसनसंग्रतम् ॥ तन्मध्ये स्थापयेद्रम्यान्मणिकुम्भांश्च बोभनान् ॥ ब्राह्मणः बीलसम्पन्नो धृति दत्वा ययोचिताम । मपापालः प्रकर्वव्यो बहुपुत्रपरिच्छदः ॥ एवंविधां प्रपां कृत्वा छुभेऽहि विधिपूर्वकम् । ययाक्षत्त्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे योजयेद् द्विजात् ॥ ततश्रोसर्जयेद्विमं मन्त्रेणानेन मानवः ॥ प्रपेयं सर्वसामान्यभृतेभ्यः मतिपादिता । अस्याः प्रदानात् पितरस्तृप्यन्तु प्रापेतामहाः ॥ अनिवारितं ततो देयं जलं मासचतुष्ट्यम् । त्रिपक्षं च महाराज जीवावां जीवनं परम् ॥ प्रत्यहं कारयेत्तस्यां भोजनं बाक्तितो द्विजान्॥
अनेन विधिना यस्तु श्रीष्मे तापप्रणाज्ञनम् । पानीयमुत्तमं द्यात्रस्य पुण्यफलं पृणु ॥ कपिलाक्षतदानस्य सम्यग्दत्तस्य यद् फलम् । तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूजितः ॥ पूर्णचन्द्रप्रतीकार्वा विमानमधिस्क्षः सः । याति देवेन्द्रनगरं पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ त्रिकास्कोट्यो हि वर्षाणां यक्षगन्ववेसेवितम् । पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वेदो द्विजो भवेत्॥ततः परं पदं याति पुनराद्यिनदुर्लभमिति प्रपादानम् ॥

अथोदकदानम् ॥ स्कन्दपुराणे, त्रयाणामिष छोकानामुदकं जीवनं स्मृतम् । पवित्रममृतं यस्मात्तदेयं पुण्यमिच्छता ॥ भविष्यपुराणे, ग्रीष्मे चैव वसन्ते च पानीयं यः प्रयच्छति । वन्तुं जिह्वासहस्रेण तस्य पुण्यं न शक्यते ॥ नन्दिपुराणे, योऽपि क-श्चित्रवार्षायं जळपानं प्रयच्छति । स नित्यतृप्तो भवति स्वर्मे युग्यतं नरः ॥ गरुडपुराणे, मूल्येन क्रीत्वा धर्मान्ते जळदानं प्रयच्छति । स याति चन्द्रसाछोक्यं ग्रुभमाळां ग्रुकाहतः ॥ क्षीर-कुल्यास्तमायान्ति तथाऽऽयान्ति मधुस्रवाः । प्रतद्ध्युदकास्तस्य समुद्रा वशवार्षेनः ॥ देवळः, सतोषां पथिके विमे पद्धात् कर्पन्तिकाम्।फळं स कूपसातस्य नृतमाप्नोति मानवः ॥ महामारते पिपासया न म्नियते सोपळन्दश्च जायते । नैवाप्नुयाच व्यसनं

करकान यः पयच्छति ॥ आदित्यपुराणे, यो ददाति घटीमात्रं कुण्डिकाः करकाँस्तथातिपार्चस्य तथा धर्मे छभते शीतछं जछम्॥

अथ घर्मघटदानम् ॥ विष्णुः, श्रीतलेन सुगन्वेन वारिणा पूरितं घटम । श्रक्तचन्दनादिग्धाङ्गं पुष्पदामोपशोभितम् ॥ दध्यो-दनमृतं कुर्वाच्छरात्रं तस्य चोपरि । उपानच्छत्रसंयुक्तं धर्मारूयं कल्पयेद्धटम् ॥ पुष्पाक्षतं गृहीत्वा तु इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ॐ नमो विष्णुद्धपाय नमः सागरसम्भव । अपाम्पूर्णोद्धरास्मास्त्वं दुःखसंसारसागरात् ॥ उदकुम्भो मया दत्तो ग्रीष्मकाले दिने दिने । बदकुम्भपदानेन मीयतां मधुसुदनः ॥ भविष्योत्तरे, पसहं धर्मघटको वस्त्रसंबेष्टितो नवः । ब्राह्मणस्य गृहे देयः भीताऽम्छ-जलः शुचिः ॥ वसन्तप्रीष्मयोर्भध्ये यः पानीयं प्रयच्छति । पले पछे सुवर्णस्य फलमाम्रोति मानवः ॥ मार्गशीर्षात् समारभ्य उद-कुम्भं तु यः क्षिपेत । दिने दिने सहस्रस्य गर्वा प्रण्यफलं लभेत।। तस्यैबोद्यापनं कार्यं मासि मासि नरोत्तम । मण्डकावेष्टकामिश्च पननानैः सार्वकामिकैः ॥ उद्दिश्य शङ्करं विष्णुं ब्रह्माणमथवा पितृन् । सतिलं मोक्षयित्वा तु मन्त्रेणानेन मानवः ॥ एव धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानातः सततं मम सन्तु मनोरथाः ॥ अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं मयच्छति । वसन्त-ग्रीष्मसमये गोमदानफळं छभेत ॥ इति धर्मघटदानम् ॥

वौधायनः । यज्ञोपवीतदानेन जायते ब्रह्मवर्चती । तस्मात्ता-नि प्रदेयानि ब्राह्मणेभ्यो विपश्चिता ॥ अत्रिः । क्षौमजं वाऽिष कार्षासं पट्टसूत्रमधाऽपि वा । यज्ञोपवीतं यो दद्याच्छ्वेतवर्ण स्रुबोभनम् ॥ यथात्तत्त्या विधानेन अग्निष्टोमफ्छं छभेत् ॥ नन्दिपुराणे, यज्ञोपवीतदानेन सुरेभ्यो ब्राह्मणाय वा । भवेद्विम-श्चतुर्वेदः सुद्धपीनीत्र संज्ञायः ॥ विष्णुसुक्ते, उपाकर्मणि विमेभ्यो द्धायक्षेपत्रीतकम्। आयुष्मान् जायते तेन कर्मणा मानवो भुति॥
अय यष्टिदानम्॥ याष्टि ये च मयच्छन्ति नेन्नहीनेऽय दुर्वछे।
तेषां सुत्रिपुळः पन्याः फल्रमूलोपशोभितः॥ व्रह्मतेन्त्रं, ये पहुभ्यश्च पायेभ्यो दीनेभ्योऽपि द्यालवः । यष्टिदानं मकुर्वन्ति
निरोगास्ते न संश्चयः॥ पङ्गोश्चरणकार्याणि यष्टिः मकुरुते सदा ।
गोसपीदिनिदृत्तिश्च जायते यष्टिभारणाद् ॥ भीतानां शरणं यष्टिगैच्छतां निशि वा वने । शङ्कां पङ्काहित्रातोत्थां नियमेन निरस्यति ॥ स्कन्दपुराणे । यतिभ्यो वैणवं दृण्डं द्विजेभ्योऽपि स्वनित्रकम् । मदाय परलोके स यमदण्डं न गच्छति ॥ मददाति यथावर्णं यो दृण्डं ब्रह्मवारिणे । स महापुरुषो लोके ब्रह्मवर्चनम्बद्वते॥

अथेन्थनद्दानम् ॥ वहिपुराणे— य इन्धनानि काष्टानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । सर्वार्थास्तस्य सिद्ध्यन्ति तेजस्त्री चाऽपि जायते ॥ हेमन्ते शिक्षिरे चैव पुण्योऽर्धिन यः प्रयच्छति । सर्वछोक-मतापार्थ पुण्यां गतिमवाष्तुपात् ॥ यमः ॥ इन्धनानां पदानेन दीप्ताग्निर्भुवि जायते । महाभारते ॥ यश्चन्थनार्थं काष्टानि ब्राह्म-णेभ्यः प्रयच्छति । प्रतापनार्थं राजेन्द्र प्रवृत्ते शिक्षिरे नरः ॥ सिद्धचन्त्यर्थाः सदा तस्य कार्याणि त्रिविधानि च । उपर्युपरि श्रवूणां वपुषा दीष्यते नरः ॥ भगवाँश्चास्य सुपीतो विक्षभवति निस्ताः ॥ न तं त्यजनित पक्षवः संग्रामेषु जयसपि ॥

अथाग्निष्टिकादानम् ॥ भविष्योत्तरे। छुष्ण उवाच । आदौ मार्गिक्षिरे मासि क्षोभने दिवसे छुमे । अग्नीष्टिकां कार्यित्वा मुसासनवर्ती टढाम् ॥ देवाङ्गणे मठे हट्टे विस्तीणें चत्वरे तथा ॥ उभयोः सन्ध्ययोः छत्वा मुखुद्धकाष्ट्रसञ्चयम् ॥ ततः मञ्चालये-द्धिन हुत्वा च्याहृतिभिः क्रमात् । ब्राह्मणान् भोजयेद्धस्त्या वेभ्यो दद्याच दक्षिणाम् ॥ अनेन विधिना छत्वा मसहं ज्वाल- बेचतः । यदि कश्चित धुपार्चः स्यान्ने तस्य कल्यवेत ॥
ॐम् अधेत्यादि हेमन्तिशिक्षिराख्यम् ऋतुद्वयं यावतः प्रत्यहं श्रीताचिप्राणितापनार्थम् इमामग्नीष्टिकां विष्णुदेवतां पष्टिमहस्त्रपष्टिशताविष्छन्नवस्त्रोक्षमहित्त्वानन्तरसर्वार्थमम्पन्नचतुर्वेदित्वपाप्तिकामोऽहसुत्छने । अस्य दानस्य फल्पपि तत्रैव । विमाने चार्कसङ्काश्चे समाक्दो महामते । पष्टिवर्षसहस्त्राणि पष्टिवर्षशतानि च ॥
अर्चितोऽखन्तसन्तुष्टो ब्रह्मलोके महीयते । इह लोकेऽवतीर्णश्च
चतुर्वेदो द्विचो भवेत ॥ नीरुजः सखवादी च अग्नितेजाः मभावतः ॥ चैत्ये सुरालयसभावसथेषु भव्यां येऽग्नीष्टिकां प्रचुरकाष्टवर्ती प्रदशुः । हेमन्तवीशिरऋतौ सुखदां जनानां कार्याग्निदीप्तममळं वपुरावहन्ति ॥

अय दीपदानप् ॥ संवर्तः । देवागारे द्विजानां वा दीपं दत्वा चतुष्पये । मेथावी ज्ञानसम्पन्नश्चक्षण्यंश्च सदा भवेत ॥ गरुहपुराणे, नीलकण्डस्य मोसेण गयायां च तिलेदिकैः । वर्षाष्ठ दीपदानेन पितृणामनृणो भवेत ॥ नीलकण्डस्य मोसो नीलकण्डस्योत्सर्गः । यस्तु ब्राह्मणगेदेषु दीपमालां प्रयच्छति । स निर्कित्य तमो घोरं ज्योतिषां लोकमाप्नुपात् ॥ महाभारते, दीपपदानं वश्चामि फलयोगमनुत्तमम् । यथा येन यदा चैव प्रदेया याद्द्यान्श्च ते ॥ ज्योतिस्तेजाः मकाशं वाऽप्यूर्ध्वगताऽपि चार्णवे । पदानं तेजसां तस्माचेजो वर्द्धयते नृणाम् ॥अन्यन्तमस्तिमसं च दक्षिणा-यनमेव च । जत्तरायणमेतस्मादीपदानं मशस्यते ॥ यस्माद्ध्वंगते पस्तत्वमसश्चेव भेषजम् । तस्माद्ध्वंगतिर्दाता भवेत्वतेति निश्चयः॥ विष्णुवर्षोत्तरे, महावर्षिः सदा देया भूमिपाल महाफला।कृष्णपक्ष विश्लेण तत्रापि च विश्लेषतः ॥ अमावास्या विनिर्दिष्टा द्वादशी च महाफला ॥ अश्वयुज्यामतीतायां कृष्णपक्षस्य या भवेत । अमा-

वास्या तदा पुण्या द्वादशी च त्रिशेषतः ॥ देवस्य दक्षिणे पार्षे देया तैळतुळा त्रुप । फलाष्टकयुता राजन वांन तत्रैव दाययेत ॥ वाससा तु समग्रेण सोपवामो जिनेन्द्रियः । महावांनद्रयाभिदं सक्टदत्वा महीयते ॥ गिरिष्टक्षेषु दातन्यं नदीनां पुलिनेषु च । चतुष्पयेषु रथ्यासु ब्राह्मणानां च वेश्मसु ॥ व्हामुलेषु गोष्टेषु कान्तारगहनेषु च । दीपदानेन सर्वत्र महत्व फलमुपाश्नुते ॥ यावन्यक्षितियोणां दीपः मञ्चलते तृप । तावन्येव म राजेन्द्र वर्षाणि दिवि मोदते ॥ दीपदानेन राजेन्द्र चश्चष्मानिह जायते । कपसीभाग्ययुक्तस्तु धनधान्यसमन्वितः ॥

अथाऽभयदानम्॥भंवर्त्तः। भृताऽभयपदानेन सर्वात् कामान-ऽवाप्तुयातः । दीर्घमायुश्च लभते सदा च मुखितो भवेतः ॥ रामा-बणे, बद्धाक्षालिपुटं दीनं याचन्तमपराधिनमः । न हन्याच्छरणं भागं सतौ वर्षमतुस्मरत्॥महाभारते, लोभोद्वेपाद्ययाद्वापि यस्त्रजे-च्छरणागतम् । ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीपिणः ॥

अय मासेषु दानानि ॥ विष्णुधमोंत्तरे, तिलमदानान्माघे तु
याम्यं लोकं न गच्छति । मियङ्गं फाल्युने दत्वा मियो भवति
मुनले ॥ चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि दत्वा सौभाग्यमञ्जूते । अपूपानां
मदानेन वैशाखे स्वर्गमञ्जूते ॥ छत्रदानं तथा ज्येष्ठे सर्वान् कामान् समञ्जूते । आपाढे चन्दनं देयं सकर्पूरं महाफलम् ॥ श्रावणे
वस्त्रदानस्य कीर्तितं सुमहत्फलम् । मौष्ठपादे तथा मासे मदानाद् काणितस्य च । आद्रिते न क्ष्यवानभिजायते ॥ कार्तिके
दीपदानेन सर्वथोऽज्यलमाप्नुयात् । लवणं मार्गशीर्षे तु दत्वा सीमान्यमञ्जूते ॥ पोषे काञ्चनदानेन परां तुष्टिं तथैव च । पुष्पाणां
च सिते पक्षे दानं लक्ष्मीकरं मतम् ॥ फलानां च तथा दानं
छुष्णपक्षे महाफलम् ॥ अथावतत्यसेचनम् ॥ भविष्योचरे, उदकुम्मपदानेदिष् ध-शको यः पुनान् भवेत् । तेनाव्यत्यतरोर्म्छं सेन्यं निकं जिता-ऽद्रत्मना ॥ सर्वपापम्रश्नमनं सर्वदुःस्वप्रनाश्चनम् । सर्वरोगम्बस्यनं निकंसन्ततिवर्द्धनम् ॥ अव्यत्यक्षि भगवान् भीयतां मे जनाईनः । इत्युचार्य नमस्कृत्य प्रयहं पापनाश्चनम् ॥ यः करोति तरोर्मुछे सेकं मासचतुष्ट्यम् । सोऽपि तत्फल्जमाप्नोति श्रुतिरेषा सनातनी ॥ इत्यव्यवस्थसेचनम् ॥

अथ पान्थोपचारः ॥ गरुडपुराणे, पान्थं परिचरेद् यस्त द्मयनासनभोजनैः । स स्त्रत्येन प्रयासेनं जयति ऋतयाजिनम् ॥ दला वासो विवल्लाय रोगिणे रुक्पतिक्रियाम । तृषाचीय जढं दत्वा मृष्टमन्नं बुभुक्षवे ॥ पथिकाय यथावित्तं सर्वे तरति हुच्क्र-तम् ॥ अध्यन्यमनुपान्यापि शाकमुलफलैर्जलैः । सक्कृत् सक्करा वींचाऽपि श्रेयसी भाजनं भवेत् ॥ तथा, अभावे तृणसूम्यम्बपने-न्धनफलानि च। दत्वा गताघानिर्विण्णः स्वर्गे याति मियेण वा ॥ विष्णुधर्मोत्तरे, उपानद्भां च छत्रेण श्रान्तं संयोज्य मानवः । सं-स्थाप्य श्रभदेशे तु क्षणाद्धदुफ्छं छभेव ॥ तथा, मुख्येन वासिय-स्वापि परभारं विचक्षणः । अञ्चमेषस्य यज्ञस्य फलं दवागुणं भवे-त् ॥ तथा, चौरेभ्यो रक्षणं क्रत्वा शकलोके महीयते ॥ स्कान्दे यस्त मार्गपरिश्रान्तं द्विजाति यामकर्षितमः तैलेनाभ्यक्षयेत पाज्ञः स सुद्धी मोदते चिरम्॥ सर्पिषा कपिछाघेनोरथवाऽन्येन सर्पिषा। उत्तरायणमासाद्य योSभ्यञ्जयति धूर्जिटिम् । महापूजा घृतेनैव तस्मिन्नेव दिने शिवे । क्रत्वा मनुष्यो लभते राज्यं निहतकण्टक-म् ॥ सर्पिः पछसहस्रेण गोविन्दस्य विवस्य च । महास्नानं नरः कृत्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यति ॥ नन्दिपुराणे, पादाभ्यङ्गन्त यो दद्याद पान्थाय परिखेदिने । स श्रभाभरणैः पादैनीन्दिभार्ने स- बन्दितः ॥ भवेन्तृषो महाभागो मण्डले दश्यपोजने ॥ संबाह्याध्वपरि-श्रान्तं पादाभ्यङ्गादिना नरः । धर्मस्य पुरमामोति सर्वकामगुणो-ष्ण्वलः ॥ दत्वा वारि मुसंस्पर्शं पादाभ्यां च द्विजातये । उन्लिष्ट-मार्जनाचाऽपि गोदानफलमञ्जुते ॥ भविष्यपुराणे, ब्राह्मणस्य तु यो भक्तया पादौ प्रशाल्य शक्तितः । ष्ट्रतेनाभ्यज्य पादौ तु विष्णुलोके महीयते ॥ इति पान्थोपचारः ॥

अथ गोपरिचर्या ॥ निष्णुः, गर्वा कण्डूयनं चैव सर्वकल्मप-नाधानम् ॥ गवां ग्रासमदानेन स्वर्गछोके महीयते ॥ आदित्य-पुराणे, छवणं च यथाशक्तया गवां यो वै ददाति च । तेषां पुण्य-कृतां लोका गवां लोकं वर्जान्त ते ॥ महाभारते, कृत्वा गवार्थे शरणं शीतवातक्षमं महत् । आसप्तमं तारयति कुछं भरतसत्तम ॥ हारीतः, द्वौ पासौ पाययेइत्सं तृतीये द्विस्तनं दुहेत्। चतुर्थे त्रिस्तनं चैव यथान्यायं यथावलम् ॥ ब्रह्मपुराणे, आदौ विचार्य वयसः परिमाणं वछं रुचिम् । आकारिमकं तु दातन्यं पुण्यार्थे तु गत्राह्विकम्॥ विष्णुधर्मोत्तरे, गर्वाकण्डूयनं चैव सर्वकल्पपनाशन-म । तासां श्रुङ्गोदकं नाम जाह्नवीजलसन्निभम ॥ तथा, दत्वा परगवे ग्रामं पुण्यं स महदाप्तुयात । शिशिरं सकलं काळं ग्रासं परगवे तथा॥ दत्वा स्वर्गमवाप्नोति संवत्सरशतानि षट् । अग्रमक्तं नरो दद्यान्त्रित्यमेत्र तथा गवाम् ॥ मासाष्टकेन स्रभते नाकस्रोकं समाऽञ्जतम्॥सायं प्रातर्भनुष्याणामशनं स्पृतिनिर्मितम्।तत्रैकमशनं दत्वा गर्वा नित्यमतिन्द्रतः ॥ द्वितीयं यः समञ्जाति तेन संवत्सरं नरः । गवां लोकमवाप्नोति यावन्मन्वन्तरं द्विजः ॥ शीतत्राणं गवां कृत्वा गृहे पुरुषसत्तम । वारुणं लोकमामोति क्रीडत्यब्द-गणाऽयुतम् ॥ तथा, सिंहव्यात्रभयत्रस्तां पङ्कल्लग्नां जले गताम् । गागुद्घृत नरः खर्गे कल्पभोगानुपाक्नुते ॥ तासां संस्पर्धनं धन्यं

सर्वकल्पपनाद्मनम् । दानेन च तथा तासां कुछान्यपि समुद्धेतः॥ उदनपास्तिकादोषो नैव तत्र महे भवेतः॥ इति गोपरिचर्याः॥

अय सहस्नादिविषयोजनविधिः ॥ मारते, ब्राह्मणानां सहस्रं तु सम्भोज्य भरतर्षम । नरः पापातः प्रमुच्येत पापेष्वभिरतोऽपि यः ॥ योजयित्वा दशकातं नरो वेदविदां नृप । न्यायविद्धर्म-विदुषां स्मृतिभाष्यविदां तथा ॥ न याति नरकं घोरं संसाराँ अ न सेवते । सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यञ्तते सुल्पिति ॥ छन्न-योजनादौ तु न विघेः काप्युप्लम्भः । यस्तु मैथिलग्रन्ये कचि-दल्लेसि सोऽप्यनाकरः ॥

अथैतस्य प्रयोगः ॥ देशकाली सङ्कीर्त्य पूर्वोक्तफलकामः
सहस्रवाद्यणान्भोज्यादिनाऽऽतृप्ति तर्पयिष्ये इति सङ्करूप्य पुण्याहं
वाचियत्वाऽऽदिकालाष्ट्रकं सम्पूज्य ब्राह्मणान् धूपदीपवस्नाल-ङ्कारैः सम्पूज्य सप्ताक्तेनाऽऽतृप्ति भोजयेत ॥ ततोऽगिनस्थापना-ऽगिनमुखान्तं कृत्वा केशवादिभिद्वादशनामभिः स्वाहान्तैर्धृतेन हुत्वा दृश्यमं ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य स्विष्टकृदादि कृत्वा ब्राह्मणेभ्य-इल्जोपानही प्रसेकं द्त्वा स्वस्ति—वाच्य तात क्षमापयित्वा आश्वापो गृहीत्वा विसर्जयेद । ततो भुक्तशेषं वन्धुसहितौ दम्पती हृष्टमनस्कौ भुजीयातामिति ॥ अनेन चैकास्मिन्नेन दिने सहस्था-दिभोजनं कार्यामिति प्रतीयते । शिष्टास्वनेकदिनैर्प संमापयन्ति। तत्र मुळं विचारणीयम् ॥

अथ नानाद्रव्यदानमन्त्राः ॥ हेमाद्रौ व्रतखण्डे । धन्यं करोति दातारिमह छोके परत्र च । तस्मात् प्रदीयते धान्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे, घान्यस्य ॥ अन्नेन जायते विश्वं प्राणिनां प्राणरक्ष-णम् ॥ तण्डुला वैश्वदेवसाः पाकेनान्नं भवन्ति ये । पावनाः सर्व-यक्केषु प्रशस्ता होमकर्मणि । तस्माचन्दुलदानेन पीयतां विश्वदेव-

ताः, तन्दुलानाम् ॥ यस्मादन्तमयो जम्बृद्वीपे गोधूमसम्भवः । गन्धर्वतीख्यधनद अतः शान्ति मयच्छ मे, मोधूमानाम् ॥ धान्य-राजाश्च माङ्गल्या द्विजनीतिकरा यवाः । तस्मादेषां प्रदानेन ममास्त्वभिमतं फलम, यनानाम् ॥ सुद्गवीजानि वै यस्मावः भियाणि परमेष्ठिनः । तस्मादेषां पदानेन प्रीतिः सिद्धा तु मे सदा, सुद्गानाम् ॥ यस्मान्मधुवधे काले विष्णुदेहसमुद्भवाः । पितृपीतिकरा माषा अतः शान्ति प्रयच्छ मे, माषाणाम् ॥ पुरा गोवर्द्धनोद्धारसमये हरिमक्षिताः । चणकाः सर्वपापन्ना अतः शान्ति प्रयच्छ मे, चणकानाम् ॥ अभिनवर्णोद्भवा नाम बलकीर्ति-मवर्दनाः । कुळत्याः सर्वपापन्ना अतः शान्ति मयच्छ मे, कुछत्यानाम् ॥ तिलाः पापहरा नित्यं विष्णुदेहसमुज्जवाः । तिल्र--दानेन सर्वे मे पापं नाशय केशव, तिलानाम ॥ तिलाः स्वर्णमया युक्ता दुरितक्षयकारकाः । विष्णुप्रीतिकरा नित्यमतः शान्ति मयच्छ में, स्वर्णतिलानाम् ॥ तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वकाम-कराः ग्रभाः । श्रक्ताश्चेत तथा कृष्णा निष्णुगावसमुद्भवाः ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्मइत्यासमानि च । तिल्लपात्रभदानेन तानि नइपन्तु मे सदा, सहिरण्यातैलपात्रस्य । अन्नमेद यतो छक्ष्मीरन्नमेव जनाईनः । अन्नं ब्रह्माखिलत्राणमस्तु मे जन्मजन्मनि, अन्नस्य । चन्द्रमण्डलमध्यस्यं चन्द्राम्बुजसमप्रभम् । दध्यन्नं तस्य दानेन पीयतां वामना मम ॥ दध्यत्रं सोपदंशं च ब्रह्मविष्णु-. शिवात्मकम् । प्रीयतां धर्मराजो हि तदानान्मम सर्वदा, सोपदंश-दघ्यन्नस्य ॥ पानीयसहितं चैत्र सद्घ्योदनपात्रकम् । समर्चितं च सफलं सदाक्षणं ग्रहाण में, सपानीयदृष्यन्नस्य ॥ सर्वदैवतयोग्यं च श्रेयःपुष्टिं मयच्छतु, पायसान्नस्य ॥ केशनभीतिदा मस्याः श्चम्भुत्रह्मार्कतुरिद्धाः । पृथित्रिधापुरकाद्या यछन्तु बछमीरसम् ।

मध्याणाम् ॥ आदिखतेजसीत्पन्नाः सर्वमङ्गळकारकाः । मण्डकाः सर्वेपापघ्ना अतः शान्ति पयच्छ मे, मण्डकानाम् ॥ आदित्यतेजसाऽभ्यक्तं ज्ञातिश्रष्टिचकरं परम् ॥ दक्तं ते मम विम त्वं मतीच्छाऽपूपमुत्तमम्, अपूपान्नस्य ॥ माजापत्या यतः मोक्ताः सक्तवो यहकर्मणि । तस्मात सक्तृत्र पयच्छामि मीयता मे मजापतिः, सक्तूनाम्।।अलक्ष्मीहरणं नित्यं नित्यं सौभाग्यवर्द्धन-प । क्षीरं मङ्गलमायुष्यमतः शान्ति मयच्छ मे, दुम्यस्य ॥ काम-थेनोः समुद्भृतं विष्णोः प्रीतिकरं परम् । नवनीतं प्रदास्यामि बलं पुष्टिं च देहि में, नवनीतस्य ॥ कामधेनोः समुद्भूतं देवाना-मुत्तमं हविः।आयुर्विवर्द्धनं दातुराज्यं पातु सदैव माम, आज्यस्य॥ याऽलक्ष्मीर्यच मे दौःस्थ्यं सर्वगात्रे व्यवस्थितम् । तत्सर्वे शमयाऽऽज्य त्वं लक्ष्मीं पुष्टिं च वर्द्धय, यज्ञार्थाऽऽज्यस्य ॥ आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं स्मृतम् । आज्यं मुराणामा-हारमाज्ये देवाः मतिष्ठिताः, पापक्षयार्थाज्यस्य ॥ तैळं पुष्टिकरं नित्यमायुष्यं पापनाञ्चनम् । अमङ्गल्यहरं पुण्यमतः शान्ति मयच्छ मे, तैलस्य ॥ अमृतस्य कुलोत्पन्ना इक्षुधारातिवार्करा । सूर्यभीति-करा निसमतः शान्ति प्रयच्छ मे, शर्करायाः ॥ मनोभवधनुर्मध्या-दृद्भूता शर्करा यतः । तस्मादस्याः पदानेन मम सन्तु मनोरयाः, सण्डस्य ॥ प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा । तथा रसानां प्रवरः सदैवेश्वरसो मतः ॥ मम तस्मातः परां शान्ति ददस्य गुड सर्वदा, गुडस्य ॥ इञ्जदण्डं महापुण्यं रसालं सर्व-कामदम् । तुभ्यं दास्यामि तेनाऽऽद्य भीयतां परमेश्वरः, इस्रोः ॥ बस्मात पितृणां श्राद्धे त्वं पीतं मध्यऽमृतोद्भवम् । तस्मात्तव मदा-नेन रक्ष मा दुःखसागरात, मधुनः ॥ वारिपूर्णघटोपेतं देवत्रयमयं यतः । प्रीयतां घर्षराजस्तु दानेनानेन पुण्यदः, उदकुम्भस्य ॥

यमामनन्ति विक्वेशं विकानायमुमासुनम् । विद्रोक्तर क्षिमचर त्रभ्यं दास्याम्यभीष्टदम्, गणेशप्रतिमायाः ॥ ददामि भानुं भवते सर्वेषस्कारसंयुतम् । मनोऽभिल्रषितावार्तिं करोतु पम भास्करः, सूर्यमूर्तेः ॥ त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव य-स्मात् । तथाऽसुराणां त्रिपुरं च दग्धमेकेपुणा लोकहितार्थमीश ॥ त्वद्वपदानादहमप्यदोषो दोपैर्विमुक्तस्तु गुणानः पपद्ये । तथा कुरु त्वं शरणं प्रपद्ये माथे प्रभो देवनरमसादम्, शिवमूर्तेः ॥ प्रसीद-त भवो निसं कृतिवासा महेश्वरः । पार्वसा सहितो देवो जग-दृत्पतिकारकः, जमामहेश्वरयोः ॥ शिवशक्तयात्मकं यस्पाज्जगदेत-चराचरमः । यस्पादनेन सर्वे मे करोतु भगवान शिवमः ॥ कैलास-वासी गौरीको भगवान भगनेत्रवित । चराचरात्मको छिङ्गरूपी दिवातु वाञ्जितम्, लिङ्गस्य ॥ इदं मारकतं लिङ्गं रौप्यपीठसमन्त्रि-तम् । धान्येद्वीदशभिर्युक्तमेकादशफलान्वितम् ॥ सम्प्रदद्यां वि-धानेन यथोक्तं फलमस्तु में, मरकतिलङ्गस्य ॥ काश्मीरलिङ्गपक्षे तु, इदं काश्मीरजामिति वदेव । महाकोशानिवासेन चक्राधैरुपश्ची-भितम् । अस्य देव पदानानु मम सन्तु मनोर्थाः, शालग्रामस्य ॥ महाकोशनिवास त्वं महादेवो महेश्वरः । भीयतां तव दानेन ततः शान्ति पयच्छ मे, शिवनाभस्य ॥ शङ्ककर्णप्रलम्बोष्ठ लम्बभ्कदीर्घ-नासिक । अष्टनेत्र चतुर्वञ्च विस्तीर्णेशतयोजन ॥ व्यतीपात नप-स्तेऽस्त सोमस्येष्ठत प्रभो।यदानादिकृतं सर्वे तद् इक्षय्यमिहाइस्तु-मे न्यतीपातस्य । विधुन्तुद्द नमस्तेऽस्तु सिहिकानन्दनाऽन्यय । दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात, स्वर्णनागस्य ॥ जन्मा-न्तरसहस्रेषु यद् कृतं दुरितं यया । स्वर्णपात्रपदानेन शान्तिरस्त सदा मम, स्वर्णपात्रस्य ॥ त्वदुद्भवो जगत्स्रष्टुर्वेधसो हेमप्रक्कुज । पद्मानास हरेनीभिजात पां पाहि सर्वदा, स्वर्णपद्मस्य ॥ कान्तार-

बनदुर्गेषु चौरव्याळाकुळे पथि । हिसकाश्च न हिसन्तु सिहदान-त्रभावतः, स्वर्णसिंहस्य ॥ हिरण्यगर्भसंमृतं सौवर्ण चाङ्कळीयकसः। वर्मपादं मयन्छामि मीयतां कमछापतिः, अङ्गुछीयस्य ॥ काञ्चनं इस्तवलयं रूपकान्तिसुखनदम् । विभूषणं मदास्यामि विभूषयतु मां सदा, बलवस्य ॥ श्रीरोदमथनोद्भूतमुद्धतं कुण्डलद्वयम् । श्रिया सह समुद्भूतं ददे श्रीः शीयतां मम, कुण्डलस्य ॥ अगम्या-ममनं चैव परदाभिमर्भानम् । रौप्यपात्रपदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा, रौप्यपात्रस्य ॥ अप्रुरेषु समुद्भृतं रजतं पितृबह्धभए ॥ तस्मादस्य भदानेन रुद्रः संशीयतां मम, रजतस्य ॥ परापवाद-वैशून्यादमस्यस्य च भक्षणात् । तत्त्रजातं च यत्पापं ताम्रपात्रात् प्रणञ्यत, ताम्रपात्रस्य ॥ यानि पापानि काम्यानि कर्मोत्यानि क्रतानि वै । कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा, कांस्य-पात्रस्य ॥ यानि पापान्यनेकानि मया यानि कृतानि च । छोइ-पात्रपदानेन तानि नश्यन्तु सर्वदा, छोहपात्रस्य ॥ यथा स्त्रेषु सर्वेषु सर्वदेवा व्यवस्थिताः । तथा शान्ति प्रयच्छन्तु स्त्रदानेन ये सुराः, रत्नपन्तः ॥ ताम्रपर्ण्यणेवीत्पन्ना वर्णाद्याः कल्प-बर्णिताः । मुक्ताः धक्त्युद्धनाः सन्तु भुक्तिमुक्तिपदा मम, मुक्तामन्त्रः ॥ यथा भूमिप्रदानस्य कलां नाईन्ति षोडशीम् । दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह, भुवः ॥ सर्वभृता-श्रया भूमिर्वराहेण समुद्धता । अनन्तसस्यफलदा अतः शान्ति मयच्छ मे, सस्यभूमेः ॥ सदा रोहन्ति बीजानि फाळकृष्टे मही-वछे । तब मदानात् सकला मम सन्तु मनोरथाः, क्रष्टक्षेत्रस्य ॥ इदं ग्रहं ग्रहाण त्वं सर्वोपस्करसंयुतम् । तव दानमसादेन ममा-**ऽस्वभिमतं फलम्, गृहस्य ॥ समाश्रयं प्रयच्छामि पीयतां मे जग-**श्विधः, आश्रयस्य। गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मा-

त्तस्मान्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च, गो: ॥ यमद्वारे महाधोरा या सा वैतरणी नदी । तां तर्चुकामो यच्छामि उत्तारय मुखेन माम, नैतरण्याः ॥ यस्मान्त्रं पृथिनी सर्वा घेनुर्वे कृष्णसामिभा। सर्व-पापहरा निसमतः शान्ति मयच्छ मे, कृष्णधेनोः ॥ मृत्युत्कान्तिप-दत्तस्य सुखोकान्तिविदृद्धये । तुभ्यं सम्पद्दे नाम्ना गां समुका-न्तिसंज्ञिताम्, उक्रान्तिथेनोः ॥ इन्द्रादिलोकपालानां या राज-महिषी श्रमा । महिषीदानमाहात्म्यात् साऽस्तु मे सर्वकामदा ॥ धर्मराजस्य साहाय्यं यस्याः पुत्रः प्रतिष्टितः । महिषासुरस्य जननी साऽस्तु में सर्वकागदा, महिष्याः ॥ महिषीं वत्ससंयुक्तां म्रवीलां च पर्यास्वनीम् । रक्तवस्रेण प्रष्येण दत्वा मृत्युं जये-न्नरः, मृत्युमहिष्याः ॥ वाद्यनः कायजनितं यत्किचिन्मम दृष्कृतम् । तत्सर्वे विलयं यातु त्वदानेनोपसेवितम् ॥ रोमत्वस्थासमजाद्यैः सर्वोषकरणैः सदा । जगतः सम्बद्दतोऽसि त्वामतः वार्थये शिव-म् ॥ देवानां यो मुखं हव्यवाहनः सर्वपूजितः । तस्य त्वं बाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महार्षभिः ॥ अभिनमान्द्यं पूर्वकर्मविषाकोत्थं तु यन्मम । तत्सर्वे नाशय क्षिपं जठराग्नि विवर्द्धय, मेपस्य । त्वं पूर्व ब्रह्मणा स्टष्टा पवित्रं भवती परा। त्वत्मसूतौ स्थिता यज्ञा-स्तस्माच्छान्तिकरी भव, अजायाः । गौरीं कन्यामिमां विष यथा-शक्तिविभृषितामः । गोत्राय शर्मणे दत्तां त्वं हि विम समाश्रय, कन्यायाः । इयं दासी मया तुभ्यं श्रीवत्स मतिपादिता । तव कर्मकरी भोग्या यथेष्टं भद्रपस्तु मे, दास्याः । यस्मादशुन्यं शयकं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशुन्याऽस्तु तस्माज्जन्मनि जन्मनि, शय्यायाः ॥ देवदेव जगन्नाथ विश्वात्मन् दत्तवाऽनया। प्रभो शिविकया देव पीतो भव जनाईन, शिविकायाः ॥ स्थाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्मणे । विश्वभृताय नाथाय अरुणाय

तमो नमः, रथस्य ॥ कथ्टकोञ्जिष्टवायाणदश्चिकादिनिवार्ये। वादके सम्बद्धास्यामि विम मीत्वा मध्यताम, पादुकयोः ॥ छ्यानही मदास्यामि कण्डकादिनिवारणे । सर्वस्थानेषु सुखदावतः शान्ति प्रयच्छ मे, उपानहोः ॥ इहामुत्रात्तपत्राणं कुरु केश्वय मे प्रभो । छत्रं त्वस्थीतचे दत्तं बाह्मणाय मया श्रुमम्, छत्रस्य ॥ कमण्डलुर्जरूः पूर्णः स्वर्णगर्भः मुख्यमणः । अर्पितस्ते महासेन म-समस्तेन मे भन, कमण्डलुनः ॥ शशाङ्ककरसङ्काश हिमाडेण्डीर-**पाण्डर ।** मोत्सारपाग्र दुरितं चामराऽमरवछभ, चामरस्य ॥ पत्रिका सर्वजन्त्नां बेखानन्दकरी श्रमा। पितृणां तृप्तिदा निस-मतः बान्ति प्रयच्छ मे, व्यजनस्य ॥ दर्बानेन त्वमादर्ब तृणां मङ्गळ-दायकः । शौर्वसौभाग्यसत्कीर्तिनिर्मछज्ञानदो भव, दर्पणस्य ॥ भगवन् शुलहस्तेवा दक्षाध्वरविनावान। तवायुषपदानेन ग्रुलं नव्यतु में सदा, ग्रूलस्य ॥ सर्वग्रहर्सतारेश सर्वेशस्त्रं हि भास्कर । संक्रान्तिशुलदोषं मे निवारय दिवाकर, संक्रान्तिशूलस्य ॥ त्वं देवानां मनुष्याणां रक्षसामायुधार्वासे । तस्मादेषां प्रदानेन भान्तिभवतु सर्वदा, आयुषस्य॥सोमोद्भवानि दार्खाण जातेषदः-त्रियाणि च। तस्मादेषां पदानेन श्रियं देहि विभावसो, काष्टाना-म् ॥ शरण्यं सर्वेळोकानां ळजाया रक्षणं परम् । छुवेषथारि स्वं यस्माद्वासः शान्ति पयच्छ मे, वस्त्रस्य ॥ रक्तवस्त्रयुगं यस्मा-दादिसस्य भियं सदा । भदानादस्य मे सूर्य अतः शान्ति भयन्छ मे, रक्तवस्त्रयुग्मस्य ॥ धर्मराजेन विधृतं कृष्णवस्त्रं सुद्योभनम् । सर्वेक्केशविनाशाय कुष्णवस्त्रं ददाम्यहम्, कृष्णवस्त्रस्य ॥ और्ण-पट्टमनुध्येयं स्वर्णबीजं तव प्रभो । दत्तं ग्रहाण देवेबा पापं संहर सत्तरम्, और्णपट्टस्य ॥ और्णमेषसमुत्पन्ना ज्ञीतवातमयाऽपहा । यस्मानुवारहारी स्यादतः बान्ति मयच्छ मे, ऊर्णायाः ॥ ब्रह्म-

सुत्रं महादिच्यं पया यत्रेन निर्मितम् । ब्राह्मं तन्मेऽस्तु मे देव ब्रह्मसूत्रपदानतः,उपवीतस्य । अष्टार्विशतिसंख्याकै बद्राक्षेयोंजिता मया । अपिता तव इस्ते च गृहाण सुरसैन्यप, अक्षमालायाः ॥ सर्वविद्याश्रयं ज्ञानकरणं लिलतासरम् । पुस्तकं सम्प्रवन्छामि मिया भवति भारती, पुस्तकस्य ॥ कर्पूरः कदलीभूतो देवदेव-भियः सदा । भाग्योत्तमो नृपाणां च तदानाद सुखमस्त मे. कर्पूरस्य ॥ जटागांस्युद्धवां देवीमेणनाभिसमुद्धवामः । मत्त्याहं सम्प्रदास्यामि मम सन्तु मनोरथाः, गन्धद्रव्यस्य ॥ नन्दनाबास मन्दारसखे वन्दारकार्चित । चन्दन त्वत्मसादान्मे सान्द्रानन्दमदो भव, चन्दनस्य । श्रीखण्डागरुकपूरकस्तुरीकुङ्कमान्वितम्॥ विखेपनं प्रयन्छामि सौख्यमस्तु सदा मम, चन्दनाद्यनुलेपनस्य ॥ समस्तेभ्यो-Sपि वस्तुभ्यः संस्तुताSसि सुरासुरैः।विन्यसाङ्गेषु कस्तूरी सुखदा-Sस्त सदा मम, कस्तुर्याः॥कन्दर्यदर्पदं यस्मात कर्पूरं माणतर्पण-म् ॥ अहर्पतिभवस्तापस्त्वद्दानादपसर्पत्, कर्पूरस्य ॥ यदभूदङ्ग-संलग्नं कुङ्कमादिविलेपनम् । जलकीडासु गोपीनां द्वारवत्यां जलापितम् ॥ गोपीचन्दनिमत्युक्तं सुनीन्द्रैः कल्मपापहम् । तस्मा-दस्य प्रदानेन विष्णुर्दिशतु वाञ्छितम् ॥ गोपीचन्दनस्य ॥ मणि-काञ्चनपुष्पाणि मणिमुक्तामयानि च । तुलसीपत्रदानस्य कलां नाईन्ति पोडवीम् ॥ तुलसीपत्रदानाद्वा ब्रह्मणः कायसम्भवम् । पापं प्रशाममायातु सर्वे सन्तु मरोरथाः, तुलस्याः ॥ हादयन्ति मनो यस्मात्तस्मात सुमनसः स्मृताः । दत्ता ददत मे नित्यमत्या-ह्लादं सतीं श्रियम्, पुष्पस्य ॥ इदं फलं मया विम मभूतं प्रस्त-स्तव । तेन में सफलाऽवाहिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि, फलस्य ॥ त्रसहसादिपापत्रं त्रसणा निर्मितं पुरा। कृष्माण्डं बहुबीजाद्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे, ऋष्पाण्डस्य ॥ताम्बूळं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णु- किवात्मकम् । अस्य पदानाद् बद्धायाः किवं ददतु पुष्ककम् ।
ताम्बूलस्य ॥ पूरितं पूगपूगेन नागवछीदल्लान्वतम् । चूर्णेन
चूर्णपात्रेण कर्पूरिपदेकेन न ॥ सपूगलण्डनं दिव्यं गम्धर्यत्सरसां
पियम् । करक तं निरातक्कं त्वत्मसादात् कुरुष्व माम्, ताम्बूलकरण्डस्य ॥ लक्ष्मीपिया च लक्ष्मीदा लक्ष्मी च वसनिषया । सौभाग्यक्रद्वरस्त्रीणां हरिदा श्रीभदाऽस्तु मे,हरिद्रायाः॥जरा नो जायते
यस्मान्मण्डनं ग्रमकर्मम् । तस्माज्जीरकदानेन त्रीयतां गिरिजा
मम्, जीरकस्य ॥ कञ्चुकीवस्त्रयुग्मेश्च तथा कर्णावतंसकैः । कण्डसृत्रेश्च भूषाभिः त्रीयतां निमिनन्दिनी, सौभाग्यद्रव्ययुक्तद्वर्यस्य ॥
रामपत्ति महामागे पुण्यमूर्ति निरामये । ग्रहाणेमानि शूर्पाणि
मया दत्तानि जानिकं, शूर्पस्य ॥ नवग्रद्दक्षिणादानमन्त्रा मात्स्ये।
कपिले सर्वभूतानां पूजनीयाऽसि रोहिणि । सर्वतीर्थमयी यस्मादतः आर्नित प्रयद्ध मे इति ॥

इति श्रीजगद्गुरुभट्टनारायणस्विस्तुनुपण्डितिद्वारोरत्न-भीमांसकशङ्करभट्टात्मजभट्टनीळकण्डकृते भगवन्तभास्करे दानमयुखः षष्ठः ६ संपूर्णः ॥ ग्रुभमस्तु ॥